उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र

खण्ड

1

परिचय

इकाई - 1 5
प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई - 2 16
मांग की प्रकृति एवं उसका नियम

इकाई - 3 28
मांग का विश्लेषण

इकाई - 4 44
मांग की लोच

इकाई - 5 64
तटस्थता वक्र विश्लेषण

इकाई - 6 78
मांग पूर्वाभास

इकाई - 7 90
फर्म का सिद्धान्त-लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण

RIL-082

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 ज्ञान प्रकाश यादव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज की ओर से डॉ अरूण कुमार गुप्ता कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित. 2020

M.Com-106/2

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्र0लि0 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड प्रयागराज, 211002

RIL-082

खण्ड-1 परिचय

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आधुनिक व्यवसाय का एक प्रमुख अंग है। प्रबंधकीय निर्णय लेने में प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सहायक होता है। प्रस्तुत खण्ड सात इकाईयों में विभक्त है। प्रथम इकाई में प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में बताया गया है। इसके पश्चात् मांग की प्रकृति एवं नियम तथा मांग का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य इकाईयों में मांग की लोच, तटस्थता वक्र विश्लेषण, मांग पूर्वाभास तथा अन्त में फर्म का सिद्धान्त के अन्तर्गत लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण का अध्ययन किया गया है। उपरोक्त सभी इकाईयों में वर्णित विषय प्रबंधकों को निर्णय लेने में सहयोग प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उपरोक्त सभी विषयों में केवल प्रबंधकीय निर्णय हो अहम् भूमिका का निर्वाह करते हैं। अन्य तत्वों की भूमिका गौण होती है।

RIL-082

इकाई-1 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का अर्थ

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग

1.4 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति

1.5 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

1.6 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग

1.7 प्रबंधकीय अर्थशास्त्री के उत्तरदायित्व

1.8 व्यावसायिक फर्म

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्न

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगेः

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के अर्थ एवं प्रकृति को जानने में,

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र समझने में,

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का उपयोग समझने में, तथा

-प्रबंधकीय अर्थशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का अन्तर समझने में।

1.1 प्रस्तावना

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र का ही एक संशोधित रूप होता है जिसका व्यवहार प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायक होने का है। एक प्रबंधक द्वारा निर्णय के लिए आवश्यक विषयों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र क्रमबद्ध आर्थिक नियमों का विज्ञान होने के साथ-साथ कला के रूप में उनका समयोचित प्रयोग भी करता है। अतः यह कला और विज्ञान का अनूठा समन्वय है।

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म होते हुए भी बहुत कुछ समष्टि अर्थशास्त्र के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त प्रबंधकीय अर्थशास्त्र एवं सामान्य अर्थशास्त्र में अन्तर पाया जाता है।

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का अर्थ

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आधुनिक व्यवसाय का एक प्रमुख अंग है। यह सामान्य अर्थशास्त्र का ही वह संशोधित रूप है जिसका व्यवहार प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायक होना है। सामान्य अर्थशास्त्र में पूंजी बजटिंग, संयंत्र विस्थापन तथा विनियोग अवसर जैसे निर्णयों पर मुख्य ध्यान नहीं रखा जाता परंतु ये निर्णय एक फर्म के लिए काफी महत्वपूर्ण होते हैं एवम् इन निर्णयों के औचित्य को जानने के लिए आर्थिक विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। चूंकि क्रिया शोध तांत्रिकी निर्णय बर्ताव सुधारने के काम आने लगा, अतः अर्थशास्त्र में भी एक नई दृष्टि से व्यावसायिक इकाइयों का अध्ययन आवश्यक समझा जाने लगा। फलतः प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ।

1.4 परिभाषा

अर्थशास्त्र की इस इकाई शाखा को सीमित शब्दों में परिभाषित करना कुछ कठिन है क्योंकि समयानुसार एवं परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र में अन्तर आता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की समुचित परिभाषा के लिए कुछ विद्वानों के द्वारा की गई परिभाषा का अध्ययन आवश्यक है।

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए, अर्थशास्त्र की सैद्धान्तिक विधि का प्रयोग है"

—मैक वायर तक वेरियान

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक व्यवहार के साथ प्रबंध द्वारा निर्णय निर्माण तथा अग्रिम नियोजन के लिए आर्थिक सिद्धान्त का समन्वय है।"

—स्पेंसर एवम् सीजग्यैन

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र फर्मों के सिद्धान्त एवम् व्यवहार के बर्ताव का अध्ययन है।"

—बेट्स एण्ड पार्किन्स

"प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग निर्णय लेने में किया जाता है। यह अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो निरपेक्ष सिद्धान्त एवम् प्रबंधकीय व्यवहार के बीच की खाई को पाटती है।"

—"हाइन्स, मोटे व पाल"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के आशय को स्पष्ट करने वाले तत्वों को जाना जा सकता है—

(1) व्यष्टि प्रकृति— प्रबंधकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म अध्ययन है, क्योंकि इसकी विषयवस्तु व्यावसायिक इकाई होती है। अतः व्यावसायिक

RIL-082

फर्म की समस्यायों का ही उल्लेख इसमें होता है। यह सारी अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन नहीं करता।

(2) **आर्थिक सिद्धान्त का सैद्धान्तिक व्यवहार**—दूसरी विशेषता यह है कि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र मुख्य रूप से उन आर्थिक सिद्धान्तों के समूह का प्रयोग करता है जो फर्म के सिद्धान्तों के रूप में जाने जाते हैं।

(3) **आर्थिक सिद्धान्त एवम् व्यवसायिक व्यवहार का समन्वय**— सिद्धान्तवादियों तथा व्यवहारवादियों के बीच के इस मतभेद से व्यवसाय जगत को निरंतर हानि होती आई है। **एडविन मैन्टाफील्ड** का कहना है कि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र विभिन्न आर्थिक सिद्धान्तवादियों की कोरी विश्लेषणात्मक समस्याओं तथा प्रबंध के सामने आने वाली नीति की समस्याओं के बीच जो खाई होती है उसको पाटता है।

(4) **प्रबंध द्वारा निर्णय निर्माण**—निर्णय निर्माण की क्रिया में दो विशेषतायें होती हैं- (1) सीमित साधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग तथा (2) वातावरण की अनिश्चितता

(5) **अग्रिम नियोजन**— अग्रिम नियोजन प्रबंधकों का महत्वपूर्ण कार्य होता है। पूर्वानुमान अग्रिम निर्णयों के लिए आवश्यक होते हैं।

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की विषयवस्तु

इस विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित शब्दों में अर्थशास्त्र की परिभाषा दे सकते हैं।

"प्रंबधकीय अर्थशास्त्र, सामान्य अर्थशास्त्र का वह व्यवहारिक पहलू है जो व्यवसायिक फर्म का अध्ययन करता है और इसकी समस्याओं को सुलझाने में उचित निर्णय के लिए प्रबंध की मदद करता है।"

1.3 प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का प्रयोग

(1) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र वास्तविक व्यावसायिक व्यवहार तक पारस्परिक आर्थिक सिद्धान्तों का समन्वय है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में इस बात का प्रयास किया जाता है कि लेखीय एवम् आर्थिक दृष्टियों में समन्वय स्थापित किया जाये जिससे लाभ एवम् लागत से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रयोग निर्णय-निर्माण एवम् व्यावसायिक योजना में और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सके।

(2) आर्थिक संबंधों की भी संभावना का अनुमान किया जा सकता है

(3) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र अपेक्षित आर्थिक मात्राओं की भी भविष्यवाणी करता है जैसे- लागत, मांग, उत्पादन, कीमत, पूँजी आदि

(4) इन आर्थिक मात्राओं का निर्णय-निर्माण में प्रयोग करने से भविष्यकालीन लाभ, कीमत, लागत, पूँजी संबंधी योजनाओं को निश्चित किया जाता है।

(5) प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की विषयवस्तु को निर्मित करने वाले ऐसे बाह्य तत्व भी हैं जिनसे व्यवसाय चलता है, जैसे- व्यावसायिक चक्र, राष्ट्रीय आय में परिवर्तन, कर, विदेश व्यापार, श्रम संबंध आदि। व्यवसाय प्रबंध इन बाह्य शक्तियों से अच्छी तरह परिचित होता है और उसी के अनुसार कार्य करता है।

1.4 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति

जे0एम0 केन्स के शब्दों में "कला दिये हुए लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नियमों की एक पद्धति है।" प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक कला है। यह अनिश्चितताओं के मध्य फर्म के लिए सीमित साधनों का सर्वाधिक लाभप्रद प्रयोगों के विकल्प प्रदान करता है। विज्ञान कारण

तथा परिणाम के बीच सम्बन्ध की खोज के उद्देश्य से ज्ञान का एक क्रमबद्ध समूह है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जहाँ मांग, लागत, मूल्य, पूँजी, लाभ एवं वातावरणीय कारणों तथा परिणामों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।

यह कहा जा सकता है कि चूंकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र क्रमबद्ध आर्थिक नियमों का विज्ञान होने के साथ-साथ कला के रूप में उनका समयोचित प्रयोग भी करता है अतः यह कला व विज्ञान का एक अनूठा समन्वय है।

1.5 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बहुधा निम्नांकित विषयों का अध्ययन किया जाता है—

(1) फर्म का सिद्धान्त,

(2) मांग विश्लेषण तथा मांग पूर्वाभास,

(3) लागत तथा उत्पादन विश्लेषण,

(4) प्रतियोगिता,

(5) मूल्य सम्बन्धी निर्णय, नीति व व्यवहार,

(6) लाभ प्रबन्ध

(7) पूंजी प्रबन्ध,

(8) व्यावसायिक वातावरण।

हाल के कुछ वर्षों में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत क्रिया-शोध, रेखीय कार्यक्रम, सामग्री नमूना तथा खेल के सिद्धान्त को भी शामिल किया जा रहा है।

1.6 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का उपयोग

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सूक्ष्म होते हुए भी बहुत कुछ समष्टि

अर्थशास्त्र के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसके निम्न कारण हैं :

(1) फर्म जिन कच्चे माल, संयन्त्र, आदि का जो क्रय करता है उनकी मांग पैदा करता है। इन वस्तुओं का मूल्य न केवल इसकी अपनी मांग से प्रभावित होता है वरन् इस फर्म तथा इससे सम्बन्धित समस्त उद्योग की मांग के द्वारा निश्चित होता है। इतना ही नहीं, इन साधनों की मांग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में क्या है, इस पर भी इनका मूल्य आश्रित होता है।

(2) कोई फर्म विशेष अपनी कितनी वस्तुएँ बेच सकती हैं, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उससे सम्बन्धित उद्योग की वस्तुओं की मांग तथा अर्थव्यवस्था की सामान्य मांग का स्तर क्या है। यदि उद्योग या अर्थव्यवस्था में मांग का स्तर ऊंचा है तो साधारणतया फर्म की वस्तुओं की मांग भी बढ़ती है। मन्दी की स्थिति में मांग भी गिरेगी। इसके उदाहरण मुद्रास्फीति व विस्फीति हैं।

(3) किसी एक वस्तु का मूल्य केवल उसी की मांग व पूर्ति से प्रभावित नहीं होता अपितु अन्य वस्तुओं की मांग और पूर्ति की स्थितियों पर भी निर्भर करता है।

1.7 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के उत्तरदायित्व

(1) व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति—एक प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री अपने उत्तरदायित्वों को तभी अच्छी तरह निभा सकता है जब वह सदा अपने सामने व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य को रखे। व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य लगाई गई पूंजी पर अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि उसका कार्य फर्म के लाभ को अधिकतम सीमा तक पहुंचाने में सहायता करता है।

(2) सफल अनुमान— प्रबन्धकीय निर्णय स्वभावतः भविष्य

RIL-082

के अनुमान से सम्बधित है जो अनिश्चित है। अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह सफल अनुमान करे और इसी में उसकी सफलता निहित है। प्रबन्ध का विश्वास प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री में तभी होता है जबकि उसके अनुमान सत्य निकलते हैं।

(3) अपनी त्रुटियों से प्रबन्ध को सूचित करना— पता चलने पर उनका दायित्व है कि प्रबन्ध को जल्दी से जल्दी सचेत कर दे कि उसके अनुमान में गलती रह गयी है। ऐसा करने से वह प्रबन्ध को न सिर्फ निर्णय में उचित संशोधन करने में सहायक होगा, बल्कि वह अपनी स्थिति को प्रबन्ध समूह में बनाए रखने में भी सफल होगा।

(4) व्यापक सम्बन्ध— उसका कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धों को विस्तृत बनाकर रखे जिससे कि वह आंकड़ों के उन स्रोतों तक पहुँच सके जहाँ प्रबन्ध के अन्य सदस्यों की पहुंच या तो हो ही न सके या होना कठिन हो,। सूचनाओं के स्रोतों का पता और सूचना प्राप्त करने के स्थानों का ज्ञान बड़े पैमानों पर तो आवश्यक है ही, पर इससे कम महत्वपूर्ण यह नहीं है कि वह उन व्यक्तियों को जानता हो जो विशिष्ट ज्ञान रखते हैं।

(5) तत्परता— प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को सफल कहलाने के लिए ऐसे गुणों को विकसित करना चाहिए जिससे कि वह समूह में अपना विशिष्ट स्थान बना सके। उसे हमेशा ही अपनी सेवायें उन कार्यों में लगाने के लिए प्रस्तुत करना चाहिए जो विशिष्ट हों।

1.8 व्यावसायिक फर्म

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु व्यावसायिक फर्म होती है इसलिए इसे **''फर्म का अर्थशास्त्र''** भी कहा जाता है। फर्म शब्द ''व्यावसायिक प्रतिष्ठान' शब्द की अपेक्षा अधिक व्यापक है क्योंकि फर्म के क्षेत्र में कृषिगत प्रतिष्ठान, व्यवसायी, तकनीकी तथा सेवा

कार्य करने वाली एवं आय उत्पादित करने वाली इकाइयां भी सम्मिलित की जानी है। "लाभ सर्वाधिकरण हेतु लाभ पर बेचने के लिए उत्पादन करने वाली इकाई फर्म होती है।" —डी० एस० वाटसन

"फर्म एक मध्य एजेण्ट है जो कि संगठनात्मक कार्य करने के लिए स्रोत स्वामियों तथा उपभोक्ताओ के बीच मध्यस्था करती है।'

—जी०सी० आर्चीबाल्ड

विशेषतायें—

(1) लाभ (2) विवेक (3) रूपान्तरण (4) उत्पत्ति-मूल्य निर्णय (5) आदान व उत्पादन के मूल्य

कार्य एवम् उद्देश्य

(1) लाभ सर्वाधिकरण,

(2) सन्तुष्टिकरण व्यवहार,

(3) बाजार विस्तार,

(4) सुदृढ़ वित्तीय स्थिति।

(5) मधुर श्रम सम्बन्ध,

(6) दीर्घकालीन अस्तित्व,

(7) सामाजिक उत्तरदायित्व,

(8) कुल विक्रय आगम सर्वाधिकरण,

(9) लागत न्यूनाधिकरण,

(10) व्यावसायिक साम्राज्य निर्माण,

(11) आर्थिक आत्मनिर्भरता।

1.9 सारांश

सामान्य अर्थशास्त्र का एक रूप प्रबंधकीय अर्थशास्त्र होता है।

सामान्य अर्थशास्त्र जहाँ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एवं उसके अन्य पहलुओं का अध्ययन है वही प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक प्रबंधक को किन बातों एवं सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिए का, अध्ययन किया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की गतिविधियाँ प्रबंधक द्वारा सम्पादित की जाती हैं। अतः यह एक कला एवं विज्ञान दोनों रूपों में पाया जाता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत फर्म की मांग, मांग पूर्वाभास, लागत तथा लाभ सम्बन्धी निर्णय आते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अनेक उत्तरदायित्व होते हैं जो व्यवसाय एवं फर्म को सुचारूपूर्वक चलाने के लिए आवश्यक होते हैं। फर्मों की विशेषताओं के अन्तर्गत लाभ, विवेक, रूपान्तरण, उत्पत्ति मूल्य निर्णय तथा आदान व उत्पादन के मूल्य होते हैं। इसके अतिरिक्त फर्म का कार्य एवं उद्देश्य ऐसी नीतियां एवं कार्य प्रणाली को अपनाना जिससे फर्म लाभ को प्राप्त करते हुए दीर्घकाल तक स्थायी रह सके।

1.10 बोध प्रश्न

1. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र की विवेचना करें।
2. "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र वह अनुशासन है जो कि आर्थिक सिद्धान्तों के व्यावसायिक प्रबन्ध में प्रयोग का अध्ययन करता है।" विवेचना करें।
3. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के स्वभाव एवम् क्षेत्र का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के कार्यों की विवेचना करें।
5. व्यावसायिक फर्म की परिभाषा दीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करें।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई–2 मांग की प्रकृति एवं उसका नियम (Nature and Law of Demand)

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मांग की परिभाषा

2.3 मांग का नियम

2.4 मांग के प्रकार

2.5 मांग वक्र का स्वरूप

2.6 मांग के नियम के विभिन्न रूप

2.7 मांग में परिवर्तन

2.8 सारांश

2.9 बोध प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे—

- मांग का अर्थ समझने में,
- मांग का नियम जानने में,
- मांग वक्र का विश्लेषण करने में, तथा
- मांग के नियम के विभिन्न रूप जानने में।

2.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के अध्ययन में मांग का नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण

स्थान रखता है तथा सम्पूर्ण अर्थशास्त्र प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में किसी न किसी प्रकार से मांग के नियम से अवश्य प्रभावित है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण अर्थशास्त्र मांग और पूर्ति के चारों ओर चक्कर लगा रहा है। मांग के बिना उपभोग तथा बाजार का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। मांग का नियम अर्थाशास्त्र का आधारभूत नियम है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में मांग के नियम का अत्यधिक महत्व होता है, क्योंकि प्रबंधक को अनेक निर्णय लेने होते हैं जिन्हें वह इस नियम के आलोक में आसानी से लेने में सक्षम होता है।

2.2 मांग की परिभाषा (Definition of Demand)

मांग को समझने के लिए मांग की परिभाषा के वर्गीकरण को समझना आवश्यक है। प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

(i) मांग का सम्बन्ध प्रभावपूर्ण इच्छा से है—

इस वर्ग के अन्तर्गत अर्थशास्त्रियों ने मांग को प्रभावपूर्ण इच्छा का पर्याय माना है। प्रो. पेन्सन के अनुसार ''मांग एक प्रभावी इच्छा है जिसमें तीन बातें शामिल होती हैं—

i. वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा,

ii. वस्तु को खरीदने के उपलब्ध साधन, तथा

iii. साधनों को खर्च करने की तत्परता''

प्रो. पेन्सन की परिभाषा को त्रुटिपूर्ण माना गया क्योंकि जहां एक ओर यह मांग की मूलभूत प्रवृत्तियों की सही व्याख्या नहीं

करती वही यह मांग और आवश्यकता में भी अन्तर नहीं करती है क्योंकि मांग सदा ही मूल्य एवं समय के सन्दर्भ में व्यक्त की जाती है।

(ii) मांग का सम्बन्ध मूल्य से है— दूसरे वर्ग में ऐसी परिभाषाएं है जिनमें मांग का सम्बन्ध मूल्य से स्थापित किया गया है। इसमें प्रमुख परिभाषाएं निम्न हैं—

प्रो. जे० एस० मिल के अनुसार-, "मांग शब्द का अभिप्राय मांगी गई मात्रा से लगाया जाना चाहिए जो कि एक निश्चित मूल्य द्वारा क्रय की जाती है। मांग की मात्रा स्थिर मात्रा नहीं होती, यह तो सामान्य मूल्य के साथ बदलती रहती है। वाघ (Waugh) के अनुसार, "किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की मात्रा तथा उसकी कीमत से सम्बन्धित होती है, जो कीमत विशेष पर खरीदी जा सकती है।"

इस वर्ग की परिभाषाएं पहले वर्ग से उपयुक्त हैं। यहां मांग का सम्बन्ध कीमत से जोड़ा गया। इस वर्ग की परिभाषा में भी समय तत्व की उपेक्षा की गई है। अतः इस वर्ग की परिभाषा भी त्रुटिहीन नहीं है।

(iii) मांग का सम्बन्ध कीमत तथा समय दोनों से है—

इस वर्ग की परिभाषाएं मांग का सम्बन्ध कीमत और समय से स्थापित करती हैं जो वास्तव में मांग की मूल प्रवृत्तियों का सही चित्र प्रस्तुत करती है। इस वर्ग की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

बेन्हम के अनुसार, "किसी समय विशेष में दिए हुए मूल्य पर किसी वस्तु की मांग उस परिमाण को कहते हैं, जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में क्रय की जाती है।

मेयर्स (Mayers) के अनुसार, "किसी वस्तु की मांग उन वस्तुओं की मात्राओं की सारिणी होती है, जिन्हें क्रेता समय विशेष पर सभी सम्भव मूल्यों पर खरीदने के लिए तैयार रहता है।"

इस वर्ग की परिभाषाएं अन्य वर्गों से अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह परिभाषाएं मांग के वास्तविक तत्वों पर प्रकाश डालती हैं।

2.4 मांग के प्रकार

यदि हम वस्तु का मूल्य (P), उपभोक्ता की आय (Y) तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य (Po) तीन चरों (Variables) को लें तथा एक-एक में परिवर्तन के बाद माँग में परिवर्तन जानना चाहें तो हमारे सामने निम्न तीन रूप आएंगे।

(क) मूल्य मांग सिद्धान्त (Price-Demand Theory)— वस्तु की मांग तथा वस्तु के मूल्य के बीच सम्बन्ध जबकि आय तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर हों, यह बताता है कि यदि वस्तु के मूल्य में परिवर्तन हो तो इसका क्या प्रभाव उस वस्तु की मांग के ऊपर पड़ेगा।

(ख) आय-मांग का नियम (Income Demand Theory) — $D_x = f(y)$

वस्तु की माँग (Dx) तथा आय (y) के बीच सम्बन्ध जबकि x वस्तु का मूल्य (P) तथा x को छोड़कर अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_o) स्थिर हों, अर्थात् यदि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन हो तो वस्तु की माँग में किस प्रकार का परिवर्तन होगा।

(ग) तिर्यक मांग या आड़ी मांग सिद्धान्त (Cross-Demand Theory) $D_x = f(P_o)$—वस्तु की मांग dx तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच सम्बन्ध, जबकि वस्तु का मूल्य (P_x) तथा आय (y) अपरिवर्तित हो।

वास्तव में माँग का नियम इन तीनों का ही सम्मिलित रूप है, जिसे प्रो० मार्शल ने दिया है।

मांग का तार्किक सिद्धान्त तीन अलग-अलग आधारों से उत्पन्न होता है-

(1) सीमान्त उपयोगिता परिकल्पना (Marginal Utility Hyptothesis)

(2) अधिमान परिकल्पना

(3) व्यक्त अधिमान परिकल्पना

Assumptions (मान्यताएँ)

1. उपभोक्ताओं की रुचियों व अधिमानों में कोई परिवर्तन न हो
2. उपभोक्ता की आय स्थिर रहे।
3. रीति-रिवाजों में कोई परिवर्तन न हो।
4. प्रयोग में आने वाली वस्तु साधारण हो, अर्थात् श्रेष्ठता प्रदान करने वाली न हो।
5. अन्य वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन न हो।
6. भविष्य में कीमत परिवर्तन की आशा न हो।
7. वस्तु-विशेष के गुण में परिवर्तन न हो।
8. उपभोक्ता की आदतें स्थिर रहे।

2.5 मांग वक्र का स्वरूप

1. सीमान्त उयोगिता ह्रास नियम– इस नियम के कारण माँग वक्र नीचे की ओर गिरेगा (Sloping Downward)। किसी वस्तु की जैसे-जैसे अधिक मात्रा का प्रयोग होगा, उसकी सीमांत उपयोगिता गिरती जाएगी। उपभोक्ता किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु के मूल्य में कमी हो।

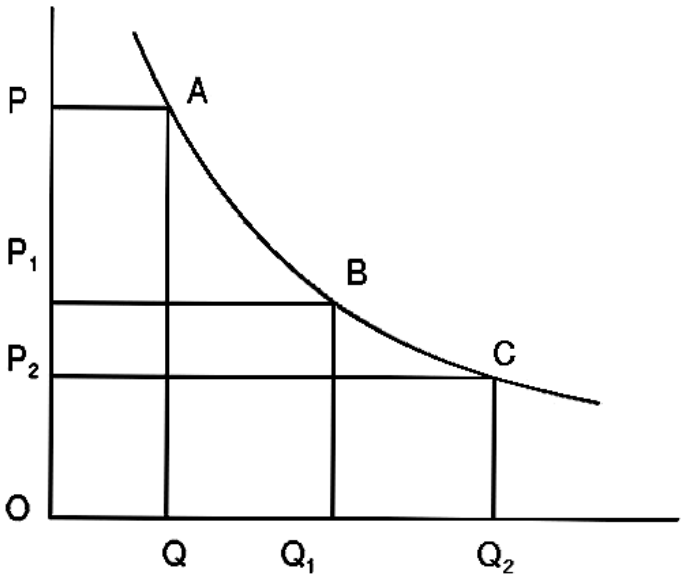

2. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम तथा मांग वक्र का नीचे दाहिनी ओर गिरना।

इसके अंतर्गत $\frac{M_{U_x}}{P_x} = M_{U_m}$ होना आवश्यक है।

M_{U_x} – 'X' पदार्थ की सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility of x commodity)

P_x – 'X' पदार्थ का मूल्य (Price of x commodity)

M_{U_m} – मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility of money)

M_{U_m} के स्थिर रहने की स्थिति में P_x की गिरावट के साथ M_{Um} का गिरना आवश्यक है और M_{U_m} तभी गिरेगा जबकि x वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग में लायी जाए।

सामान्यतया मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है पर कुछ अपवाद स्वरूप यह ऊपर की ओर (Sloping Upward) भी

हो सकता है:

1. प्रतिष्ठा सूचक वस्तुयें— इन वस्तुओं की ऊंची कीमत दिखावटी प्रभाव (Demonstration effect) डालने के लिये लोग पसन्द करते हैं।

2. गिफेन वस्तुएँ : इसका आम प्रभाव इतना व्यापक होता है कि ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव (Negative Substitution effect) को समाप्त कर देता है। ज्यादा आम होने पर लोग ऊंची कीमत की वस्तुएँ पसन्द करेंगे। इसे गिफेन अपवाद (Giffen's Paradox) की संज्ञा अर्थशास्त्री गिफेन जिन्होंने इसका अन्वेषण किया था, के नाम पर दी गयी।

3. मंदी या युद्ध की स्थिति : लोग संचय (Storing) करना शुरू कर देते हैं।

4. जीवन निर्वाह वस्तुएँ : जो लोगों को जीवन के लिए निश्चित मात्रा में अवश्य चाहिए। चाहे उसकी कीमत जितनी ऊँची ही हो, ऐसी वस्तु का उदाहरण नमक है।

बाजार मांग वक्र

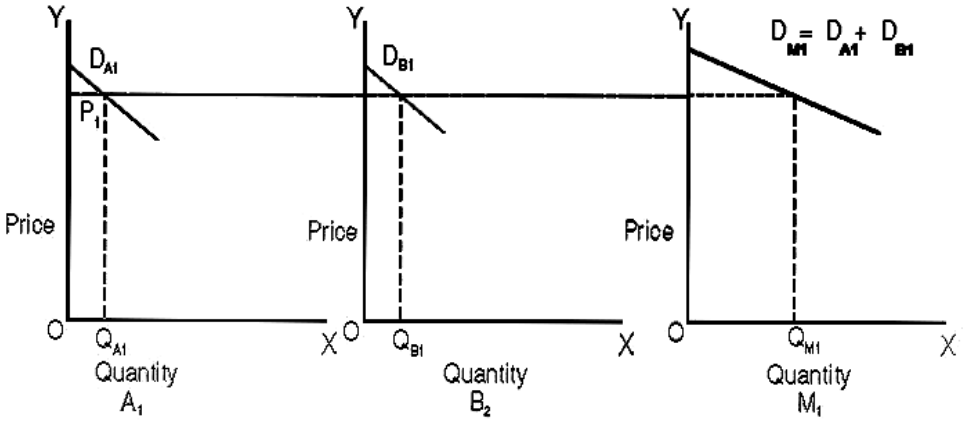

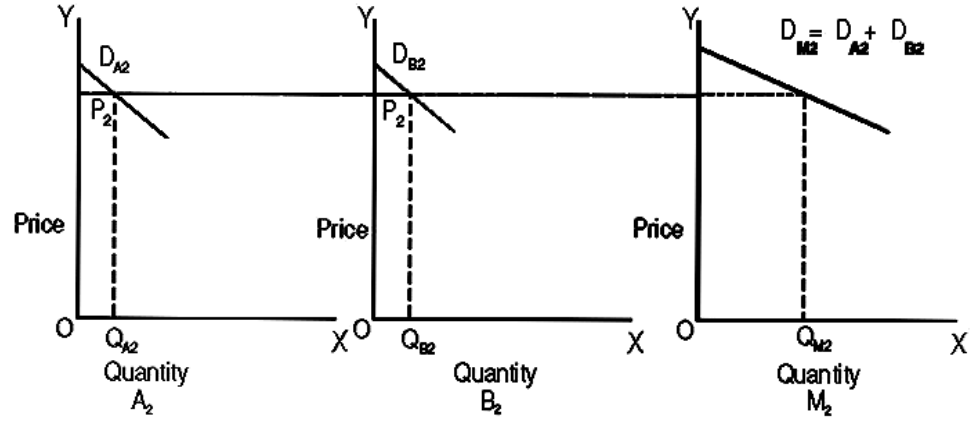

समाज में सभी व्यक्तियों के माँग वक्रों का जोड़ बाजार मांग वक्र होता है।

Demand curve of A + Demand curve of B = Market Demand curve

2.6 मांग के नियम के विभिन्न रूप

1. स्थानापन्न प्रभाव (Substitution effect) : एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में कमी ला दे।

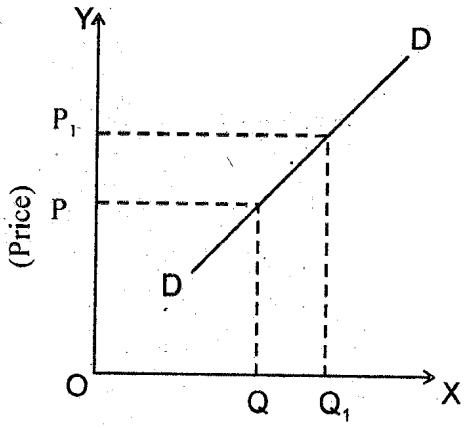

2. पूरक प्रभाव (Complementary goods) : पूरक वस्तुएं जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि ला दें।

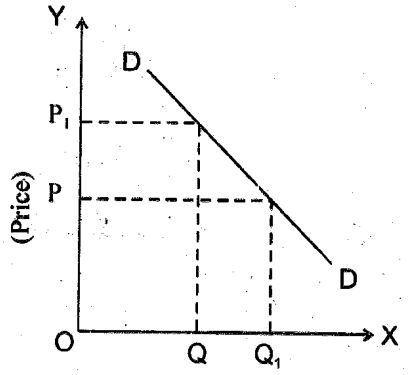

३. आय प्रभाव (सामान्य वस्तु तथा निम्नकोटि वस्तु के लिए)

सामान्य वस्तु : आय बढ़ने के साथ-साथ वस्तु की माँग बढ़ेगी।

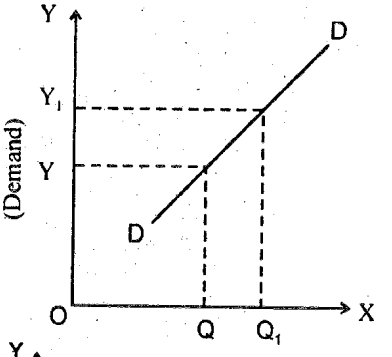

निम्नकोटि वस्तु : आय बढ़ने पर वस्तु की मांग घटती है। लोग ऊँची आय से घटिया वस्तु की जगह अच्छी या महंगी वस्तु खरीदेंगे।

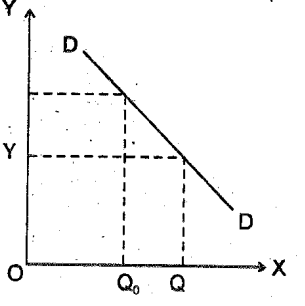

RIL-082

2.7 मांग में परिवर्तन (Change in Demand)

(क) संकुचन या विस्तार (Expansion or Contraction of Demand)

अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी के कारण मांग बढ़ती है तो इसे विस्तार (expanstion) तथा कीमत के बढ़ने पर मांग में कमी संकुचन (contraction) प्रभाव कहते हैं।

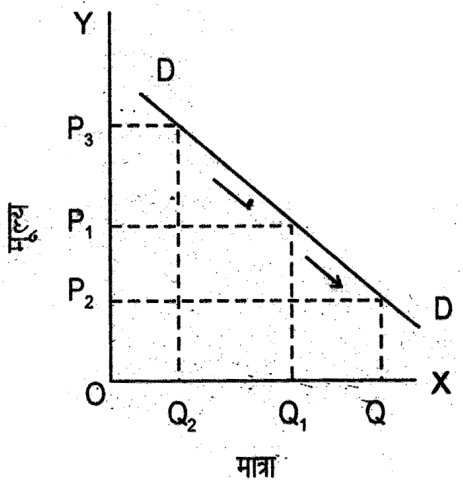

(ख) मांग में परिवर्तन Shifting of Demand :

यदि वस्तु की कीमत स्थिर रहे, लेकिन अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण, एक ही मूल्य पर मांग अपेक्षाकृत अधिक हो जाए तो मांग वृद्धि (increase in or inten-sification of demand) कहेंगे।

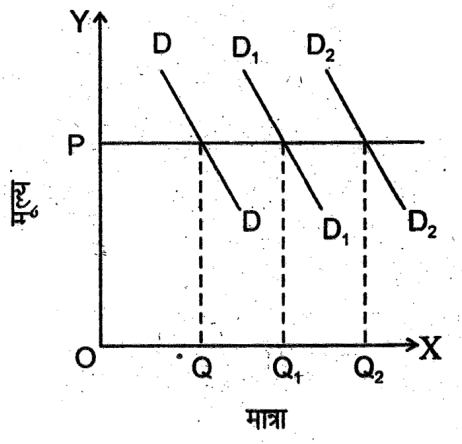

चित्र में D_2 D_2 के द्वारा इसे दिखाया गया है।

यदि अन्य तत्त्वों के प्रभाव स्वरूप मांग में कमी होने से मांग वक्र नीचे आ जाए जैसा कि चित्र में DD वक्र प्रदर्शित करता है तो इसे मांग में कमी (Decrease in or weakening in Demand) कहेंगे।

RIL-082

(मार्शल के सम सीमांत उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर मांग वक्र का व्युत्पादन)

(Derivation of Demand curve from equi marginal utility approach)

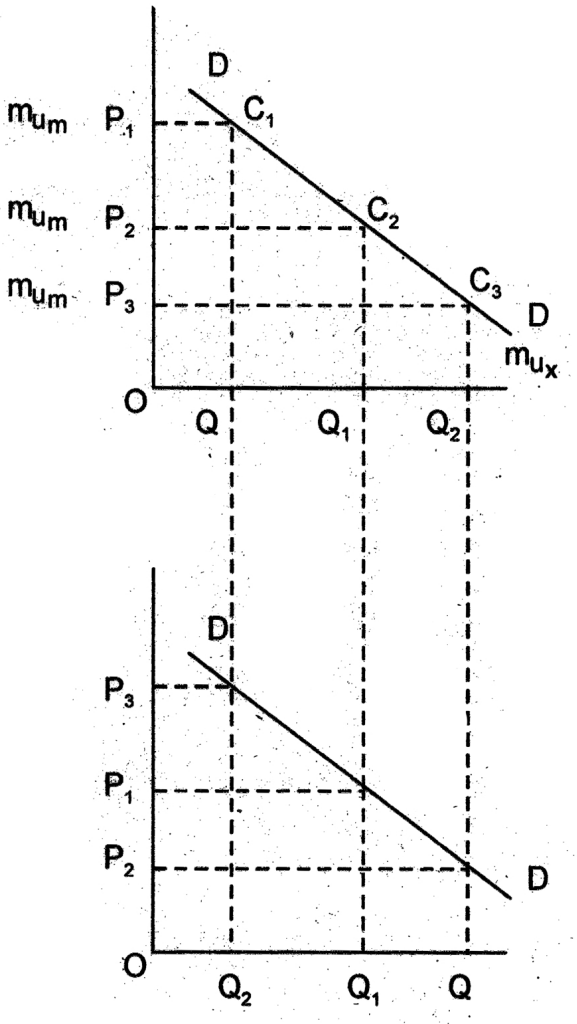

$$\frac{M_{U_x}}{P_x} = M_{U_m}$$

आलोचनाएँ (Criticisms) :

(Limitations of Utility analysis or demand theory)

1. उपयोगिता को गणन-संख्या प्रणाली (Cardinal measurement) से नहीं मापा जा सकता।
2. एक वस्तु मॉडल अवास्तविक है।
3. मुद्रा उपयोगिता का अपूर्ण माप है।
4. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं है।
5. उपयोगिता विश्लेषण आय-प्रभाव, स्थानापन्न प्रभाव एवं कीमत

RIL-082

प्रभाव का अध्ययन नहीं करता।

6. यह नियम Giffen या घटिया (inferior) वस्तुओं की व्याख्या नहीं करता।

7. यह विश्लेषण अविभाज्य वस्तुओं की मांग को समझाने में विफल है।

2.8 सारांश

अर्थशास्त्र का प्रमुख सिद्धान्त मांग एवं पूर्ति का सिद्धान्त है। मांग को परिभाषित करने के क्रम में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार परिभाषित किया है। जहाँ कुछ ने इसका सम्बन्ध मूल्य से एवं अन्य ने इसे कीमत तथा समय दोनों से जोड़ा है। मांग के सिद्धान्त के अन्तर्गत आय का सिद्धान्त तथा तिर्यक मांग का सिद्धान्त आता है। मांग का सिद्धान्त तीन आधारों - सीमान्त उपयोगिता, अधिमान परिकल्पना तथा व्यक्त अधिमान परिकल्पना से उत्पन्न होता है। मांग का नियम अनेक मान्यताओं पर आधारित है। सामान्यतः मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। सभी व्यक्तियों के इकट्ठा मांग को बाजार मांग वक्र कहते हैं। मांग वक्र के अनेक अपवाद देखे जा सकते हैं। मांग के नियम के अनेक रूप देखे जाते हैं। मांग में परिवर्तन भी अनेक कारणों से देखा जा सकता है।

2.9 बोध प्रश्न

1. मांग से आप क्या समझते हैं ? मांग के प्रमुख प्रकारों

को बताइये।

2. मांग वक्र के स्वरूप को विश्लेषित करें।

3. मांग में परिवर्तन का वर्णन करें।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-3 मांग का विश्लेषण

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मांग का विश्लेषण

3.2.1 मांग का नियम

3.2.2 मार्शल का मांग का नियम

3.2.3 मांग की सारिणी तथा व्यक्तिगत मांग वक्र

3.2.4 मांग वक्र का स्वरूप

3.2.5 बाजार मांग वक्र

3.3 आड़ी मांग

3.4 मांग के प्रकार

3.5 मांग में परिवर्तन

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्न

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :-

- मांग के नियम का विश्लेषण करने में,
- मांग सारिणी एवं मांग वक्र के स्वरूप को जानने में,
- मांग के प्रकारों को जानने में. तथा

– मांग में परिवर्तन के कारणों को समझने में।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने मांग की प्रकृति एवं उसके नियम का अध्ययन किया। इस इकाई में मांग के नियम का विश्लेषण एवं उससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा। मांग के विश्लेषण के अन्तर्गत मांग का नियम क्यों इस तरह कार्य करता है तथा कौन से ऐसे तत्व हैं जो मांग के नियम को प्रभावित करते हैं तथा मांग वक्र का क्या स्वरूप होगा, कि इस बात का अध्ययन किया जायेगा। मांग के नियम के अनुसार जब वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं तो उनकी मांग घट जाती है तथा जब मूल्य घट जाते हैं तो उनकी मांग बढ़ जाती है। इस नियम को मांग-विश्लेषण के अन्तर्गत विश्लेषित कर वास्तविक एवं उचित कारणों को तलाशा जाता है। इस प्रकार इस इकाई के अन्तर्गत मांग से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा।

3.2 माँग-विश्लेषण (Demand Analysis)

जब कोई उपभोक्ता किसी दिये हुए समय एवं मूल्य पर, बाजार में किसी वस्तु की जो मात्रा क्रय करता है, उसे उस वस्तु की माँग कहते हैं। मूल्य के उल्लेख के बिना माँग का कोई अर्थ नहीं होता है। अतः मांग के साथ मूल्य का उल्लेख आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न मूल्यों पर किसी वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राएं माँगी जायेंगी तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त किसी दिये गये समय में मूल्य ही वह तत्व है जो मांग को उस वस्तु

की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है। यद्यपि कि अनेक अर्थशास्त्री प्रभावोत्पादक इच्छा को ही मांग कहते हैं पर वस्तुस्थिति यह है कि प्रभावोत्पादक इच्छा, आवश्यकता होती है। जब आवश्यकता अथवा प्रभावोत्पादक इच्छा का अध्ययन किसी निश्चित समय में तथा निश्चित मूल्य पर किया जाता है तो यह मांग कहलाती है। बेन्हम (Benham) ने माँग को परिभाषित करते हुए कहा- किसी दिये हुए मूल्य पर किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में खरीदी जायेगी।

3.2.1 मांग का नियम —

किसी वस्तु की मांग तथा उसके निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या मांग के नियम के नाम से जानी जाती है। किसी वस्तु की मांग उस वस्तु के मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्य जिससे मांग प्रभावित हो सकती है, उपभोक्ता की आय तथा उपभोक्ता की पसंद पर निर्भर करती है। अतः मांग के नियम का उद्देश्य वस्तु की मांग तथा उपरोक्त निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है। मांग के नियम को फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$D_x = f(P_x, P_o, Y, T)$$

जहां D_x = किसी वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की मांग है।

P_x = इस वस्तु का मूल्य

P_o = वस्तु x के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं के

मूल्य

Y = उपभोक्ता की आय तथा

T = उसकी रुचि व्यक्त करता है।

इस समीकरण का अर्थ यह हुआ कि मांग का नियम यह स्पष्ट करता है कि यदि वस्तु के मूल्य, उपभोक्ता की आय, उसकी रुचि तथा उस वस्तु की स्थानापन्न या पूरक वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन हो तो उसका प्रभाव उस वस्तु की मांग पर पड़ेगा। परन्तु एक साथ इन सभी चरों में परिवर्तन करके इनका मांग के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन एवं विश्लेषण अत्यन्त ही कठिन कार्य होगा तथा मांग के नियम की सरल रूप में व्याख्या सम्भव नहीं हो पायेगी। अतः दिये गये सभी चरों में से वस्तु के मूल्य को छोड़कर शेष सभी चरों को स्थिर मान लिया जाता है। इस प्रकार मांग का नियम मांगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में जाना जाता है। यह इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$Dx = f(P_x) \text{ (अन्य तत्त्वों के समान रहने पर)}$$

उपभोक्ता के व्यवहार अथवा किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसकी मांग की व्याख्या के लिए तथा मांग के नियम के स्पष्टीकरण के लिए मार्शल से लेकर अब तक समय-समय पर अनेक सिद्धान्तों ने योगदान किया है। सर्वप्रथम मांग के नियम का प्रतिपादन प्रो० मार्शल ने किसी वस्तु से मिलने वाली मापनीय सीमान्त उपयोगिता के आधार पर किया तथा यह बताया कि किसी वस्तु की मांग (D_x) तथा वस्तु के मूल्य (P_x) में विलोम सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है जैसे-जैसे किसी वस्तु

RIL-082

का मूल्य बढ़ता जायेगा उसकी मांग कम होती जायेगी तथा इसके विपरीत यदि वस्तु का मूल्य गिरता जायेगा तो उसकी मांग बढ़ती जायेगी।

3.2.2 मार्शल का मांग का नियम

उपयोगिता का संख्यात्मक माप सम्भव मानते हुये तथा वस्तु के स्टॉक में वृद्धि के साथ उसकी सीमान्त उपयोगिता में कमी होती जाती है, पर उपयोग के दौरान मुद्रा की सीमान्त उयोगिता स्थिर रहती है, मार्शल ने मांग के नियम का प्रतिपादन करते हुये कहा कि किसी वस्तु की मांगी हुई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोम सम्बन्ध पाया जाता है तथा जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य गिरता जाता है उसकी मांग बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता जाता है उसकी मांग गिरती है। मार्शल के शब्दों में—"मांग का एक सामान्य नियम है— किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके अधिक क्रेता मिल सकें। दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से मांग घटती है और मूल्य के गिरने से मांग बढ़ती है। अतः मार्शल के अनुसार D_x तथा P_x के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् मूल्य (P_x) में वृद्धि होने पर माँग (D_x) में कमी हो जायेगी। इस विपरीत सम्बन्ध के कारण ही मूल्य माँग सम्बन्ध ऋणात्मक होता है। मूल्य में होने वाला परिवर्तन मांग में विपरीत परिवर्तन लाता है परन्तु दोनों में परिवर्तन एक निश्चित अनुपात में हो, यह आवश्यक नहीं है। इस प्रकार मार्शल का मांग से सम्बन्धित दृष्टिकोण ही मांग का नियम कहलाता है।

RIL-082

3.2.3 माँग की सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर मांगी या क्रय की जाती है, मांग सारणी कहलाती है। वस्तु के मूल्य तथा मांग में विलोम फलनात्मक सम्बन्ध के कारण जब किसी वस्तु का मूल्य अधिक होता है तो वस्तु की कम मात्रा मांगी जाती है तथा इसके विपरीत जब वस्तु का मूल्य कम रहता है तो अधिक वस्तुएं मांगी जाती हैं। मांग की सारणी दो प्रकार की होती है— व्यक्तिगत मांग की सारणी तथा सामूहिक मांग की सारणी। किसी व्यक्ति द्वारा किसी मूल्य पर मांगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची को व्यक्तिगत मांग की सारणी कहते हैं। जब विभिन्न व्यक्तियों की मांग की सारणियों को मिला देते हैं तो सामूहिक मांग की सारणी बन जाती है।

सारिणी

मूल्य प्रति इकाई	वस्तु की मांगी गई इकाइयां
रु0	संख्या
20	20
15	30
10	40
5	60

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा बढ़ती गयी है अथवा जैसे-जैसे मूल्य बढ़ता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा घटती गई है।

सारणी द्वारा प्रदर्शित मूल्य तथा वस्तु की मात्रा के सम्बन्ध को रेखाचित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।

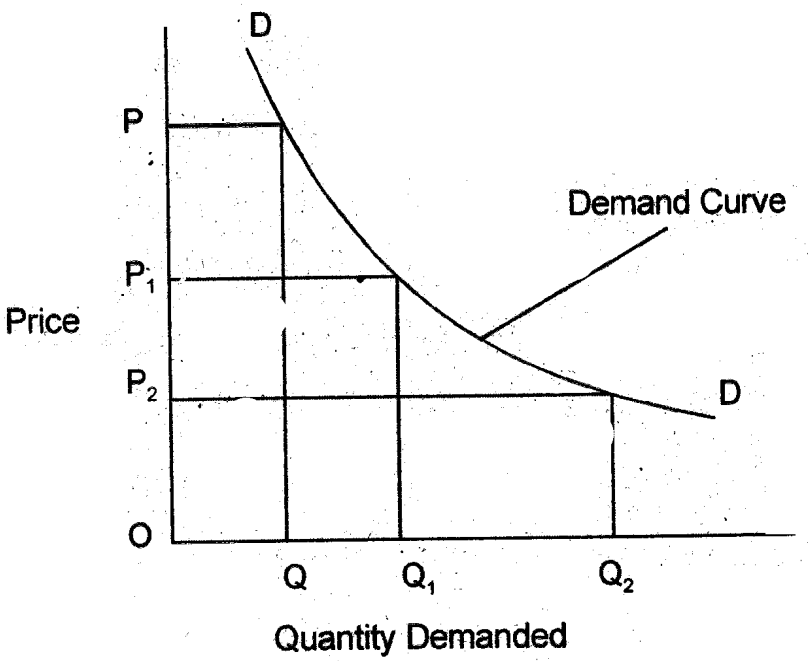

रेखाचित्र में प्रदर्शित DD मांग वक्र है जो दायें गिरता हुआ है। रेखाचित्र से स्पष्ट है जब मूल्य OP है तो मांग OQ जब मूल्य घटकर OP_1 हो जाता है तो मांग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार मूल्य OP_2 होने की स्थिति में मांग बढ़कर OQ_2 हो गयी है।

नियम की मान्यतायें

मांग का नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है। अतः मांग के नियम की चर्चा करते समय यह उल्लेख किया गया कि नियम तभी सत्य होगा जब अन्य बातें समान रहें। यह मान्यताएं निम्नलिखित हैं:-

1. लोगों की आय स्थिर रहे।
2. अन्य वस्तुओं के मूल्य के वृद्धि न हो।
3. लोगों की रुचि स्थिर बनी रहे।

4. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग न हो।
5. वस्तु के मूल्य में होने वाला परिवर्तन इस आशा को जन्म न दे कि भविष्य में मूल्य और बढ़ेगा अथवा घटेगा।
6. वस्तु ऐसी न हो कि मूल्य में वृद्धि के कारण लोग इसे प्रतिष्ठा सूचक समझ कर अधिक क्रय करने लगें।

यदि उपर्युक्त मान्यतायें रहे तो मांग की सारिणी वही बनी रहेगी और मांग वक्र वही बना रहेगा। परन्तु यदि इन मान्यताओं में परिवर्तन हो जाय तो मांग की मूल सारिणी ही परिवर्तित हो जायेगी। परिणामस्वरूप मांग वक्र दूसरा बन जायेगा। इस स्थिति में यह सम्भव है कि उसी मूल्य पर पहले से अधिक अथवा कम वस्तुएं मांगी जायें।

3.2.4 मांग वक्र का स्वरूप—

मांग वक्र की प्रारम्भिक व्याख्या से यह स्पष्ट है कि मांग वक्र सामान्यतया नीचे दाहिने ओर झुकेगा। यहां हम उन कारणों का उल्लेख करेंगे जिनके कारण मांग वक्र नीचे दाहिने ओर गिरता हुआ पाया जाता है। ये कारण निम्नलिखित हैं—

1. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम— इस नियम के अनुसार कोई उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयां क्रय करता जायेगा उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जायेगी। अतः उपयोगिता की कमी होने के कारण कोई भी उपभोक्ता किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु के मूल्य में कमी हो। इसके विपरीत यदि किसी कारण से उपभोक्ता को उस वस्तु की कम मात्रा उपलब्ध हो तो उस वस्तु की उपयोगिता अधिक होगी और वह उसके लिए अधिक मूल्य देने के लिए तत्पर हो जायेगा। ऐसा वह

इसलिए करेगा क्योंकि मूल्य के रूप में उसे उपयोगिता का त्याग करना पड़ता है और यह त्याग अधिक मूल्य पर अधिक तथा कम मूल्य पर कम होगा। परन्तु कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक नहीं देगा। संस्थिति की स्थिति में वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता वस्तु के मूल्य के बराबर होती है। इस प्रकार गिरते हुये मूल्य के साथ संस्थिति के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त उपयोगिता में कमी आये और कमी तभी सम्भव है जबकि वस्तु की मात्रा में वृद्धि लायी जाय।

2. समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति— मार्शल के अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि या संस्थिति की स्थिति में वहां होगा, जहां $M_{U_x}/Px = M_{U_M}$ अर्थात् वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (जो स्थिर है) के बराबर हो जाय। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि $M_{U_x} = M_{U_M}.Px$ होगा। अतएव M_{U_M} के स्थिर रहने की स्थिति में, Px की गिरावट के साथ M_{U_x} का गिरना आवश्यक है, और यह तभी गिरेगा जब X वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग में लायी जाये।

3. प्रतिस्थापन प्रभाव— यदि किसी वस्तु का मूल्य गिरता है और स्थानापन्न वस्तु का मूल्य स्थिर बना रहता है तो उपभोक्ता मंहगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तुओं को प्रतिस्थापित करता है। इस प्रकार अधिक सस्ती वस्तु का प्रयोग बढ़ जाता है। इस प्रकार मांग में होने वाली वृद्धि प्रतिस्थापन प्रभाव कहलाती है।

4. आय प्रभाव— किसी वस्तु की कीमत में गिरावट के कारण, उस वस्तु के रूप में उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है। वास्तविक आय में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग

में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि चीनी की कीमत 20 रु0प्रति किलोग्राम से घटकर 10 रु0 प्रति किलोग्राम हो जाये तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता उतने ही व्यय से 2 किलो ग्राम चीनी खरीद सकता है। स्पष्ट है कि उसकी आय में 10 रु0 की वृद्धि हो गयी है जिसका कुछ भाग वह चीनी की अतिरिक्त मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है, तथा आय का शेष भाग अन्य वस्तुओं पर व्यय कर सकता है। वास्तव में इसे ही आय प्रभाव कहते हैं।

3.2.5 बाजार मांग वक्र—

किसी विशिष्ट समयावधि में अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक है, वह उस वस्तु की बाजार मांग होगी। उदाहरण के लिए यदि P_1 मूल्य पर X वस्तु के विभिन्न उपभोक्ताओं की मांग $d_1, d_2, d_3 ....d_n$ है तो P_1 मूल्य पर बाजार मांग $\Sigma(d_1 + d_2 + d_3 + ...d_n)$ होगी।

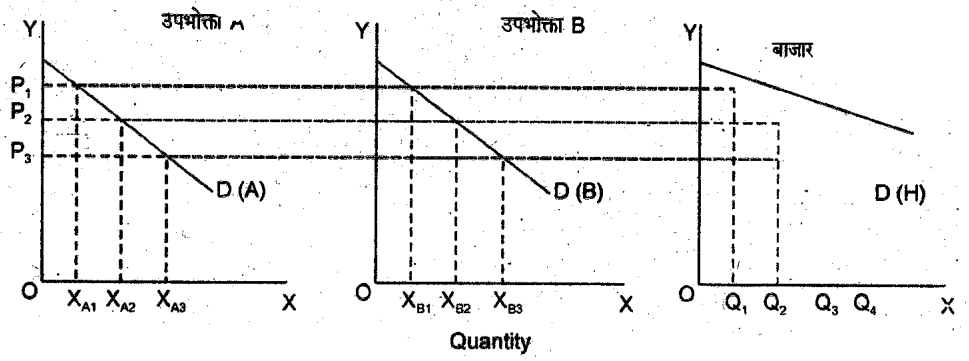

3.3 आड़ी मांग या तिर्यक मांग—

किसी वस्तु के मूल्य तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं—

(क) यदि किसी वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुएं परस्पर स्थानापन्न कहलायेंगी। x तथा y वस्तुएं उस समय स्थानापन्न कहलायेंगी जबकि y वस्तु के मूल्य में कमी होने पर उपभोक्ता x वस्तु की मांग घटा दे तथा इसी प्रकार y वस्तु के मूल्य में वृद्धि होने पर उपभोक्ता x वस्तु की मांग बढ़ा दे। अतः स्पष्ट है कि एक वस्तु के मूल्य एवं उसकी स्थानापन्न वस्तु की मात्रा में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र दो स्थानापन्न वस्तुओं X तथा y के क्रमशः मांग तथा मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस प्रकार DD वक्र $DX = f(P_o)$ को प्रदर्शित करता है। DD वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य बढ़कर OP से OP_1 हो जाता है तो स्थानापन्न X वस्तु की आंग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

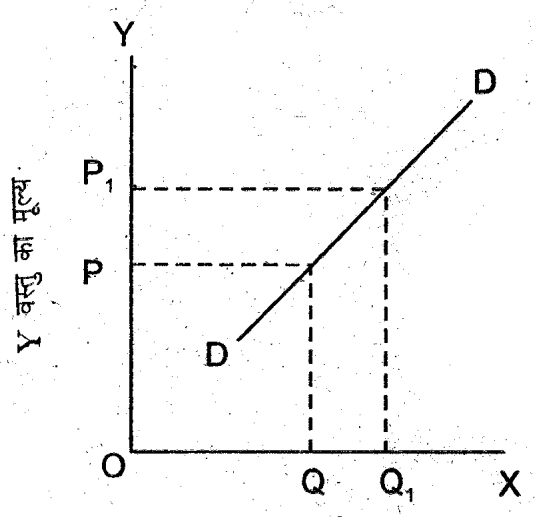

(ख) जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुयें पूरक वस्तुयें कहलायेंगी।

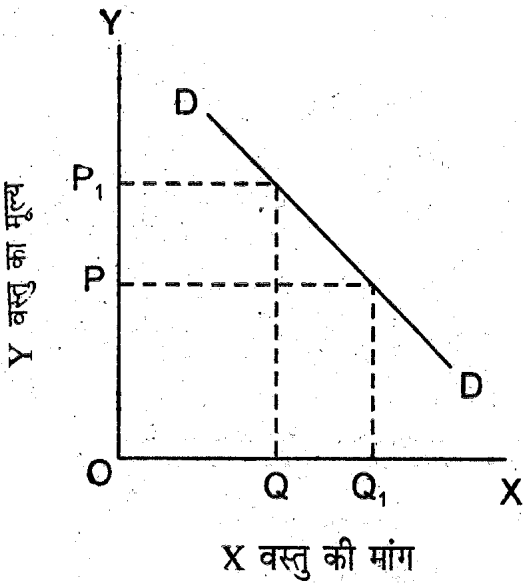

x तथा y वस्तुयें परस्पर पूरक कहलायेंगी जबकि y वस्तु के मूल्य में कमी x वस्तु की मांग में वृद्धि ला दे।

इस रेखाचित्र में DD वक्र y वस्तु के मूल्य या X वस्तु की मांग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। यह वक्र $DX = f(P_o)$ सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य Op_1 से घटकर OP हो जाता है तो X वस्तु की मांग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

आय मांग— उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की मांग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध [Dx = f(Y)] है। यह आय मांग कहलाता है। आय मांग से अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है, जिन्हें अन्य बातों के स्थिर रहने पर, उपभोक्ता एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर क्रय करता है। वस्तुयें सामान्यतः दो प्रकार की होती है- उत्तम किस्म तथा निम्न किस्म की। जहाँ उत्तम किस्म की वस्तुओं की मांग आय के बढ़ने पर बढ़ती है, वहीं निम्न कोटि की वस्तुओं की मांग आय के बढ़ने पर घटती है।

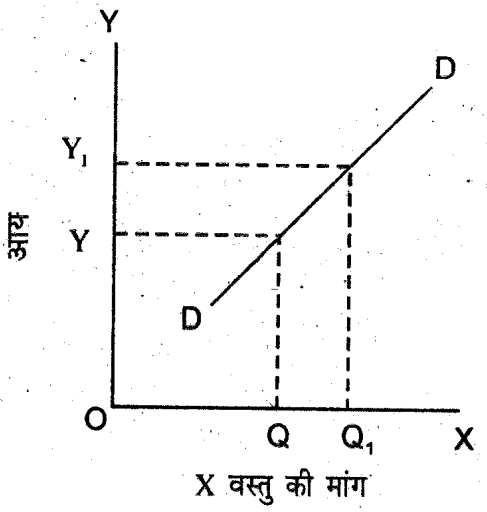

चित्र-1

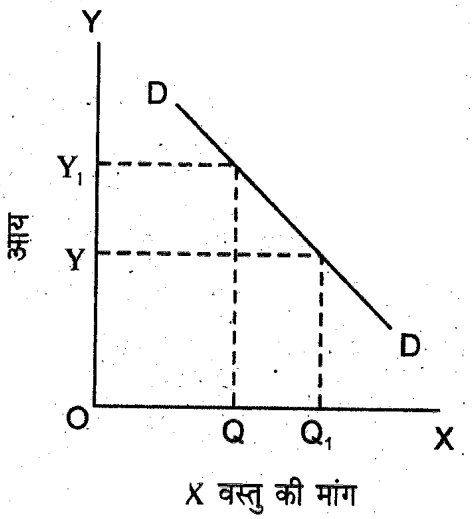

चित्र-2

चित्र-1 में DD श्रेष्ठ वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित

करता है जब आय OY से बढ़कर OY_1 हो जाती है तो x वस्तु की माँगी गयी मात्रा OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

चित्र-2 मे DD निम्न कोटि की वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि आय OY से बढ़कर OY_1 होने पर x वस्तु की माँग OQ_1 से घटकर OQ हो जाती है।

3.4 माँग के प्रकार—

माँग का नियम सामान्यतः माँगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्य, उपभोक्ता की आय तथा रुचि के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या करता है, अर्थात् $Dx = f(Px,Po,Y,T)$। पूर्व की व्याख्या में मांगी गयी मात्रा के अतिरिक्त अन्य चरों को स्थिर माना गया है। अस्तु इसी प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_o) तथा आय (Y) के साथ भी किया जा सकता है। इस प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध के आधार पर मांग को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता हैः-

1. मांग तथा उसी वस्तु के मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [Dx =f(Px)] है। जिसे मांग मूल्य कहते हैं। अब तक की व्याख्या इसी से सम्बन्धित थी।

2. मांग तथा उस वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [$D_x = f(P_o)$] है। जिसे आड़ी मांग अथवा तिर्यक मांग कहते हैं।

3. माँग तथा उपभोक्ता की आय के बीच फलनात्मक

सम्बन्ध की व्याख्या [$D_x = f(Y)$] है, जिसे आय माँग कहते हैं।

3.5 मांग में परिवर्तन—

माँग में होने वाले परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं—

(क) माँग में विस्तार तथा संकुचन

अन्य बातों के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं, और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती है तो इसे मांग का संकुचन कहते हैं। इस प्रकार एक ही मांग वक्र पर चलने की क्रिया मांग में विस्तार या संकुचन कहलाती है। मांग वक्र पर दाहिनी ओर चलना मांग में विस्तार तथा बायीं ओर चलना संकुचन कहलाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों में मांग की सारणी वही रहती है तथा एक ही माँग रेखा होती है।

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर मांगी या क्रय की जाती है मांग की सारणी कहलाती है। मांग का नियम कुछ निश्चित मान्यताओं पर कार्य करता है। मांग वक्र समान्यतया दाहिनें नीचे की ओर झुकता है। मांग वक्र का स्वरूप निर्धारित करने में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मांग मुख्यतः तीन प्रकार की होती है- मूल्य माँग, आय माँग तथा तिर्यक माँग।

(ख) मांग वक्र का विवर्तन-प्रकर्षण अथवा विकर्षण

यदि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण एक ही मूल्य पर मांग अपेक्षाकृत अधिक हो जाये तो मांग की वृद्धि या प्रकर्षण कहा जाता है। इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर मांग पहले की अपेक्षा कम हो जाये तो इसे मांग में कमी या विकर्षण कहेंगे। इस प्रकार के परिवर्तन में माँग की सारणी में परिवर्तन हो जाता है परिणामस्वरूप मांग वक्र दूसरा बनता है।

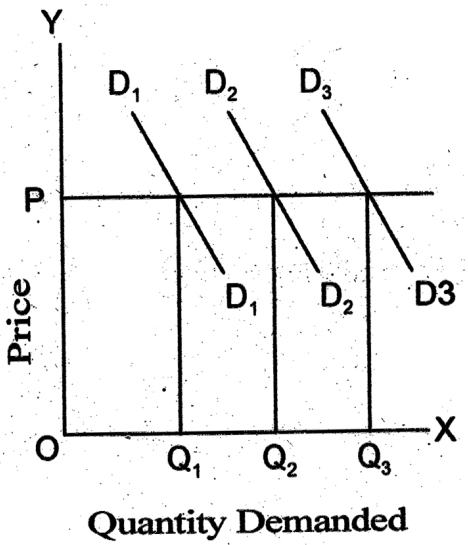

प्रकर्षण तथा विकर्षण को इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में मूल्य OP तथा मांग $D_1 D_1$ है। यदि मूल्य OP है तथा मांग $D_1 D_1$ ही रहेगी परन्तु इसके अतिरिक्त किसी अन्य कारण से मांग $D_1 D_1$ से बढ़कर D_2D_2 हो जाय अर्थात मांगी गयी मात्रा OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाय तो इसे मांग का प्रकर्षण कहा जायेगा। इसके विपरीत यदि मांग D_2D_2 से D_1D_1 हो जाये तो मांगी गयी मात्रा QQ_2 से घटकर OQ_1 हो जायेगी जिसे मांग का विकर्षण कहा जायेगा।

3.6 सारांश

किसी उपभोक्ता द्वारा किसी समय एवं मूल्य पर बाजार से क्रय की गयी वस्तु की मात्रा को मांग कहते हैं। मांग का नियम

RIL-082

कहता है कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता है उसकी मांग बढ़ती है। मार्शल के अनुसार मांग का एक सामान्य नियम है— किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसको अधिक क्रेता मिल सकें।

3.7 बोध प्रश्न

1. माँग के नियम से आप क्या समझते हैं ?
2. मांग वक्र के स्वरूप को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का वर्णन करें।
3. मांग के प्रकारों का वर्णन करें।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई–4 मांग की लोच (Elasticity of Demand)

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मांग की लोच

4.2.1 मांग की मूल्य लोच

4.2.1.1 पूर्णतया लोचदार मांग

4.2.1.2 पूर्णतया बेलोचदार मांग

4.2.1.3 समलोच मांग

4.2.1.4 अधिक लोचदार मांग

4.2.1.5 बेलोच मांग

4.2.1.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

4.2.1.7 मांग की लोच का महत्व

4.2.2 मांग की आय लोच

4.2.3 मांग की आड़ी लोच

4.3 सारांश

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे—

- मांग की लोच का अर्थ समझने में,

- मांग की मूल्य लोच को मापने में,
- मांग की आय लोच को जानने में,
- मांग की आड़ी लोच को समझने में तथा
- मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों को पहचानने में।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व मांग के नियम के अन्तर्गत आपने देखा है कि किसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि अथवा कमी किस प्रकार मांग में कमी या वृद्धि करती है। यह नियम मांग में हुई कमी या वृद्धि की निश्चित मात्रा को बताने में असमर्थ रहता है। किसी वस्तु के मूल्य में एक निश्चित वृद्धि या कमी होने पर उसकी मांग में निश्चित रूप से होने वाली कमी या वृद्धि को मांग की लोच कहते हैं। मांग की लोच का अध्ययन मुख्यतः मांग की मूल्य लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी लोच रूप में किया जाता है। अनेक ऐसे तत्वों का अध्ययन भी इस इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा जो मांग की लोच को प्रभावित करते हैं। मांग की लोच के महत्व का अध्ययन भी इसी इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा।

4.2 मांग की लोच (Elasticity of Demand)

मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप मांग में किस दिशा में तथा कितना परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर मांग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस क्षमता को ही मांग की मूल्य लोच कहते हैं। यह क्षमता या सापेक्षिक अनुक्रिया

(Relative responsiveness) मांग तथा उपभोक्ता की आय एवं मांग तथा अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच भी होती है। अतः कहा जा सकता है कि मांग की लोच के तीन प्रकार होते हैं- मांग की मूल्य लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी या तिर्यक लोच।

4.2.1 माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की मांग तथा वस्तु के मूल्य के बीच परिवर्तन का अनुपात या दर एक विशिष्ट सम्बन्ध है जिसे मांग की मूल्य लोच कहते हैं। जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "मांग की लोच किसी मूल्य अथवा किसी विशेष उत्पादन पर खरीदी गई वस्तु की मात्रा का वह आनुपातिक परिवर्तन है। जो मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होता है। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैः

$$\text{मांग की मूल्य लोच (Edp)} = \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\text{मांगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{\text{मांग में परिवर्तन}}{\text{पूर्व मांग की मात्रा}}$$

$$\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{\text{मूल्य में परिवर्तन}}{\text{पूर्व मूल्य की मात्रा}}$$

यदि मांग को q, मूल्य को p तथा मांग परिवर्तन को Δq एवं मूल्य परिवर्तन को Δp के द्वारा व्यक्त करें तो

$$Ed_p = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta p}{p} = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}$$

$$Ed_p = \left(\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}\right)$$

विपरीत सम्बन्ध होने के कारण Δq तथा Δp में से किसी एक का मूल्य ऋणात्मक होगा तथा मांग की लोच का मान धनात्मक होगा।

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है।

4.2.1.1 पूर्णतया लोचदार मांग (Perfectly Elastic Demand)— जब किसी वस्तु के मूल्य में अल्पवृद्धि होने से उस वस्तु की मांग शून्य हो जाये अथवा मूल्य में कमी उसकी मांग में अपरिमित वृद्धि ला दे तो उसे उस वस्तु की पूर्णतया लोचदार मांग कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र में किया गया है।

इस रेखाचित्र द्वारा मांग-वक्र DD आधार OX के समानान्तर या समतल आकार में प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि OP से अधिक मूल्य होने पर वस्तु की मांग शून्य होगी तथा मूल्य में बिना कमी के ही वस्तु की मांग में परिवर्तन हो रहा है।

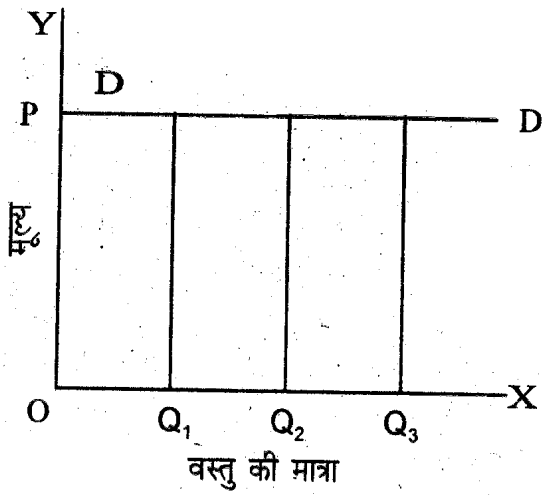

किन्तु पूर्णतया लोचदार माँग की लोच का उदाहरण व्यावहारिक जीवन में नहीं मिलता है परन्तु यह मांग की लोच की ऊपरी सीमा अवश्य निश्चित करती है।

4.2.1.2 (ii) पूर्णतया बेलोचदार मांग (Perfectly Inelastic Demand)—

जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के बाद भी उसकी मांग स्थिर बनी रहती है तथा उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है तो उसकी मांग को पूर्णतया बेलोच मांग कहते हैं। यह मांग भी केवल एक सैद्धान्तिक सत्य है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की मांग बेलोच तो होती है परन्तु पूर्णतया बेलोच नहीं होती है।

इस प्रकार की मांग को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—

इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है कि वस्तु का मूल्य OP से चाहे OP_1 हो जाये अथवा OP_0, वस्तु की मांग OQ ही रहेगी जिसे आधार अक्ष पर दिखाया गया है। इस रेखाचित्र में लम्ब अक्ष पर मूल्य प्रदर्शित हैं।

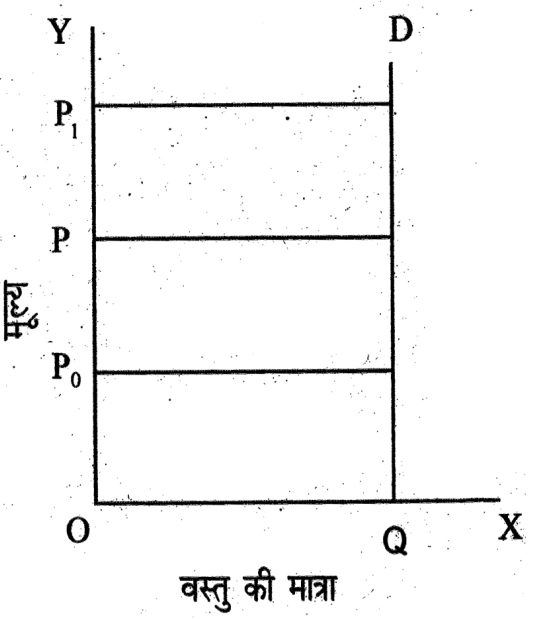

4.2.1.3 (iii) समलोच मांग या इकाई मांग की लोच (Unit Elasticity)—जब किसी वस्तु के मूल्य में सापेक्षिक परिवर्तन उस वस्तु की मांग में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो तो उस वस्तु की मांग को समलोच मांग कहते हैं। जैसे—किसी वस्तु के मूल्य में 20% की वृद्धि हो और उसकी मांग में कमी भी 20% हो।

इस रेखाचित्र में DD मांग वक्र है जो यह दिखाता है कि यदि मूल्य में वृद्धि PP_1 के बराबर हो तो वस्तु की मांग घटकर OQ हो जायेगी। मूल्य तथा मांग में परिवर्तन आनुपातिक है क्योंकि जब मूल्य में दुगुनी वृद्धि होती है और यह OP से बढ़कर OP_1 हो जाता है तो वस्तु की मात्रा घटकर आधी रह जाती है। जैसे रेखाचित्र में प्रदर्शित है।

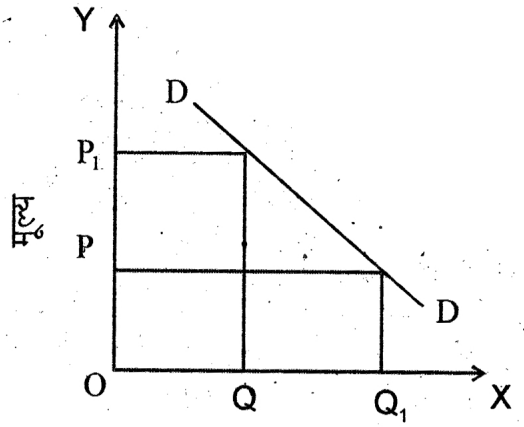

$$OQ = \frac{1}{2} OQ_1$$

4.2.1.4 (iv) अधिक लोचदार मांग (Highly Elastic Demand)—जब किसी वस्तु की मांग में होने वाला सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक हो तो उस वस्तु की मांग अधिक लोचदार मानी जाती है। जैसे किसी वस्तु के मूल्य में 5% की वृद्धि के कारण वस्तु की मांग में 15% की कमी आ जाये।

इस रेखाचित्र में DD मांग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब मूल्य OP से घटकर OP_0 हो जाता है तो वस्तु की मांग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इस प्रकार मांग में वृद्धि मूल्य में कमी से अधिक होती है।

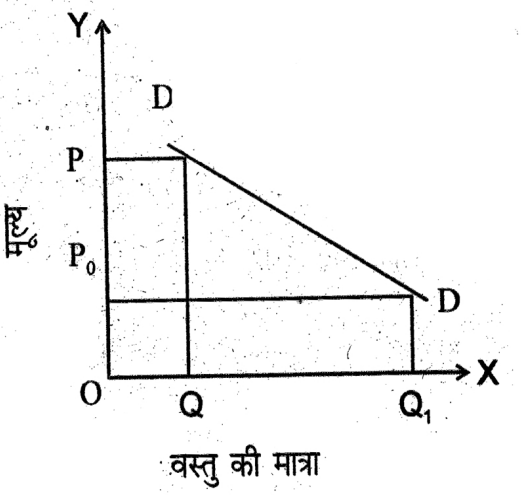

4.2.1.5 (v) बेलोच मांग (Inelastic Demand)—Edp > 0 < 1 जब किसी वस्तु की मांग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से कम हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच कही जायेगी जैसे मूल्य में 10% की कमी मांग में 5% की वृद्धि लाये।

इस रेखाचित्र में मांगवक्र DD है जो यह दिखाता है कि जब मूल्य में कमी PP_0 के बराबर होती है तो मांग में वृद्धि QQ_1 के बराबर होती है। पदार्थ के मूल्य में जिस अनुपात में कमी हुई है उससे कम अनुपात में पदार्थ की माँगी गयी मात्रा में वृद्धि

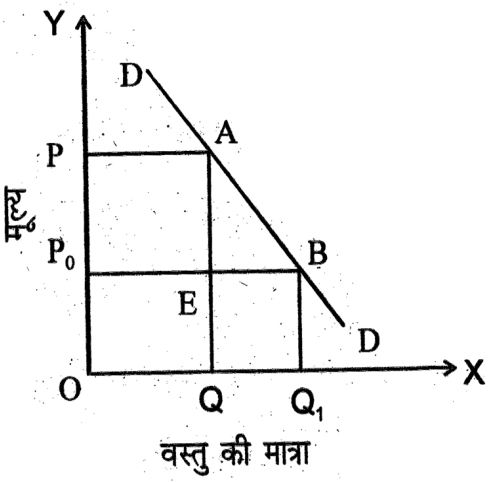

RIL-082

हुयी है।

4.2.1.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

किसी वस्तु की मांग की लोच को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व पाये जाते हैं। इनमें से कुछ की प्रकृति आर्थिक तथा कुछ की अनार्थिक है। इनमें से कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

i. वस्तु की प्रकृति

सामान्यतः तीन प्रकार की वस्तुएं-अनिवार्य आवश्यकता की, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ पायी जाती है। अनिवार्य आवश्यकता की वे वस्तुएँ होती हैं जिनके बिना व्यक्ति का काम नहीं चल सकता है, इसलिए इनकी मांग बेलोच होती है। आराम सम्बन्धी वस्तुओं की मांग न तो अधिक लोचदार और न बेलोच होती है क्योंकि इनके उपभोग को रोका जा सकता है परन्तु विलासिता की वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है।

ii. वस्तु के विभिन्न उपयोग

प्रो० मार्शल ने कहा है कि यदि किसी वस्तु के अनेक प्रयोग होते हैं तो उसकी मांग लोचदार होगी। अनेक उपयोग होने के कारण वस्तु का लोग कई जगह पर प्रयोग करते हैं।

iii. वस्तु के उपभोग को स्थगित करना

ऐसी वस्तुएँ जिनके उपभोग को स्थगित किया जा सकता है तो उनकी मांग की लोच कम होगी परन्तु यदि वस्तुएँ ऐसी

हैं जिनका उपभोग स्थगित नहीं किया जा सके तो उसकी माँग बेलोच होगी।

iv. स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि

यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएं उपलब्ध हैं तो उस वस्तु की मांग की लोच अधिक होगी परन्तु जिन वस्तुओं की कोई स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है तो उनकी मांग की लोच कम होगी। उदाहरण के लिए चाय तथा काफी। यदि चाय के दाम बढ़ जाये तो लोग चाय छोड़कर काफी का प्रयोग करने लगेंगे। अतः ऐसी वस्तु की माँग की लोच अधिक होगी।

v. उपभोक्ता की आय

उपभोक्ता की आय का मांग की लोच पर प्रभाव पड़ता है। किसी एक ही वस्तु की मांग की लोच अधिक आय तथा कम आय वाले व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है। मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम होने के कारण धनी व्यक्ति मूल्य के बढ़ने पर अधिक रुपया खर्च करते हैं। उनके लिए वस्तु की मांग बेलोच होती है पर निर्धन व्यक्ति की मांग अधिक लोचदार होती है।

vi. वस्तु पर व्यय किया जाने वाला आय का भाग

यदि किसी वस्तु के उपभोग पर आय का अधिकांश भाग व्यय होता है तो उस वस्तु की मांग लोचदार होगी परन्तु यदि आय का अल्प भाग ही व्यय हो रहा हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच होगी।

RIL-082

vii. समाज में आय का वितरण

समाज में धन के असमान वितरण होने पर मांग बेलोच होती है तथा आय के समान वितरण होने पर मांग की लोच अधिक होती है। आय के समान वितरण की स्थिति में मध्यम वर्ग के लोगों की प्रधानता होती है जिससे वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है। आय के असमान वितरण की स्थिति में कम आय वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है जिससे वस्तुओं की मांग की लोच कम होती है।

viii. वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में आदतें तथा रीति-रिवाज

ऐसी वस्तुएँ जिनके प्रयोग की उपभोक्ता को आदत पड़ गयी हो जैसे- सिगरेट शराब आदि तो उसकी मांग बेलोच होती है। इसी प्रकार रीति-रिवाज के कारण अनेक वस्तुएं पारिवारिक आय-व्यय बजट का एक अभिन्न अंग बन जाती है तो उनकी मांग भी बेलोच कहलाती है।

ix. समय का प्रभाव

प्रो० मार्शल के अनुसार समय का प्रभाव मांग की लोच पर पड़ता है। अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकाल में वस्तु की मांग अधिक लोचदार होती है। इसके कई कारण होते हैं जिनमें से मूल्य में परिवर्तन होने के बाद अल्पकाल में उपभोक्ता अपने उपभोग तुरन्त कम नहीं कर पाता। उपभोक्ता को मूल्य परिवर्तन का ज्ञान नहीं हो पाता तथा यदि उपभोक्ता यह उम्मीद करे कि भविष्य में उस वस्तु का मूल्य कम हो जायेगा तो वह उस वस्तु

का क्रय करना स्थगित कर देगा।

x. मूल्य स्तर

सामान्यतः महंगे मूल्य पर मांग बेलोच तथा सस्ते मूल्य पर अधिक लोचदार होती है।

xi. संयुक्त मांग की वस्तुएं

ऐसी वस्तुएं जिनकी मांग संयुक्त होती है अर्थात् जो एक-दूसरे की पूरक हैं जैसे कलम और स्याही, उसकी मांग बेलोच होती है।

xii. वस्तु के उपभोक्ताओं का वर्ग

किसी वस्तु का उपभोग करने वाले लोग यदि धनी वर्ग के हैं तो मांग की लोच अधिक होगी अन्यथा कम होगी।

xiii. सरकार द्वारा राशनिंग

यदि किसी वस्तु के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण हो तो उसकी मांग बेलोच होगी, इसके विपरीत खुले बाजार में मिलने वाली वस्तु की मांग की लोच अधिक होती है।

4.2.1.7 माँग की लोच का महत्व

अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओं के समाधान में माँग की लोच का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान हैं। लार्ड कीन्स के अनुसार -प्रो० मार्शल की सबसे महत्वपूर्ण देन माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के अभाव में मूल्य तथा वितरण

के सिद्धान्तों की व्याख्या सम्भव नहीं है। इसके महत्व को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है:-

(i) मूल्य निर्धारण में

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य के बढ़ने तथा घटने पर पूर्ति में कितना परिवर्तन, होगा यह मांग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि मांग बेलोच हुई तो मूल्य में परिवर्तन से पूर्ति की मात्रा में कम परिवर्तन होगा परन्तु माँग अधिक लोचदार होने की स्थिति में परिवर्तन अधिक होगा।

एकाधिकार में मूल्य निर्धारण वस्तु की मांग की लोच के अनुसार इस प्रकार किया जाता है कि लाभ अधिकतम हो। एकाधिकारी बेलोच मांग की वस्तु का मूल्य अधिक तथा अधिक लोचदार वस्तु का मूल्य कम रखता है क्योंकि बेलोच मांग के कारण यदि उसके मूल्य में वृद्धि हो जाये तब भी ग्राहक सामान खरीदेगे। परन्तु वह यदि अधिक लोचदार वस्तु की कीमत बढ़ा दे तो ग्राहक उस वस्तु को नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार उसका लाभ कम हो जायेगा। मूल्य विभेद करते समय भी एकाधिकारी मांग की लोच की सहायता लेता है। इसी प्रकार राशिपातन (Dumping) के सम्बन्ध में भी माँग की लोच सहायक हो सकती है।

(ii) उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक-निर्धारण में

मांग की लोच का महत्व उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक-निर्धारण के अन्तर्गत वितरण के सन्दर्भ में देखा जाता है। किसी

साधन की माँग बेलोच होने पर अधिक मूल्य देना पड़ता है। जैसे- यदि श्रमिकों की मांग बेलोच है तो श्रमिक को अधिक मजदूरी देनी पड़ती है।

(iii) सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में

मांग की लोच का सरकार की नीतियों के निर्धारण में भी बहुत अधिक महत्व होता है। मांग की लोच द्वारा सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती है तथा यह भी निर्णय लेती है कि किन उद्योगों को सार्वजनिक क्रियाओं के रूप में घोषित करे तथा किनका नियन्त्रण अपने हाथ में ले। बेलोच वस्तुओं के सन्दर्भ में यह उचित होगा कि वह उन्हें अपने हाथ में ले ले।

सरकार की कर-नीति के निर्धारण में भी मांग की लोच का अत्यधिक महत्व है। मांग की लोच की सहायता से कर नीति की दो प्रमुख समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। पहली समस्या अधिक से अधिक आय प्राप्त करने की होती है जिसके लिए सरकार को बेलोच मांग वाली वस्तुओ पर कर लगाने चाहिए क्योंकि लोचदार वस्तुओं पर कर लगाया जायेगा तो उपभोक्ता उन वस्तुओं का उपभोग कम कर देगा फलस्वरूप सरकार को आय नहीं मिल पायेगी। कर के भार का निर्धारण दूसरी समस्या है सरकार द्वारा लगाये गये कर का भार किसके ऊपर पड़ता है इसका ज्ञान मांग की लोच के द्वारा हो सकता है। बेलोच मांग वाली वस्तु की स्थिति में कर का भार उपभोक्ता पर पड़ेगा क्योंकि उत्पादक वस्तु का मूल्य बढ़ा देगा। जबकि

लोचदार वस्तु पर का भार उत्पादक पर ही पड़ेगा। इस प्रकार वस्तु की मांग की लोच अधिक होने की दशा में वस्तु पर कर का भार विक्रेता पर पड़ेगा।

4.2.2 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)

किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की मांग में होने वाले सापेक्ष परिवर्तन की माप या क्षमता ही मांग की आय लोच हैं, जबकि वस्तु का मूल्य अपरिवर्तित रहे। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि मूल्य तथा अन्य कारक तत्व स्थिर रहें, तो मौद्रिक आय में आनुपातिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में जो आनुपतिक परिवर्तन होता है, या मांग में आनुपातिक परिवर्तन को मौद्रिक आय में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर जो गुणांक आता है उसे ही मांग की आय लोच कहते हैं।

किसी वस्तु की मांग आय लोच (Edy) = $\frac{\text{वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$

अर्थात, $Edy = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta y}{y}$

अथवा, $Edy = \frac{\Delta q}{\Delta y} \times \frac{y}{q}$

Ed_y = माँग की आय लोच

जहाँ Δq = मांग में होने वाला परिवर्तन

Δy = आय में होने वाला परिवर्तन

q = पूर्व मांग

y = पूर्व आय

सामान्यतया किसी वस्तु की मांग की आय लोच धनात्मक होती है अर्थात् उपभोक्ता की आय में वृद्धि वस्तु की मांग में वृद्धि करती है तथा उसकी आय में कमी, मांग में कमी करती है। इस प्रकार आय तथा मांग में होने वाले परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं। अतः Ed_y का मान धनात्मक होता है। परन्तु कुछ ऐसी स्थितियाँ ऐसी भी होती है जिसमें मांग एवं आय के परिवर्तन विपरीत दिशा में होते हैं। इसमें आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता इन वस्तुओं की कम मांग करता है अथवा इन वस्तुओं पर कम व्यय करता है।

मांग की आय लोच भी पाँच प्रकार की होती है—

(क) मांग की शून्य आय लोच (Zero Income Elasticity of Demand)—जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद भी किसी वस्तु की क्रय की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है तब मांग की आय लोच शून्य होती है।

(ख) माँग की ऋणात्मक आय लोच (Negative Income Elasticity of Demand) यदि किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद किसी वस्तु की मांग में कमी आये तब मांग की आय लोच ऋणात्मक होगी।

(ग) माँग की इकाई आय लोच (Unit Income Elasticity of Demand)— जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय

का अनुपात जो वह किसी वस्तु पर व्यय करता है, आय की वृद्धि के बाद भी वही बना रहे जो आय की वृद्धि के पहले था तो उसे मांग की इकाई आय लोच कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी आय का 20%किसी वस्तु पर व्यय करता था तथा आय में वृद्धि के बाद भी वह 20% ही उस वस्तु पर खर्च करता है तो मांग की आय लोच इकाई के बराबर होगी।

(घ) इकाई से अधिक मांग की आय लोच— जब उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु के क्रय पर किये जाने वाले व्यय का अनुपात उसकी आय में होने वाली वृद्धि के अनुपात से अपेक्षाकृत अधिक हो तो मांग की आय लोच इकाई से अधिक होगी। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सन्दर्भ में यह स्थिति पायी जाती है।

(ङ) इकाई से कम मांग की आय लोच— जब उपभोक्ता मौद्रिक आय में वृद्धि के बाद अपनी मौद्रिक आय का कम अनुपात किसी वस्तु के ऊपर व्यय करता है तब मांग की आय लोच इकाई से कम होगी।

4.2.3 माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand)—सामान्यतः दो प्रकार की वस्तुएँ पायी जाती हैं- अनाश्रित तथा आश्रित वस्तुएं। आश्रित वस्तुओं को पूरक अथवा स्थानापन्न में विभाजित किया जाता है। किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की मांग परिवर्तित होती है तो वस्तुएँ परस्पर सम्बन्धित होती है। सम्बन्धित वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं- स्थानापन्न व पूरक। यदि किसी वस्तु का मूल्य

बढ़ने (घटने) पर किसी अन्य वस्तु की मांग बढ़ती (घटती) है तो वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानाम्पन्न होगी। इस प्रकार किसी वस्तु के मूल्य तथा स्थानापन्न वस्तु की मांग में धनात्मक सम्बन्ध होता है।

इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का मूल्य घटने-बढ़ने पर किसी अन्य वस्तु की मांग बढ़ती-घटती है तो वस्तुएं परस्पर पूरक कहलायेंगी। किसी वस्तु के मूल्य एवम् इसके पूरक वस्तु की मांग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। मांग की आड़ी लोच इस प्रकार की वस्तुओं की सापेक्षिक सम्बद्धता की माप है।

किसी सम्बन्धित वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दी हुई वस्तु की माँगी गई मात्रा में जो सापेक्षिक परिवर्तन होता है, उसकी माप ही माँग की आड़ी लोच है। इस प्रकार

$$\text{मांग की आड़ी लोच } (Ed_{AB}) = \frac{\text{A वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{B वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q_A}{q_A} \div \frac{\Delta P_B}{P_B}$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q_A}{\Delta P_B} \times \frac{P_B}{q_A}$$

माँग मूल्य लोच की तरह इसके सम्बन्ध में भी औसत विधि का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति में मांग की आड़ी लोच का सूत्र इस प्रकार होगाः-

$$Ed_{AB} =$$

$$\frac{q_2 - q_1}{2} \Big/ \frac{(q_2 + q_1)}{2} \div \frac{p_2 - p_1}{2} \Big/ \frac{(p_2 + p_1)}{2}$$

$$= \left(\frac{q_2 - q_1}{q_2 + q_1}\right) \times \left(\frac{p_2 + p_1}{p_2 - p_1}\right)$$

$$= \left(\frac{q_2 - q_1}{p_2 - p_1}\right) \times \left(\frac{p_2 + p_1}{q_2 + q_1}\right)$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \left(\frac{p_2 + p_1}{q_1 + q_2}\right)$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि A तथा B दोनों परस्पर स्थानापन्न हैं तो मांग की आड़ी लोच धनात्मक होगी। परन्तु यदि A तथा B एक दूसरे की पूरक वस्तुएँ हैं तो मांग की आड़ी लोच ऋणात्मक होगी।

मांग की आड़ी लोच से निम्न निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं :-

i. यदि मांग की आड़ी लोच का मान शून्य है अर्थात् ($Ed_{AB} = 0$) तो इस स्थिति में वस्तुएं न तो पूरक होगी और न स्थानापन्न बल्कि अनाश्रित या स्वतंत्र होगी।

ii. यदि मांग की आड़ी लोच का मान ऋणात्मक हो अर्थात् ($Ed_{AB} < 0$) तो दोनों वस्तुएं परस्पर पूरक वस्तुएं होगी।

iii. यदि मांग की आड़ी लोच का मान धनात्मक हो तो $Ed_{AB} > 0$, तो दोनों वस्तुएँ स्थानापन्न होगी।

iv. इसी प्रकार यदि Ed_{AB} का मान बहुत अधिक धनात्मक हो तो दोनों वस्तुएँ परस्पर निकटतम स्थानापन्न होंगी और यदि आड़ी लोच कम धनात्मक हुई तो परस्पर कम स्थानानपन्न होगी।

4.3 सारांश

मांग के नियम के अनुसार मूल्य में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी मांग में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन कितना एवं किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर मांग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। यह क्षमता ही मांग की मूल्य लोच है। इसी प्रकार की क्षमता मांग तथा उपभोक्ता की आय, तथा मांग एवं अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच होती है। इस प्रकार मांग की लोच तीन प्रकार की होती है - मूल्य माँग की लोच, मांग की आय लोच तथा मांग की आड़ी लोच। वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की मांग की मूल्य लोच को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार मांग की आय लोच के भी पाँच प्रकार होते हैं। मांग की आय लोच के अन्तर्गत उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है जबकि मांग की आड़ी लोच के अन्तर्गत किसी एक वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दूसरी वस्तु की मांगी गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक परिवर्तन की माप की जाती है मांग की लोच का महत्व मूल्य निर्धारण, उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक निर्धारण तथा सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में होता है।

4.4 बोध प्रश्न

1. मांग की लोच से आप क्या समझते हैं ?
2. मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को बताइये।
3. मांग की आय लोच को विश्लेषित करें।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-5- तटस्थता वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 तटस्थता वक्र

5.2.1 परिभाषाएं

5.2.2 तटस्थता तालिका

5.2.3 तटस्थता वक्र

5.2.4 तटस्थता मानचित्र

5.2.5 तटस्थता वक्रों की विशेषताएं

5.3 सारांश

5.4 अवबोधात्मक प्रश्न

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :

- तटस्थता वक्र का अर्थ समझने में,
- तटस्थता वक्रों की विशेषताओं के विश्लेषण में,
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की व्याख्या करने में, तथा
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम के वर्णन में।

5.1 प्रस्तावना

मांग के नियम तथा मांग की लोच जिनका इस इकाई के पूर्व में अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है, को और अधिक स्पष्ट करने के लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता लिया जाता है। इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल उपयोगिता क्रम को ही ध्यान में रखता है। उसके लिए वस्तु संयोग अधिक महत्व का होता है। अतः उपभोक्ता उस संयोग को ऊंचा क्रम देता है जो उसके लिए अधिक महत्व का होता है और कम महत्व के संयोग को नीचा क्रम प्रदान करता है। तटस्थता अथवा उदासीनता वक्र विश्लेषण ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की मान्यता पर आधारित होता है। इसके अन्तर्गत एक उपभोक्ता अपने सन्तोष को समान रखने के लिए एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो दूसरी वस्तु के उपभोग को घटाता है।

5.2 तटस्थता वक्र

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का बिन्दु पथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं। तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रारम्भ 1881 ई० में अंग्रेज अर्थशास्त्री एजवर्थ (Edgeworth) ने किया था। बाद में 1906 में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरेटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाकर मांग की विवेचना की। पेरेटो ऐसा प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने उपयोगिता को एक मानसिक तत्व स्वीकार किया जिसे केवल वस्तु का उपभोग करने वाला व्यक्ति ही महसूस

कर सकता है। यह स्थिर नहीं रहता फलस्वरूप इसका संख्यात्मक माप भी नहीं हो सकता है।

रूसी अर्थशास्त्री स्लूटस्का (Slutsky) ने 1915 में पेरेटो की इस विधि की व्याख्या की थी, परन्तु रूसी भाषा में होने तथा प्रथम विश्व युद्ध की उथल-पुथल के कारण उस व्याख्या को विशेष महत्व नहीं मिल पाया। प्रो0 हिक्स ने 1939 में अपनी पुस्तक **Value and Capital** में तटस्थता विश्लेषण की विस्तार से व्याख्या दी। इसमें प्रो0हिक्स ने 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'स्थानापन्न दर' शब्दावली का प्रयोग किया। उनके अनुसार सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। प्रो0 हिक्स के अनुसार— उपयोगिता ह्रास नियम के स्थान पर प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर का सिद्धान्त प्रयोग करना केवल भाषान्तर नहीं वरन् इस सिद्धान्त की नींव में एक धनात्मक या ठोस परिवर्तन है।

5.2.1 तटस्थता अर्थात् उदासीनता वक्र की परिभाषाएं

तटस्थता वक्र की परिभाषा अनेक विद्वानों द्वारा दी गई है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

जे0के0 ईस्थम (J.K. Eastham) के अनुसार— यह वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का विन्दुपथ है जिसके बीच व्यक्ति तटस्थ रहता है और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं।

के0ई0 बोल्डिंग (K.E. Boulding) के अनुसार—

"समान अनुराग दिखाने वाली वक्र रेखाएँ तटस्थ वक्र कहलाती हैं, क्योंकि वे वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करती

हैं जो एक-दूसरे से न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे।''

ए० एल० मेयर्स (A.L. Meyers) के अनुसार—

''अधिमान सारिणी वह तालिका है जो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान सन्तोष प्राप्त होता है। यदि हम इसे एक वक्र के रूप में प्रदर्शित करें, तो हमें अधिमान वक्र प्राप्त हो जायेगा।''

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र उपभोक्ता की ऐसी स्थिति है जिसमें वह तटस्थ रहता है तथा उपभोग के लिए वस्तुओं के ऐसे संयोगों को चुनता है जिनसे उसे समान संतोष प्राप्त होता है।

5.2.2 तटस्थता तालिका (Indifference Schedule)

तटस्थता तालिका का निर्माण वस्तुओं के अनेक संयोगों से होता है। प्रत्येक संयोग से समान महत्व की उपयोगिता मिलती है अतः तालिका में निहित संयोगों में चुनाव के प्रति उपभोक्ता सदैव उदासीन रहता है। **मेयर्स** के शब्दों में, ''तटस्थता तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से सन्तोषजनक प्रतीत होते हैं।''

प्रो० हिक्स के अनुसार,''यदि उपभोक्ता की मांग स्थिर रहती है तथा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है, तो एक वस्तु का उपभोग बढ़ाने के लिए उपभोक्ता को दूसरे वस्तु के उपभोग का त्याग करना पड़ेगा। ''तालिका संख्या

1 में x तथा y वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाया गया है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।''

तालिका- 1

तटस्थता तालिका

संयोग	x वस्तु की मात्रा	y वस्तु की मात्रा	संयोग से प्राप्त कुल उपयोगिता	प्रतिस्थापन दर
I	1	6	A	x = 3y
II	2	3	A	x = 1y
III	3	2	A	x = 5y
IV	4	1.5	A	

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता के लिए पहले संयोग में x वस्तु की एक इकाई तथा y वस्तु की 6 इकाइयाँ हैं। इससे उपभोक्ता को A के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। इसके पश्चात् यदि उपभोक्ता x वस्तु की मात्रा बढ़ाना चाहता है तथा कुल उपयोगिता को भी A के बराबर ही रखना चाहता है तो उसे y वस्तु की कुछ इकाइयां इस प्रकार त्यागनी पड़ेगी कि x वस्तु के समान उपयोगिता प्राप्त हो। अतः इस रेखा का हर बिन्दु तटस्थता वक्र का एक अभिन्न हिस्सा है।

5.2.3 तटस्थता मानचित्र (Indifference Map)

तटस्थता वक्र पर x तथा y वस्तु के ऐसे अनेक संयोग होते हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतोष प्राप्त होता है। इसके पश्चात् यदि x तथा y वस्तु के ऐसे विभिन्न संयोग लिये जाये जिनकी उपयोगिता पिछले संयोगों से कम या अधिक हो तो उनके लिए दूसरे तटस्थता वक्रों का निर्माण करना पड़ेगा। अतः विभिन्न संयोग

RIL-082

होने से विभिन्न तालिकाएं और उनके फलस्वरूप विभिन्न तटस्थता वक्र बनेंगे। ऐसा रेखाचित्र जो एक से अधिक तटस्थता वक्रों को प्रदर्शित करता है तटस्थता मानचित्र कहलाता है।

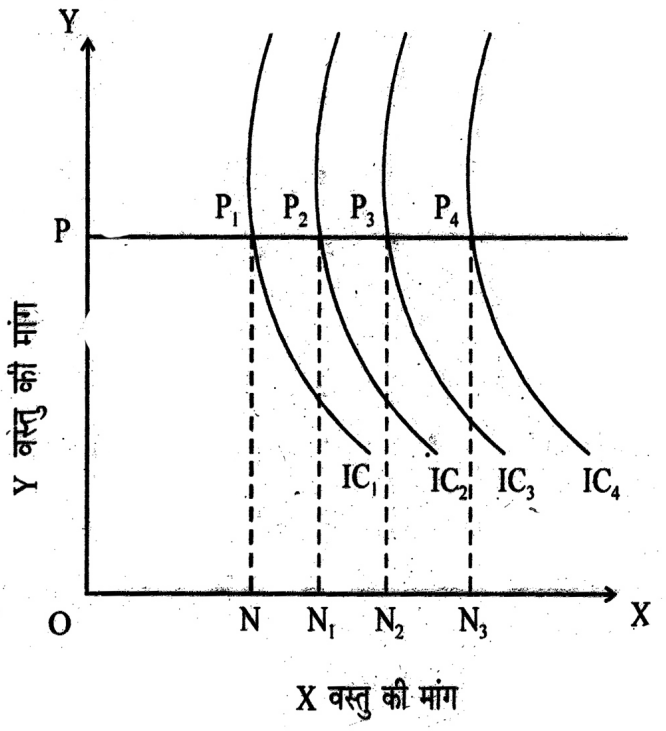

इस चित्र में x अक्ष पर x तथा y अक्ष पर y वस्तु को रखा गया है। IC_1, IC_2, IC_3 तथा IC_4 तटस्थता रेखाएं विभिन्न प्रकार की संतुष्टियों के क्रम को व्यक्त करती है। इसमें Y की मात्रा को स्थिर रखते हुए X की मात्रा को लगातार बढ़ाया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पहले संयोग की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे संयोग से बढ़ती दर पर उपयोगिता मिलती है। इसी कारण प्रत्येक दाईं ओर बनने वाला तटस्थता वक्र बाएं वक्र से अधिक संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी दूर होगा उससे प्राप्त संतुष्टि उतनी अधिक होगी। तटस्थता वक्र मानचित्र का प्रयोग उपभोक्ता के साम्य स्थिति के निर्धारण के लिए किया जाता है।इसके द्वारा यह स्पष्ट है कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी अधिक दूरी पर स्थित होगा उसका प्रत्येक संयोग शेष वक्रों के संयोग से अधिक संतुष्टि देने वाला होगा। चित्र में पहले तटस्थता वक्र की अपेक्षा दूसरे, दूसरे से तीसरा व तीसरे से चौथा वक्र अधिक संतुष्टि स्तर को प्रदर्शित करता है। इसका कारण है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता

RIL-082

ऊँचे तटस्थता वक्र पर पहुंचता है, वैसे-वैसे दो वस्तुओं की मात्राओं में वृद्धि होती जाती है जिसके कारण उपभोक्ता का संतुलन स्तर भी बढ़ता है।

बढ़ने से जितनी उपयोगिता की प्राप्ति हो उतनी ही उपयोगिता की हानि 4 की इकाइयाँ घटाने से हो। इस उदाहरण में दूसरा संयोग x वस्तु की 2 इकाइयों व y- वस्तु की 3 इकाइयों का है। इसकी कुल उपयोगिता A के बराबर है। इन वस्तुओं के अन्य संयोग 3x, 2y तथा 4x, 1.5y हैं। चूँकि इन संयोगों से उपभोक्ता को कुल एक सी उपयोगिता प्राप्त हो रही है इसलिए इनमें से किसी एक के चुनाव के बारे में उपभोक्ता उदासीन या बेफिक्र हो जाता है। इसलिए यह तटस्थता तालिका कहलाती है।

5.2.4 तटस्थता वक्र (Indifference Curve)

तटस्थता वक्र की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि यह वस्तुओं की मात्राओं के विभिन्न संयोगों का बिन्दु-पथ है जिनसे समान उपयोगिता प्राप्त होती है, अतः उपभोक्ता उनके बीच चुनाव करने में तटस्थ रहता है। इस प्रकार तटस्थता तालिका में प्रदर्शित विभिन्न संयोगों में x व y की मात्राओं को ग्राफ पेपर पर अंकित करके एक तटस्थता वक्र बनाया जा सकता है।

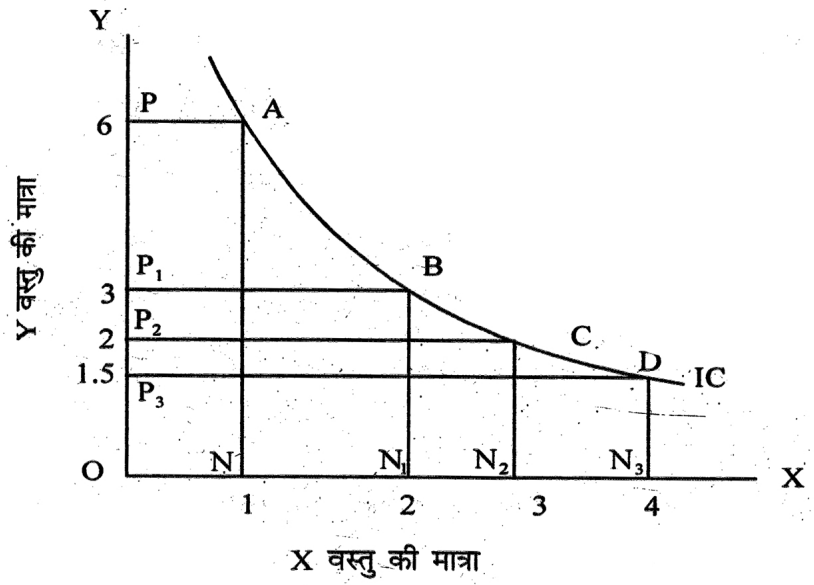

चित्र में x अक्ष पर x वस्तु को तथा y अक्ष पर y वस्तु को दिखाया गया है। IC वक्र इन दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाने वाला तटस्थता वक्र है जिससे उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त होती है। इन वस्तुओं के संयोगों को A, B, C तथा D बिन्दुओं द्वारा दिखाया गया है, जिनमें x तथा y वस्तुओं की मात्राएं क्रमशः ON + OP अर्थात् (1X + 6Y), $ON_1 + OP_1$ अर्थात् (2X + 3Y), $OP_2 + ON_2$ अर्थात् (3X + 2Y) तथा $OP_3 + ON_3$ अर्थात् (4X + 1.5Y) है।

इस वक्र पर इन चार बिन्दुओं से ही उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त नहीं होती वरन् इस रेखा पर बन सकने वाले सभी बिन्दुओं से निर्मित वस्तुओं के हर संयोग से भी कुल उपयोगिता समान रहती है। चित्र में प्रत्येक तटस्थता वक्र पर P, P_1, P_2, तथा P_3 बिन्दु दिखाए गये हैं तथा इनके समकक्ष Y-अक्ष पर N, N_1, N_2 तथा N_3 बिन्दु दिखाये गये हैं। ये बिन्दु X तथा Y वस्तुओं के संयोगों को व्यक्त करते हैं। A बिन्दु IC पर स्थित है जो OP मात्रा में Y तथा ON मात्रा में x वस्तु के संयोग को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार IC वक्र पर B बिन्दु $OP_1(Y)$ तथा $ON_1(X)$ की मात्रा को बताता है। IC पर बिन्दु C बिन्दु OP_2 (Y) और ON_2 (X) की मात्रा को बताता है। IC वक्र पर D बिन्दु में $OP_3(Y)$ तथा $ON_3(X)$ की मात्रा का संयोग है।

5.2.5 तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of indifference curves)

तटस्थता वक्रों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं।

1. तटस्थता वक्र बाईं से दाईं ओर गिरता है—तटस्थता वक्र की आकृति लगभग मांग वक्र से मिलती-जुलती है जिसका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब उपभोक्ता

एक वस्तु की मात्रा में कमी करता है तब दूसरी वस्तु की मात्रा को बढ़ाता है क्योंकि यह शर्त समान संतुष्टि के लिए आवश्यक है।

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र पर A तथा B दो संयोग दिये हुए हैं जब उपभोक्ता A संयोग से B संयोग की ओर बढ़ता है तब वह Y वस्तु की मात्रा में P_1P के बराबर कमी करके X वस्तु की NN_1 मात्रा में वृद्धि कर देता है। बिन्दु A तथा B दोनों एक ही तटस्थता वक्र पर स्थित हैं जिनके कारण उपभोक्ता को दोनों संयोगों से समान संतुष्टि मिलती है।

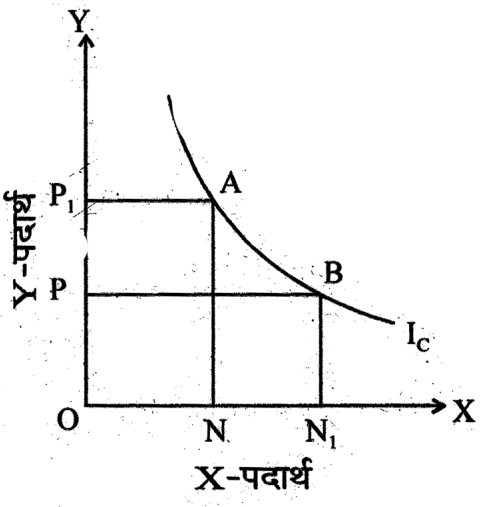

तटस्थता वक्र की इस विशेषता से यह प्रकट होता है कि एक सामान्य तटस्थता वक्र—

(i) ऊपर उठता हुआ नहीं हो सकता है।

(ii) तटस्थता वक्र लम्बवत् नहीं हो सकता है।

(iii) तटस्थता वक्र क्षैतिजीय नहीं हो सकता है।

2. तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है— तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है। इसका प्रमुख कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर है। उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों को क्रय करता है वैसे-वैसे उसे दूसरी वस्तु की कम इकाइयों का त्याग करना पड़ता है।

RIL-083

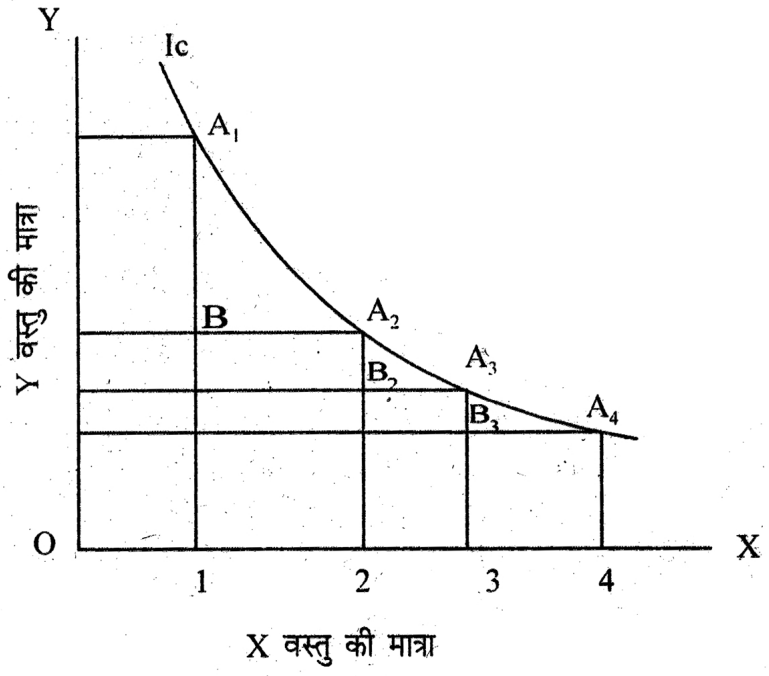

चित्र में Ic एक तटस्थता वक्र है जिसमें X तथा Y वस्तुओं के विभिन्न संयोग निहित है, इसमें प्रत्येक संयोग समान उपयोगिता व्यक्त करता है। इस वक्र पर चार संयोग A_1, A_2, A_3 और A_4 है। जब उपभोक्ता A_1 संयोग से A_2 पर, A_2 से A_3 पर तथा A_3 से A_4 पर आता है, तब X वस्तु की वृद्धि बढ़ी हुई दरों से की जाती है, जबकि Y वस्तु की मात्रा क्रमशः घटायी जा रही है। चित्र से स्पष्ट है Y की A_1 B मात्रा को त्यागने पर x की B A_2 मात्रा को लिया जाता है, फिर Y वस्तु की A_2 B_2 मात्रा का त्याग किया गया है। अन्त में Y वस्तु की A_3 B_3 मात्रा त्यागी गई है और इसके बदले में X वस्तु की B_3 A_4 मात्रा का प्रतिस्थापन किया गया है। अब चूंकि X वस्तु की बढ़ाई गयी मात्रा हर परिवर्तन पर एक जैसी है, इसलिये Y वस्तु की घटाई गई मात्रा उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। इस प्रकार प्रतिस्थापन दर कम होती चली जा रही है। इस कारण से तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

उपरोक्त विशेषता को स्वीकार करने के पश्चात् स्वाभाविक तौर पर यह कहा जा सकता है कि तटस्थता वक्र न तो एक सीधी रेखा में हो सकता है और न ही मूल बिन्दु के प्रति नतोदर हो सकता है।

तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते

प्रत्येक तटस्थता वक्र संतुष्टि के अलग स्तर को प्रकट करता है अतः किन्हीं दो तटस्थता रेखाओं से एक-दूसरे को काटना सम्भव नहीं है। इसे स्पष्ट करने के लिए चित्र में दो तटस्थता वक्रों IC_1 व IC_2 को एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हुए दिखाया गया है।

चित्र में IC_1 तटस्थता वक्र पर P तथा P_1 बिन्दु समान संतोष को प्रकट कर रहे हैं अर्थात् संतोष की दृष्टि से बिन्दु P = बिन्दु P_1 इसी प्रकार IC_2 तटस्थता वक्र पर बिन्दु P = बिन्दु P_2। इस प्रकार यदि $P = P_1$ तथा $P = P_2$ है तो $P_1 = P_2$ होना चाहिए, परन्तु यह सम्भव नहीं है। P_1 तथा P_2 बिन्दुओं पर X वस्तु की मात्रा तो ON_1 के रूप में समान है लेकिन P_1 पर P_2 की अपेक्षा Y वस्तु की मात्रा अधिक है। अतः OE OE_2 के बराबर न होने से इनका संतोष भी बराबर नहीं हो सकता। वास्तव में तटस्थता वक्रों के काटने के कारण ही यह निष्कर्ष निकलता है कि OE_1 तथा OE_2 बिन्दुओं की संतुष्टि बराबर है, जबकि Y वस्तु की मात्रा के अन्तर के कारण OE_1 का संतोष OE_2 के संतोष से अधिक होगा।

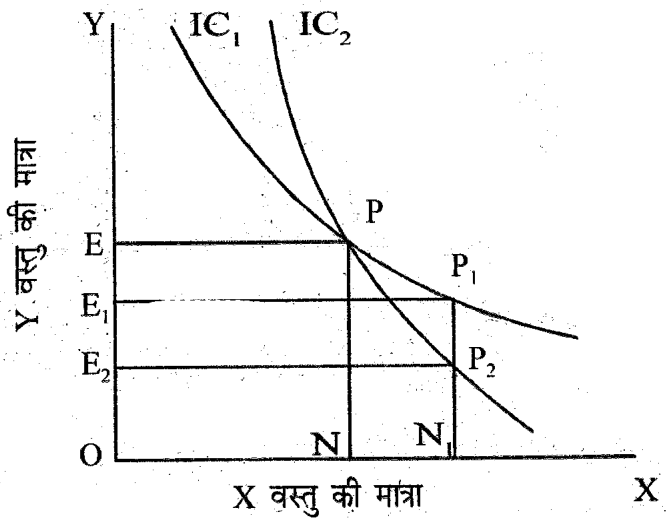

iv. विभिन्न तटस्थता वक्रों का समानान्तर होना आवश्यक नहीं—

तटस्थता वक्र एक दूसरे के समानान्तर हो सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते हैं। यह बात तटस्थता मानचित्र पर दर्शाए गए तटस्थता वक्रों की सीमान्त प्रतिस्थापन दर पर निर्भर करती है। दो तटस्थता वक्रों के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होने पर वे एक-दूसरे के समानान्तर होंगे। जबकि इस दर के असमान होने पर वे एक-दूसरे के समानान्तर नहीं होगे।

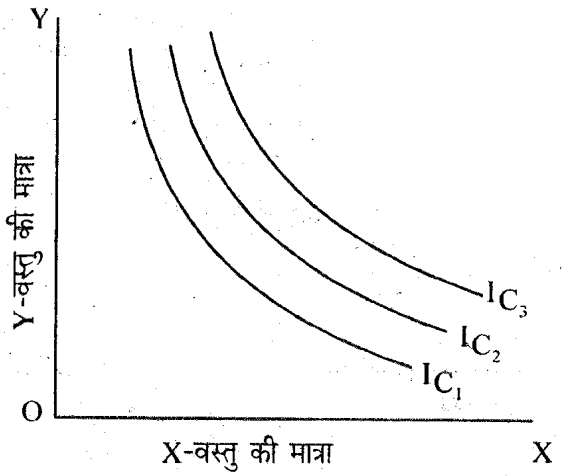

v. ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक संतोष देगा— कोई तटस्थता मानचित्र जितना ही ऊंचा होगा वह उतना ही अधिक संतोष प्रदान करेगा।

vi. तटस्थता वक्र अक्षांशों को नहीं छूते— इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि तटस्थता वक्र किसी भी अक्षांश को छुएगा तो वहां यह मान्यता समाप्त हो जायेगी कि तटस्थता वक्र पर प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रकट करते

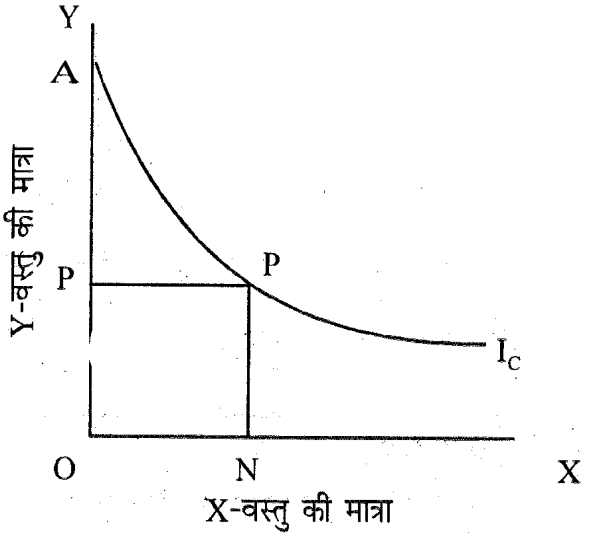

है। इस स्थिति को चित्र द्वारा समझा जा सकता है। जिसमें तटस्थता वक्र द्वारा Y-आक्षांश के A बिन्दु पर Y वस्तु की OA मात्रा तथा X-वस्तु की शून्य मात्रा है अतः यहां दो वस्तु का संयोग नहीं बना है। P बिन्दु एक संयोग को प्रकट करता है जिसमें X-वस्तु की ON तथा Y वस्तु की OP मात्रा है।

5.3 सारांश

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संभागों का बिन्दुपथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसको तटस्थता या उदासीनता वक्र कहते हैं। वस्तुओं के अनेक संयोगों से तटस्थता तालिका का निर्माण होता है। यह तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से संतुष्टि प्रदान करती है। एक से अधिक तटस्थत वक्रों को प्रदर्शित करने वाला रेखाचित्र तटस्थता मानचित्र कहलाता है। तटस्थता वक्रों की अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं के अन्तर्गत यह वक्र बाईं से दायीं ओर गिरता है, यह मूल बिन्दू की ओर उन्नतोदर होता है, तटस्थता वक्र एक-दूसरे को नही काटते हैं, तटस्थता वक्रों का समान्तर होना आवश्यक नहीं होता, ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक सन्तोष देता है तथा तटस्थता वक्र अक्षांशों को नहीं छूते हैं।

5.4 बोध प्रश्न

1. तटस्थता वक्र का आशय स्पष्ट करें तथा इसकी मान्यताओं का वर्णन करें।

2. तटस्थता वक्रों की विशेषताओं को समझाइये।

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2005

2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.

3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई- 6 मांग पूर्वाभास

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मांगपूर्वाभास का अर्थ

6.3 मांग पूर्वाभास का क्षेत्र

6.4 मांग पूर्वाभास की विधियां

6.4.1 विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास

6.4.2 नई वस्तुओं का पूर्वाभास

6.5 मांग पूर्वाभास का महत्व

6.6 सारांश

6.7 बोध प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :

- मांग पूर्वाभास को समझने में,
- मांग पूर्वाभास की विधियों को जानने में, तथा
- मांग पूर्वाभास का महत्व समझने में।

6.1 प्रस्तावना

मांग पूर्वाभास किसी भी फर्म के लिए अति आवश्यक होता है। इसके द्वारा ही उत्पादन के साधनों को यथोचित रूप में जुटाना

सुविधाजनक होता है। विक्रय मांग के अनुसार हो, इसके लिए आवश्यक है कि पूर्वाभास ठीक- ठाक हो। पूर्वाभास सही होने की स्थिति में अति उत्पादन एवं अल्प उत्पादन की समस्या से बचा जा सकता है। इस प्रकार फर्म को होने वाली हानियों से मुक्त रखा जा सकता है। जब उत्पादन भविष्य में विक्रय के लिए किया जा रहा हो तो उस स्थिति में मांग पूर्वाभास का अत्यन्त महत्व होता है। विद्यमान एवं नयी वस्तुओं को पूर्वाभास के लिये प्रबन्धक अपनी सुविधा एवं वांछित परिणामों को ध्यान में रखकर माँग-पूर्वाभास की विधियों का प्रयोग करते हैं।

6.2 मांग पूर्वाभास का अर्थ (Meaning of Demand Forecasting)

मांग पूर्वाभास शब्द दो शब्दों मांग एवं पूर्वाभास से मिलकर बना है। मांग का विस्तृत अध्ययन पिछली इकाईयों में किया जा चुका है। पूर्वाभास या भविष्यवाणी का सामान्य अर्थ होता है कि कोई काम कब, कहाँ, कैसे और कितना होगा? इस प्रकार दोनों शब्दों को मिलाने पर कह सकते हैं कि मांग पूर्वाभास आगामी समय में कब, कहां, कैसे और कितनी मांग होगी का निर्धारण करना है। यह विक्रय पूर्वाभास का पर्याय भी माना जाता है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा विक्रय पूर्वाभास की परिभाषाएं निम्न हैं—

फिलिप कोटलर के अनुसार, "कम्पनी का पूर्वानुमान एक चुनी हुई बाजार योजना एवं दिए गए बाजार सम्बन्धी वातावरण पर आधारित कम्पनी के विक्रय का आशान्वित स्तर है।"

कण्डिफ एवं स्टिल के शब्दों में, "विक्रय पूर्वाभास किसी दिये हुए भविष्य कालीन समय में विक्रय का अनुमान होता है जो कि

प्रस्तावित बाजार योजना से सम्बद्ध होता है जिसमें अनियमित एवं प्रतियोगी शक्तियों का एकसमूह विशेष सम्मिलित होता है।''

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के विचार से, ''विक्रय पूर्वाभास इकाई के विक्रय का डॉलर या भौतिक इकाइयों के रूप में दी हुई बाजार योजना या आयोजन एवं आर्थिक और अन्य बाह्य शक्तियों की मान्यता के अन्तर्गत भविष्यकाल के बारे में अनुमान होता है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर मांग पूर्वाभास की निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं :-

i. यह भविष्य के विक्रय का अनुमान होता है।
ii. भूतकाल के आँकड़े व परिस्थितियाँ पूर्वाभास का आधार होती है।
iii. यह योजना का आधार होता है।
iv. पूर्वाभास मुद्रा एवं वस्तु की इकाई के रूप में हो सकता है।
v. पूर्वाभास एक निश्चित समय के लिए होता है।
vi. बाजार सम्बन्धी योजना, आर्थिक तथा अन्य तत्वों पर पूर्वानुमान निर्भर करता है।

6.3 मांग पूर्वाभास का क्षेत्र (Scope of Demand Forecasting)

मांग पूर्वाभास समय की दृष्टि से अल्प या दीर्घकालीन हो सकता है। अल्पकाल में जहां एक वर्ष तक का अनुमान होता है वहीं दीर्घकालीन पूर्वाभास 5, 10 या 20 वर्ष तक का होता

है। यह फर्म की आवश्यकता अथवा परिस्थिति पर निर्भर करता है।

स्तर की दृष्टि से मांग पूर्वाभास तीन प्रकार से हो सकता है—

i. व्यापक स्तर ii. उद्योग स्तर, तथा iii. फर्म स्तर

व्यापक स्तर का सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था की परिस्थिति से सम्बन्ध होता है। यह पूर्वाभ्यास औद्योगिक उत्पादन सूचकांक, राष्ट्रीय आय अथवा व्यय द्वारा होता है जिसका आधार बाहरी आँकड़े हैं। **उद्योग स्तर** पर मांग पूर्वाभास विभिन्न व्यापार संघों द्वारा किये जाते हैं। **फर्म स्तर,** जो कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, मांग पूर्वाभास के क्षेत्र में शामिल होता है।

मांग पूर्वाभास सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है। सामान्य पूर्वाभास तो फर्म को लाभदायक बना सकता है, लेकिन कभी-कभी विक्रय के क्षेत्रों के दृष्टिकोण से अलग-अलग वस्तुओं का पूर्वाभास करना पड़ता है। मांग पूर्वानुमान का क्षेत्र इस बात पर भी निर्भर करता है कि यह पूर्वानुमान विद्यमान वस्तुओं का है अथवा नई वस्तुओं का।

6.4 मांग पूर्वाभास की विधियाँ (Methods of Demand Forecasting)

पूर्वाभास की समस्या के समाधान के लिए इसे दो भागों में बांटा जाता है—

(क) विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास

(ख) नई वस्तुओं का पूर्वाभास

RIL-082

6.4.1 (क) विद्यमान वस्तुओं का मांग-पूर्वाभास (Forecasting the Demand for Established Produets)—

स्थापित वस्तुओं का मांग पूर्वाभास एक सामान्य प्रक्रिया है। यह वर्तमान बाजारों से प्राप्त सूचनाओं तथा भूतकालीन विक्रय के स्वभाव से तैयार किया जाता है। मांग के तत्व अल्पकाल में कम परिवर्तनशील होते हैं अतः अनुमान का कार्य सरल हो जाता है।

विद्यमान वस्तुओं की अनुमान विधियों के कई रूप हो सकते हैं, जिनमें कुछ व्यक्तिगत विवेक तथा अनुभव पर निर्भर करते हैं जबकि अन्य दैनिक क्रिया के रूप में अपनाए जाते हैं। पूर्वाभास की विभिन्न विधियाँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती तथा सामूहिक रूप से काम करती हैं। मांग पूर्वाभास की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

(i) क्रेताओं की इच्छाओं का सर्वेक्षण
(ii) जानकार व्यक्तियों का सर्वेक्षण
(iii) भूतकालीन प्रवृत्तियों का प्रदर्शन
(iv) सह-सम्बन्ध विश्लेषण
(v) नियन्त्रित प्रयोग
(vi) आर्थिक संकेतकों की विधि

(i) **क्रेताओं की इच्छाओं का सर्वेक्षण**— मांग के अनुमान की सबसे सरल विधि ग्राहकों से यह पूछने की होती है कि वे क्या खरीदने की योजना बना रहे है ? सभी ग्राहकों से यह पूछना सम्भव नहीं है। अतः नमूने के तौर पर कुछ ऐसे ग्राहकों से पूछा जा सकता है, जो सभी ग्राहकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। औद्योगिक उत्पादनों के विक्रय की स्थिति में पूर्वानुमान का भार ग्राहक पर होता है। औद्योगिक क्रेता का अनुमान विक्रेता के अनुमान को ठीक बना सकता है। क्रेता निश्चित अनुमान के आधार पर अपनी आवश्कताओं का पूर्वानुमान करता है, परन्तु वस्तु का भन्डार उसकी

वास्तविक मांग में कुछ नरमी बरतता है। इस प्रकार मूल्य दृष्टि में थोड़ा भी परिवर्तन उसके वस्तु के भण्डार के दृष्टिकोण में बहुत कुछ परिवर्तन ला देता है। अतः औद्योगिक क्रेताओं के क्रय की अन्य इच्छाओं को जानने के मार्ग में अनेक बाधाएं आती हैं।

(ii) जानकार व्यक्तियों का सर्वेक्षण— यह एक प्रभावपूर्ण विधि है जिसमें उन व्यक्तियों के विचारों को जाना जाता है जिन्हें क्रेताओं के बारे में पूर्ण जानकारी होती है। अनेक कम्पनियां अपने पूर्वाभास सीधे अपने विक्रयकर्ताओं से लेती है जो ग्राहकों से सीधे सम्बन्धित होते हैं तथा जिन्हें बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। अनुमानों को जोड़कर कुल अनुमान किया जाता है, जिसके पश्चात् आशा सम्बन्धी त्रुटियों को कम करने के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा इसकी जांच की जाती है। यद्यपि यह विधि बहुत अनौपचारिक है फिर भी अधिकांश कम्पनियां इसे अपनाती हैं।

iii. भूतकालीन प्रवृत्तियों का प्रदर्शन— सांख्यिकीय विधियों द्वारा काल श्रेणियों का विश्लेषण कर विक्रय के भूतकालीन स्वभाव को दीर्घकालीन प्रवृत्ति, व्यावसायिक चक्र सम्बन्धी उच्चावचनों के वक्र के समूह तथा ऋतुगत ढाँचे जैसे कई भागों में विभक्त कर दिया जाता है।

$$O = TSCI$$

O = परीक्षित आँकड़े

T = दीर्घकालीन प्रवृत्ति

S = ऋतुगत तत्व

C = चक्रीय तत्व

I = अनियमित परिवर्तन

इस विधि में सर्वप्रथम आँकड़ों की प्रवृत्ति निकाली जाती है जिसे परीक्षित आंकड़ों से घटा दिया जाता है। इसके पश्चात् दूसरा

पद ऋतुगत सूचकांक बनाया जाता है, जिससे ऋतुगत प्रभाव को घटा दिया जाता है तब चक्र को बाकी बचे हुए चक्रीय तत्व तथा अनियमित परिवर्तन में समायोजित कर दिया जाता है।

(iv) सह-सम्बन्ध विश्लेषण— सह-सम्बन्ध का प्रयोग मांग के पूर्वानुमान में होता है जिसमें दो या उससे अधिक चरों के बीच सम्बन्ध की सीमा की माप को सह-सम्बन्ध विश्लेषण कहते हैं। यह सम्बन्ध दो चरों के बीच जितना अधिक होता है, अनुमान उतने ही ठीक होते हैं। सह-सम्बन्ध विश्लेषण मांग-फलन, विक्रय, राष्ट्रीय आय, मूल्य और मौसम जैसे तत्वों को भी बताता है। इसका प्रमुख लक्ष्य मांग निर्धारक तत्वों तथा विक्रय में परिवर्तन के बीच के सम्बन्ध को अलग करना तथा मापना है। गणितीय रूप में प्रस्तुत किये गये ये तत्व यह बताते हैं कि किस प्रकार स्वतंत्र तत्व में परिवर्तन से विक्रय में परिवर्तन होता है। अतः इस विधि द्वारा मांग-पूर्वाभास को निर्धारित किया जा सकता है।

(v) नियन्त्रित प्रयोग— नियन्त्रित बाजार प्रयोग द्वारा वस्तु के विक्रय की सम्भावना इस विधि द्वारा जानी जाती है। गृहणियों द्वारा चुनाव हेतु कुछ वस्तुओं को विक्रय के लिए किसी दुकान पर रखा जाता है। इन नमूनों पर गृहणी ग्राहकों की मांग का अध्ययन किया जाता है कि वे प्रयोग की जा रही वस्तुओं को कितना चाहती हैं। उनके चयन, पसन्द एवं वार्तालाप को लिखा जाता है। वस्तु के मूल्य, लेबल आदि में परिवर्तन ग्राहकों के क्रय में परिवर्तन को देखते हुए लाया जाता है। इस विधि की सफलता वस्तुओं को दुकानों पर निःशुल्क भेजने से होती है। यह एक खर्चीली विधि होती है।

(vi) आर्थिक संकेतकों की विधि—इस विधि द्वारा मांग का पूर्वाभास कुछ आर्थिक संकेतकों के आधार पर किया जाता है। ये संकेत परिस्थिति विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं तथा इनकी

मात्रा और सही जानकारी प्राप्त करना एक कठिन समस्या होती है। सामान्य स्थितियों में इस विधि को अपनाना आसान होता है।

6.4.2 (ख) नई वस्तुओं का मांग पूर्वाभास (Forecasting the Demand for New Products)

विद्यमान वस्तुओं से नई वस्तुओं के मांग पूर्वाभास की विधियाँ भिन्न होती है। फर्म के मांग पूर्वाभास की विधियों से भिन्न नई वस्तु की माँग पूर्वाभास विधि होती है। वस्तु का फर्म तथा अर्थव्यवस्था दोनों के लिए नई होना इसका प्रमुख कारण होता है। इस कारण इसकी आर्थिक तथा प्रतिद्वन्दी विशेषताओं का अध्ययन कठिन होता है। सामान्यतः पूर्वाभास की विधियाँ आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिए। प्रमुख प्रणालियाँ निम्न है—

(i) विकासगत प्रणाली (Evolutionary Method)—नई वस्तु की मांग का विद्यमान वस्तु के विकास अथवा आविष्कार के परिणाम के रूप में अनुमान करना चाहिए। यह प्रणाली उस स्थिति में उपयोगी होती है जब नई वस्तु पुरानी वस्तु का इतना निकटतम विकल्प हो कि इसकी मांग विद्यमान वस्तु की सम्भावित प्रगति या सुधार के फलस्वरूप बढ़ी हुई मांग के बराबर हो। इस प्रणाली की प्रमुख समस्या यह है कि इसमें नई मांग के ढांचे तथा पुरानी वस्तुओं की मांग के बीच में अन्तर करना कठिन होता है।

(ii) वैकल्पिक प्रणाली (Substitute Method)—यह प्रणाली अत्यधिक उपयोगी होती है क्योंकि अधिकांश वस्तुएं विकल्प ही होती हैं। कभी-कभी पुरानी वस्तु नई वस्तु के संभावित बाजार की अधिकतम सीमा निश्चित करती है। इसके अतिरिक्त वस्तु का विस्थापन दर नियम भी नई वस्तु के विक्रय के विस्तार के लिए यह बताता है कि किस तरह से सुधार अथवा मूल्य निर्धारण किया जाए।

विकल्प की अधिकतम सीमा नहीं बल्कि भेद्य-दर (Rate of Penetration) कई व्यावहारिक समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण होता है अर्थात् कितनी तेजी से नई वस्तु पुरानी वस्तु को विस्थापित कर देगी। प्रत्येक प्रयोग अलग-अलग विस्थापन की योग्यता की समस्या पैदा करता है। अतः विद्यमान वस्तुओं का विस्थापन नई वस्तु की सम्भावित मांग के एक अंश तक ही सीमित रहता है।

(iii) विकास वक्र प्रणाली (Growth Curve Method)—नई वस्तु की मांग की विकास दर तथा अन्तिम स्तर का अनुमान दूसरे प्रणाली में लगाया जाता है जिसके पश्चात् यह सुनिश्चित किया जाता है कि अनुमान स्थापित वस्तुओं के विकास के ढाँचे के आधार पर होना चाहिए। इस प्रणाली की उपयोगिता सीमित होती है तथा बाद वाले मांग अनुमानों में इसके प्रयोग होते हैं। इस प्रणाली का उपयोग नए वायु-मार्ग तथा नए स्थल यातायात के सम्भावित विकास के अनुमान के लिए किया जाता है।

(iv) मतदान प्रणाली (Opinion Poll Method)—इस प्रणाली में अन्तिम क्रेताओं से पूछकर मांग की गणना की जाती है तथा अनुमान लगाया जाता है। मतदान भी व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा नई वस्तुओं की मांग की खोज में सहायता पहुंचाता है। परन्तु इस प्रणाली में नमूने वास्तविक इच्छाओं को जानने में विविध विकल्प चयन की जटिलता तथा स्थापित वस्तुएं जैसी समस्याएं होती है। इसमें अभिमन्त्रणा परीक्षणों द्वारा अच्छे परिणाम मिल सकते हैं।

(v) विक्रय अनुभव प्रणाली (Sales Experience Approach)—इस प्रणाली के अन्तर्गत नई वस्तु को नमूने अथवा किसी श्रृंखला भण्डार में भेजा जाता है और इससे सभी माँगों तथा बाजार की कुल मांग का अनुमान किया जाता है नमूने के आधार पर नई वस्तु के विक्रय का आधार नियन्त्रित होता है तथा मांग का अनुमान ठीक-ठीक हो पाता है। परन्तु वस्तु की

RIL-082

अपरिपक्वता तथा विशिष्टताओं के लिए छूट निर्धारित करने में कठिनाई होती है। कम पूंजी से पैदा होने वाली कम मूल्य की वस्तुओं को छोड़कर यह प्रणाली अनुसंधान के विक्रय में देर से आती है।

(vi) पर उत्तरदायित्व प्रणाली (Vecarious Method)— अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट विक्रेताओं द्वारा नई वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं की प्रतिक्रिया जानना चाहिए। उपभोक्ता की आवश्यकताओं तथा वैकल्पिक अवसरों के बारे में इन विक्रेताओं को पता होता है। यद्यपि यह एक आसान प्रणाली होती है परन्तु निश्चित नहीं होती है। विक्रेताओं की ओर से मांग सम्बन्धी गणना की पुनः जांच की जानी चाहिए। इस प्रणाली द्वारा प्राप्त अनुमान विक्रेता की अनुमान सम्बन्धी क्षमता से अधिक अच्छे नहीं होते हैं। कभी-कभी विक्रेता सूचना भी बिना मन के देते हैं।

श्रेष्ठ पूर्वाभास प्रणाली (A Good Forecasting Method)— भविष्य के विक्रय का अनुमान करने के सम्बन्ध में अनेक श्रेष्ठ विधियां हैं, जिनमें लागत की लोच तथा कौशल सम्बन्धी भिन्नता पाई जाती है। किसी विशेष मांग परिस्थिति के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रणाली चुनते समय निम्न बातों का होना आवश्यक होता है—

(अ) शुद्धता

(ब) सम्भाव्यता

(स) टिकाऊपन

(द) लोच

(ङ) उपादेयता

6.5 मांग पूर्वाभास का महत्व (Importance of Demand Forecasting)

आधुनिक व्यवसाय में मांग पूर्वाभास का बहुत महत्व है। प्रत्येक

RIL-082

फर्म को यह जानना पड़ता है कि उसकी वस्तु का कब एवं कितना विक्रय होगा? यह मांग पूर्वाभास द्वारा सम्भव है। यह फर्म को समायोचित जानकारी देकर भविष्य के जोखिमों से बचाता है तथा फर्म अनुमानों के आधार पर अपनी योजनाओं, उत्पादन एवं विक्रय सम्बन्धी लक्ष्य को समायोजित करता है। पूर्वाभास की शुद्धता एवं सत्यता पर व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। इसके द्वारा व्यवसाय में किये गये सभी कार्य सही ढंग से होंगे तथा फर्म लाभ कमाने की स्थिति में होगा। मांग के पूर्वानुमान के आधार पर ही मशीन, श्रम, कच्ची सामग्री, आदि साधन उचित मात्रा एवं समय पर जुटाए जाते हैं। इस प्रकार मांग के अनुरूप समय पर उत्पादित वस्तुएं उत्पादन के कुप्रभावों से बच जाती हैं। अनेक उद्योगों में मौसम का बहुत महत्त्व होता है। अतः ऐसी स्थिति में मांग पूर्वानुमान का महत्व बढ़ जाता है।

6.6 सारांश

मांग पूर्वाभास आधुनिक व्यावसायिक संगठनों के लिए अत्यन्त आवश्यक होते है। क्योंकि यह युग प्रतियोगिता का युग है जिसमें सही समय पर सही चीजों की आवश्यकता होती है। मांग पूर्वाभास द्वारा प्रबन्ध को काफी हद तक सही चीजों का पूर्वाभास हो पाता है जिससे व्यवसाय की गतिविधियां सुचारू ढंग से सम्पन्न हो पाती है। इसके द्वारा साधनों का अधिकतम एवं यथोचित उपयोग सम्भव हो पाता है। यह योजनाओं को आधार प्रदान करता है जो एक निश्चित समय के लिए होता है। मांग पूर्वाभास की सामान्यतः दो विधियां—विद्यमान वस्तुओं का पूर्वाभास तथा नई वस्तुओं का पूर्वाभास पायी जाती है। इन विधियों का प्रयोग फर्म द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार किया जाता है। मांग पूर्वाभास का महत्व आधुनिक व्यवसाय में अत्यधिक होता है क्योंकि मांग पूर्वाभास के द्वारा न तो कम उत्पादन द्वारा व्यवसाय हानि को उठाता है और

न ही अत्यधिक उत्पादन द्वारा साधनों की बर्बादी के द्वारा हानि उठाता है। इस प्रकार फर्म को लाभदायक स्थिति में बनाये रखने के लिए मांग पूर्वाभास का अत्यधिक महत्व होता है।

6.7 बोध प्रश्न

1. मांग पूर्वाभास के क्षेत्र को समझाइए।
2. मांग पूर्वाभास के महत्व को बताइये।
3. मांग पूर्वाभास की विधियों को समझाइये।

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- शर्मा एम0एल, प्रबंधकीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 2004
- पन्त जे0सी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 2005
- जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा 2005
- Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company Ltd. 2001.
- एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

इकाई-7 फर्म का सिद्धान्त-लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण (Theory of Firm-Profit and Sales maximization)

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 लाभ अधिकतमकरण

7.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता में लाभ अधिकतमकरण

7.2.2 एकाधिकार में लाभ अधिकतमकरण

7.3 बॉमल का विक्रय अधिकतम सिद्धान्त

7.3.1 एकल वस्तु के साथ मॉडल

7.3.2 स्थिर लागतों के साथ मॉडल

7.3.3 वहुवस्तु मॉडल

7.4 वॉमल माडल की कमियां

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य—

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगेः

- लाभ अधिकतमकरण को समझने में,
- विभिन्न स्थितियों में लाभ अधिकतमकरण को समझने में,
- विक्रय अधिकतमकरण को समझने में, तथा

- वॉमल के माडलों को विश्लेषित करने में।

7.1 प्रस्तावना

फर्म का संचालन अनेक सिद्धान्तों के आधार पर होता है। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, तथा संतुष्टि एवं विक्रय अधिकतमकरण जैसे सिद्धान्त पाये जाते हैं। लाभ अधिकतमकरण से तात्पर्य मुद्रा लाभ से है जो औसत लागत से ऊपर या अधिक्य शुद्ध लाभ होता है। इसके अतिरिक्त फर्म अपने उत्पादन अधिकतमकरण को भी महत्व प्रदान करते हैं क्योंकि उत्पादन अधिकतमकरण होने से स्वतः ही अनेक वांछित परिणाम फर्म को प्राप्त होने लगते हैं। अतः फर्म लाभ एवं विक्रय अधिकतमकरण पर केन्द्रित करके कार्य करते हैं।

7.2 लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximization)

किसी भी व्यावसायिक फर्म के कई उद्देश्य हो सकते हैं जैसे—लाभ अधिकतमकरण, उत्पादन अधिकतमकरण, उपयोगिता अधिकतमकरण, संतुष्टि अधिकतमकरण, संयुक्त लाभ अधिकतमकरण आदि।

लाभ अधिकतमकरण से तात्पर्य- मुद्रा लाभ (Money profit) से है। अन्य शब्दों में यह औसत लागत (Average cost) के ऊपर आधिक्य (Surplus) अर्थात् शुद्ध लाभ है।

किसी फर्म के लाभ अधिकतमकरण का नियम

पूर्ण एवं एकाधिकार स्थिति में—

(i) सीमान्त लागत = सीमान्त आगम (MC = MR) अर्थात् कुल आगम (Total Revenue) तथा कुल लागत (Total Cost) के मध्य अनुकूलतम अन्तर (Optimum Difference) होना चाहिए।

ii. सीमान्त आगम (MR) वक्र को सीमान्त लागत (MC) वक्र नीचे से काटे।

Maximise π (Q) π (Q) – Profit

जहाँ π (Q) = R (Q) – C (Q) R (Q) – Revenue

C(Q) – Cost

मान्यताएँ (Assumptions)

1. फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण है।
2. उपभोक्ताओं की रुचि एवं आदतें दी हुई हैं
3. उत्पादन तकनीक दी हुई है।
4. फर्म एक अकेली (Single), विभाज्य (Divisible), प्रमापित (Standard) वस्तु का उत्पादन करती है।
5. फर्म को अपनी मांग वक्र तथा लागत वक्रों का पूर्ण ज्ञान है।
6. नई फर्मों का प्रवेश केवल दीर्घकाल में संभव है, अल्पकाल में संभव नहीं।
7. लाभ अधिकतमकरण कुल काल-क्षितिज (Time Horizon) में करती है।

7.2.1 पूर्ण प्रतियोगिता में लाभ अधिकतमकरण (Profit maximisation under perfect competition)

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अनेक उत्पादकों में एक है। वस्तु की बाजार कीमत को फर्म प्रभावित नहीं कर सकती है। फर्म केवल Price taker तथा Quantity adjustive होती है अर्थात् बाजार द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्म केवल अपनी विक्रय मात्रा में ही समायोजन करके लाभ को अधिकतम बना सकती है। इसलिए इस स्थिति में फर्म का औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र समान होते हैं।

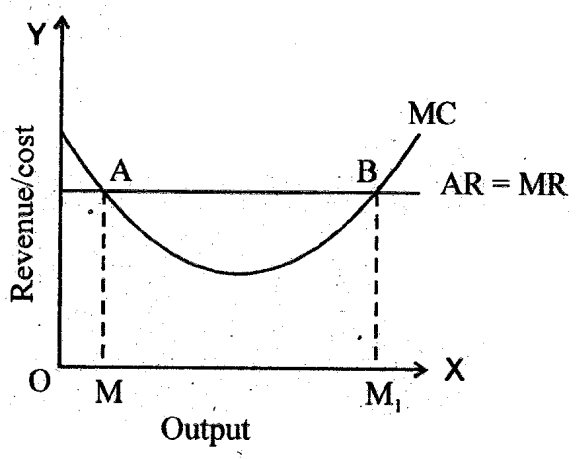

चित्र में A बिन्दु पर MR वक्र MC वक्र को काटता है। किन्तु बिन्दु A पर MR = MC होने पर भी यह संतुलन का बिन्दु नहीं है। इस बिन्दु के बाद MC, MR से नीचे है तथा न्यूनतम उत्पादन स्तर OM, अधिकतम लाभ का उत्पादन स्तर नहीं है। बिन्दु B पर संतुलन की दोनों शर्तों की पूर्ति होती है। MR = MC तथा MR को MC नीचे से काट रहा है। सीमान्त लागत का ढाल धनात्मक (MC has positive slope) है। OM अधिकतम लाभ

का उत्पादन स्तर है किन्तु यह अनुकूलतम लाभ का उत्पादन स्तर नहीं है।

7.2.2 एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण (Profit Maximisation under Monopoly)—

मांग वक्र का ढाल नीचे होने के कारण एकाधिकार में फर्म को कुछ अधिकार कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण के लिए प्राप्त होते हैं।

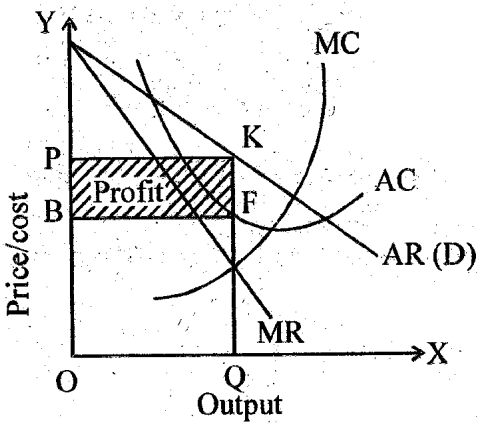

सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत MR & MC पर आधारित साम्यता (equilibrium) या अधिकतम लाभ के निर्धारण का दृष्टिकोण सर्वप्रथम Mrs Jhon Robinson ने दिया था।

सन्तुलन उत्पादन स्तर वहाँ होता है जहाँ MR = MC होता है। इस प्रकार उपरोक्त चित्र में,

संस्थिति उत्पादन = OQ

प्रति इकाई मूल्य (AR) = QK या OP

औसत लागत (AC) = QF या OB

लाभ प्रति इकाई = QK – QF = FK or OP-OB = PB

कुल लाभ = FK × OQ = or PB × OQ = } PKFB

MR = MC होना फर्म की संस्थिति की आवश्यक दशा अवश्य है पर पर्याप्त दशा नहीं।

RIL-082

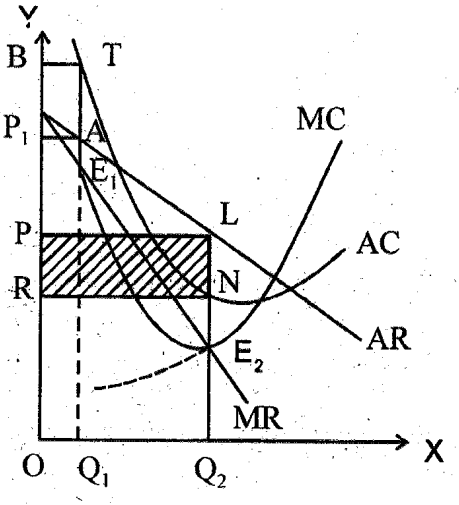

उपरोक्त चित्र में सीमान्त लागत वक्र (MC Curve) सीमान्त आगम (MR) को दो बिन्दुओं E_1 और E_2 पर काट रही है। परन्तु E_1 सन्तुलन का बिन्दु नहीं होगा। $BTAP_1$ फर्म की हानि की दशा है।

संतुलन E_2 पर होगा तथा PLNR फर्म का अधिकतम लाभ है।

इस चित्र में, TR = फर्म की कुल आगम वक्र (Total Revenue Curve)

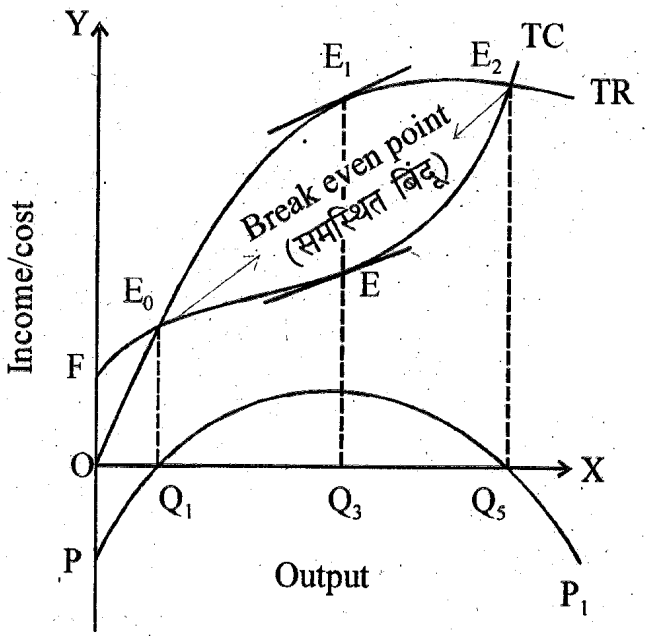

TC = कुल लागत वक्र (Total Cost Curve)

TR इस मान्यता पर खींचा गया है कि वस्तु की बेची गई मात्रा में वृद्धि के साथ मूल्य में कमी हो रही

है।

OF = स्थिर लागत (Fixed cost)

TC = Fixed Cost + Variable Cost

साम्य स्तर वहां होगा जहां कुल लागत तथा कुल आगम TC & TR का अंतर अधिकतम होगा। इसलिए दोनों वक्र पर स्पर्श रेखा चित्रित करेंगे, जो TR और TC के ढाल को बताती है।

बिन्दु E_0 संतुलन बिन्दु नहीं हो सकता क्योंकि इस बिन्दु से पूर्व लागत, आगम से ज्यादा है। बिन्दु E_2 के बाद भी लागत, आगम से अधिक हो जायेगी। अतः E_0 से लेकर E_2 के बीच ही लाभ अधिकतम होगा। बिन्दु E_0 तथा E_2 को सम-विच्छेद बिन्दु भी कहते हैं।

PP_1 कुल लाभ वक्र है।

शून्य उत्पादन स्तर पर OF लागत तथा OP हानि है। अधिकतम उत्पादन स्तर OQ_5 होगा, क्योंकि OQ_5 के बाद फर्म उत्पादन नहीं करेगी। इस प्रकार अधिकतम लाभ OQ_1 और OQ_5 मध्य उत्पादन स्तर रखने पर अर्थात् OQ_3 पर होगा।

फर्म के संतुलन का गणितीय निरूपण (Mathematical derivation of the equilibrium of the firm)

$\pi = R - C$ π = लाभ (Profit)

R = आगम (Revenue)

C = लागत (Cost)

$$\frac{\partial \pi}{\partial X} = \frac{\partial R}{\partial X} - \frac{\partial C}{\partial X} = 0$$

... (i)

$$\frac{\partial R}{\partial X} = \frac{\partial C}{\partial X}$$

$$MR = MC$$

$$\frac{\partial^2 \pi}{\partial X^2} = \frac{\partial^2 R}{\partial X^2} - \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

$$\frac{\partial^2 R}{\partial X^2} - \frac{\partial^2 C}{\partial X^2} < 0$$

.. ii)

$$\frac{\partial^2 R}{\partial X^2} < \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

(Slope of MR) < (slope of MC)

$$0 < \frac{\partial^2 C}{\partial X^2}$$

MC curves must have a positive

slope, or the MC must be rising

बॉमल का विक्रय अधिकतम सिद्धान्त

(Baumol's Theory of Sales Revenue Maximisation)

बॉमल ने अमेरिका में फर्मों की जांच में पाया कि वे विक्रय अधिकतमीकरण के उद्देश्य का पालन करती है। आधुनिक निगमों में स्वामित्व से नियंत्रण के अलग हो जाने के कारण, लाभों की लागत पर भी, कंपनी के विक्रय को बढ़ाकर, प्रबंधक प्रतिष्ठा हेतु ऊंचे वेतन चाहते हैं। जब व्यवसायी प्रबंधकों से पूछा गया कि उनका व्यवसाय पिछले वर्ष कैसा रहा, तो उत्तर रहा—"हमारे विक्रय 3 मिलियन बढ़ गए हैं।" लाभ के ऊपर वे बात करते हैं तो केवल विचार के रूप में।

आगम या विक्रय अधिकतमकरण, न कि लाभ अधिकतमकरण,

फर्मों के वास्तविक व्यवहार से मेल खाता है। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लक्ष्य बिक्री अधिकतमकरण ही है।

- एक फर्म अपने बिक्री के आकार को बहुत महत्त्व देती है तथा बिक्री कम होने पर चिन्तित होती है। कारण बिक्री कम होने पर बैंक, ऋणदाता तथा पूंजी बाजार उसे वित्त प्रदान करने को तैयार नहीं होते। इसके अपने वितरक एवं व्यापारी इसकी वस्तुओं में दिलचस्पी लेना बंद कर देते हैं तथा उपभोक्ता भी इसकी वस्तुओं को नहीं खरीदते फलस्वरूप यह घाटे में जा रही होती है। परन्तु यदि फर्म की बिक्री अधिक हो तो फर्म का आकार बढ़ता है जिसका अभिप्राय उसके अधिक लाभ से लिया जाता है।

7.3.1 एकल वस्तु के साथ मॉडल (Model with Single Product)—

अधिकतम विक्रय से बॉमल का अभिप्राय अधिकतम कुल आगम है। इसका अर्थ उत्पादन की अधिक मात्राओं का विक्रय नहीं बल्कि मौद्रिक विक्रय (रुपये, डालर, आदि) में वृद्धि है। विक्रय अधिकतम लाभ के बिन्दु तक बढ़ सकता है जहाँ सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर होते हैं। परन्तु यदि इससे आगे बढ़ा दिया जाए तो लाभ कम करके मौद्रिक आय बढ़ सकती है परन्तु अल्पाधिकारी फर्म यह चाहती है

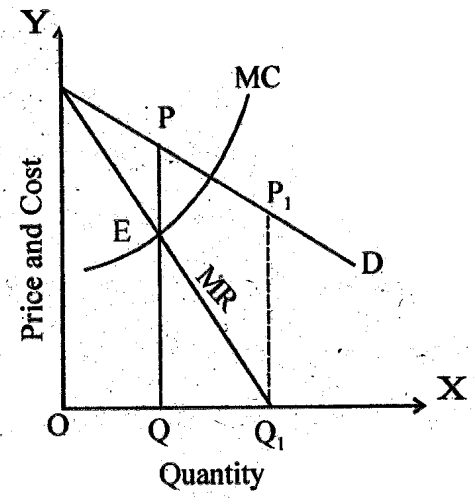

कि उसके मौद्रिक विक्रय बढ़ें

चाहे

उसे न्यूनतम लाभ हो। न्यूनतम लाभों से अभिप्राय अधिकतम लाभों से कम लाभ है। न्यूनतम लाभ फर्म की विक्रय अधिकतम करने की आवश्यकता द्वारा निर्धारित होते हैं और बिक्री में हो रही वृद्धि को कायम रखने के लिए हैं। यह भविष्य की बिक्री में रुपया लगाने के लिए भी आवश्यक होते हैं। फिर, वे फर्म की अन्य वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तथा शेयर पूंजी पर लाभाँश देने के लिए भी जरूरी होते हैं। अतः न्यूनतम लाभ एक फर्म के अधिकतम लाभ के प्रतिबंध का कार्य करते हैं। बॉमल के अनुसार, "अधिकतम आगम केवल उस उत्पादन पर प्राप्त होगा जहाँ माँग की लोच इकाई के बराबर होगी अर्थात् यहाँ सीमान्त आगम शून्य होगा। यही शर्त है जो अधिकतम लाभ नियम की सीमान्त लागत सीमान्त आगम समान होने की शर्त का स्थान लेती है।" यह चित्र में दिखाया गया है जहाँ अधिकतम लाभ प्राप्त करके फर्म OQ मात्रा उत्पादित करती है। इस स्थिति में MC तथा MR वक्र E बिन्दु पर मिलते हैं। परन्तु विक्रय-अधिकतम करने वाली फर्म OQ मात्रा उत्पादित करेगी जहाँ MR वक्र शून्य है।

बॉमल के मॉडल को चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र में TC कुल लागत वक्र है, TR कुल आगम वक्र, TP कुल लाभ वक्र तथा MP न्यूनतम लाभ अथवा लाभ प्रतिबंध रेखा है। फर्म TP वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु B के अनुरूप उत्पादन के OQ स्तर पर अपने लाभ को अधिकमत करती है। परन्तु फर्म का उद्देश्य अपने विक्रय को अधिकतम करना होता है, न कि लाभों को। इसका विक्रय-अधिकतम उत्पादन OK है, जहाँ TR वक्र के सबसे ऊँचे बिन्दु पर कुल आगम KL अधिकतम है। यह

RIL-082

विक्रय अधिकतम उत्पादन OK, लाभ अधिकतम उत्पादन OQ से अधिक है परन्तु विक्रय अधिकतम, न्यूतम लाभ प्रतिबन्ध द्वारा बाध्य होती है (Sales maximisaton is subject to minimum profit constraint)। मान लीजिए कि न्यूनतम लाभ स्तर MP रेखा द्वारा दर्शाया गया है। OK उत्पादन विक्रय अधिकतम नहीं करेगा क्योंकि न्यूनतम लाभ OM की शर्त कुल लाभ KS द्वारा पूरी नही की जा रही है। विक्रय अधिकतम के लिए फर्म को उत्पादन का वह स्तर उत्पादित करना चाहिए जो केवल न्यूनतम लाभ की शर्त ही पूरा नहीं करता बल्कि इसके अनुरूप अधिकतम आगम भी प्रदान करता है। यह OD उत्पादन का स्तर है, जहाँ न्यूनतम लाभ DC (= OM) कुल आगम की DE मात्रा के कीमत DE/OD (कुल आगम/कुल उत्पादन) के अनुरूप है।

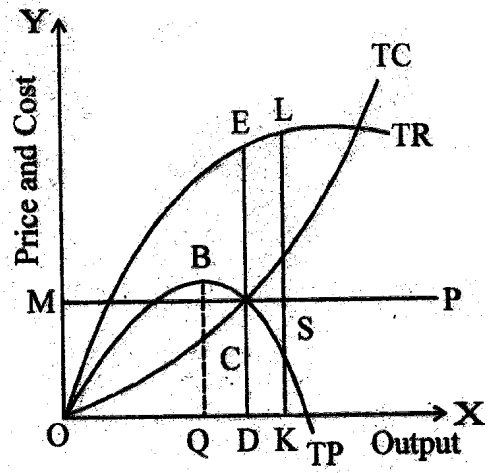

अल्पाधिकार का बॉमल मॉडल यह बताता है कि अधिकतम विक्रय-उत्पादन OD से अधिकतम लाभ-उत्पादन OQ थोड़ा होगा और कीमत अधिक होगी। विक्रय अधिकतम में कीमत कम होने का कारण यह है कि कुल आगम तथा कुल उत्पादन दोनों ही ऊँचे हैं, जबकि लाभ अधिकतम में कुल उत्पादन कुल आगम की अपेक्षा बहुत कम है। मान लीजिए कि चित्र में QB को TR के साथ रेखा द्वारा जोड़ दिया जाय। बॉमल के अनुसार, "यदि न्यूनतम लाभ के बिन्दु पर फर्म आवश्यक न्यूनतम से अधिक लाभ कमाती है, विक्रय अधिकतम करने वाले को अपनी कीमत कम करने तथा

भौतिक उत्पादन बढ़ाने से लाभ होगा।"

विज्ञापन के साथ मॉडल (Model with Advertising)—आगे बॉमल ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के अन्तर्गत लाभ प्रतिबंध भी विज्ञापन में प्रभावशाली होता है और इस प्रकार फर्म के आगम को बढ़ाता है। चित्र में विज्ञापन पर व्यय में क्षैतिज अक्ष पर और कुल आगम, लागतें और लाभ अनुलम्ब अक्ष पर लिए गये हैं। TR कुल आगम वक्र है। 45° रेखा AC विज्ञापन लागत वक्र है। OC के बराबर अन्य लागतों की एक स्थिर राशि को AC वक्र में जोड़ देने से हमें कुल लाभ वक्र TP प्राप्त होता है, जो TR वक्र और TC वक्र के बीच का अन्तर है। MP न्यूनतम लाभ प्रतिबंध रेखा है। लाभ अधिकतमकरण फर्म OQ विज्ञापन पर खर्च करेगी और इसका कुल आगम OS(=QA) होगा। दूसरी ओर, लाभ प्रतिबंध MP दिया होने पर, विक्रय अधिकतमकरण फर्म OD विज्ञापन पर व्यय करेगी और कुल आगम OT(= DE) प्राप्त करेगी। इस प्रकार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक व्यय करती है (OD-OQ), और उससे अधिक आगम प्राप्त करती है जो (DE - QA) के बराबर है। लाभ प्रतिबंध स्तर MP की शर्त दोनों ही स्थितियों में पूरी होती है। अतः विक्रय अधिकतम करने वाली फर्म को अपने विज्ञापन व्यय को बढ़ाने में सदैव लाभ होगा जब तक कि लाभ प्रतिबंध उसे रोक नहीं देता है।

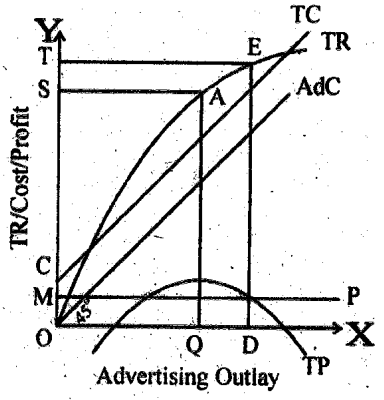

RIL-082

7.3.2 स्थिर लागतों के साथ मॉडल (Model with Fixed Costs)—

बोमल की विक्रय-अधिकतमकरण फर्म लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक वास्तविक है, क्योंकि यह स्थिर लागतों में परिवर्तनों से प्रभावित होती है, जैसा कि वास्तविक व्यवसायिक फर्मों के बारे में पाया जाता है। नव-क्लासिकी लाभ-अधिकतमकरण सिद्धांत यह मानता है कि अल्पकाल में स्थिर लागतों में परिवर्तन से उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। उदाहरणार्थ, ऐसी फर्म पर एकमुश्त (Iumpsum) कर लगाने से उसकी कीमत और उत्पादन प्रभावित नहीं होंगे।

बल्कि यह एकमुश्त कर का सारा भार उठा लेगी। परन्तु बोमल यह बल देकर कहते है कि यदि एकमुश्त कर लगाने से स्थिर लागतें अल्पकाल में बढ़ती हैं तो विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढ़ाएगी और उत्पादन कम कर देगी। इसे चित्र में समझाया

गया है जहां TP फर्म का कुल लाभ वक्र है। न्यूनतम लाभ प्रतिबंध रेखा

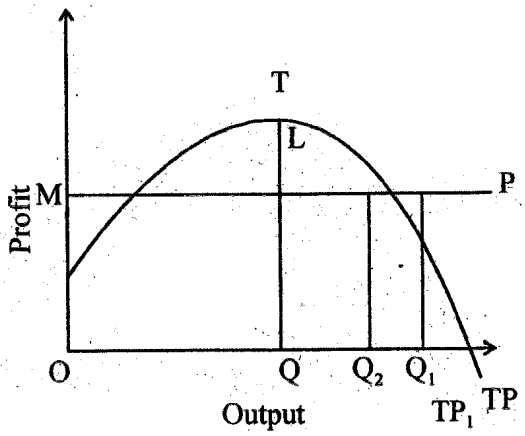

MP है जो यह व्यक्त करती है कि OQ_1 उत्पादन बेचकर फर्म को न्यूनतम लाभ OM अवश्य चाहिए। मान लीजिए कि सरकार LT राशि के बराबर फर्म पर एकमुश्त कर लगाती है, जिससे इसका लाभ वक्र TP नीचे की ओर

TP_1 पर चला जाता है और फर्म अपना उत्पादन OQ_1 से कम कर OQ_2 कर देती है। फर्म अपनी वस्तु की कीमत बढ़ा देगी और

RIL-082

कर को उपभोक्ताओं को हस्तांतरित कर देगी लेकिन एकमुश्त कर के कारण स्थिर लागतें बढ़ने से लाभ अधिकतमकरण उत्पादन OQ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

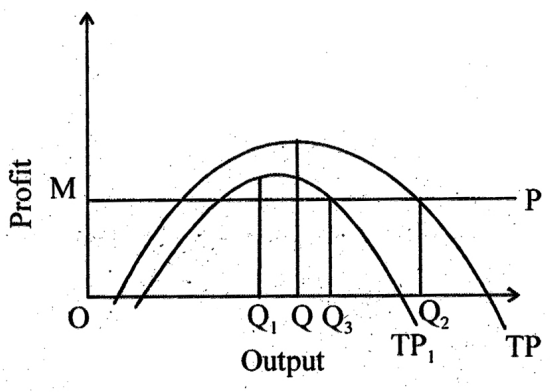

दूसरी ओर, बिक्री कर जैसा विशिष्ट कर (specific tax) लगाने से लाभ वक्र नीचे बाईं ओर शिफ्ट कर जाएगा,

जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। लाभ प्रतिबंध रेखा MP दी होने पर विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने उत्पादन को OQ_2 से कम कर OQ_3 कर देगी। यह कीमत बढ़ा देगी और कर को उपभोक्ताओं को हस्तांतरित कर देगी। लाभ-अधिकतमकरण फर्म भी अपने उत्पादन को OQ से कम करके OQ_1 कर देगी और उसकी कीमत बढ़ा देगी। परन्तु विक्रय अधिकतमकरण फर्म के उत्पादन में कमी लाभ-अधिकतमकरण फर्म की अपेक्षा अधिक होगी, $Q_2Q_3 > QQ_1$।

7.3.3. बहु वस्तु मॉडल (Model with Multiproducts)—

बॉमल ने दर्शाया है कि जहां फर्मे बहुत वस्तुएं उत्पादित करती हैं, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अलाभदायक आगतों और निर्गतों से बच सकती है। इसे चित्र में व्यक्त किया गया है, जहां वस्तु X को क्षैतिज अक्ष पर और वस्तु Y को अनुलम्ब अक्ष पर मापा गया है। PP_1 वक्र X और Y के सभी

संयोनें को व्यक्त करता है जो एक स्थिर व्यय अथवा कुल लागतों से उत्पादित की जा सकती है। वक्र R_1, R_2 और R_3 सम-आगम वक्र हैं जो प्रत्येक वक्र पर X और Y के

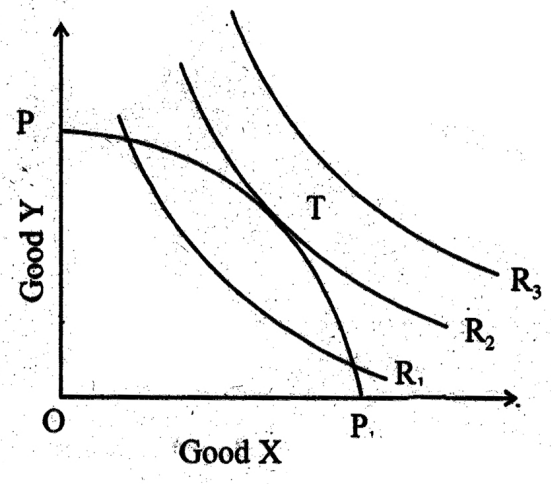

सभी संयोगों से एक स्थिर आगम देते हैं। PP_1 और R_2 वक्रों का स्पर्श बिन्दु T लाभ अधिकतमकरण का बिन्दु है। यही आगम अधिकतमकरण का बिन्दु है क्योंकि यह उच्चतम प्राप्य सम-आगम वक्र R_2 पर स्थित है जो PP_1 द्वारा व्यक्त किये हुए व्यय के साथ मेल खाता है। इस प्रकार, दोनों प्रकार की फर्में एक ही परिणाम देती हैं जब वे एक जैसी आगतें समान मात्राओं में प्रयोग करती हैं और उन्हें बिल्कुल एक जैसे ही ढंग से नियुक्त करती हैं।

लेकिन बॉमल के अनुसार, विक्रय अधिकतमकरण फर्म अपने आगम को बढ़ाने के लिए लाभों के अधिकतम स्तर और लाभों के न्यूनतम स्तर (अर्थात् लाभ प्रतिबंध) के बीच अन्तर को "त्यागने-योग्य लाभों का फंड" कहता है। "अतः प्रत्येक समय फर्म अपने कुल आगम को बढ़ाने के लिए किसी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाती है, तो फर्म को त्यागने-योग्य लाभों की अपनी निधियों को अधिक मात्रा में इस्तेमाल करना आवश्यक होता है। इस त्यागने-योग्य लाभों के फंड को विभिन्न निर्मातों, बाजारों, आगतों आदि के बीच इस तरह अवश्य आवंटित किया जाना चाहिए, जिससे कुल डॉलर विक्रय अधिकतम होते हैं। यह संबंध संकेत करता है कि विक्रय

RL-082

अधिकतमकरण फर्म में भी सापेक्षतया अलाभदायक आगतों और निगतों से बचना चाहिए, चाहे कुल व्यय और कुल आगम का स्तर कुछ भी हो।''

7.4 कमियाँ

बॉमल के विक्रय-अधिकतमकरण मॉडल की कुछ कमियां हैं :-

1. **रोसनबर्ग (Rosenberg)** ने बॉमल द्वारा विक्रय अधिकतम के लिए लाभ प्रतिबन्ध की आलोचना की है। रोसनबर्ग ने सिद्ध किया है कि एक फर्म

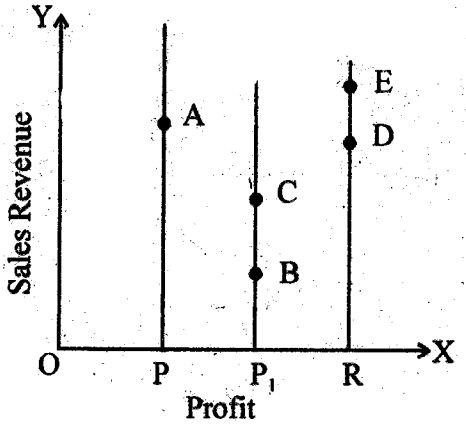

के लाभ प्रतिबन्ध को निश्चित रूप से दिखाना कठिन है। इसे रोसनबर्ग के कुछ परिवर्तित चित्र द्वारा दिखाया है। अनुलम्ब अक्ष पर लाभ लिए गए हैं। R लाभ प्रतिबन्ध है। लाभ प्रतिबन्ध से नीचे कोई भी दो संयोगों में से अधिक लाभ वाला चुना जाएगा। उदाहरण के तौर पर, लाभ स्तर P पर A की अपेक्षा लाभ स्तर P_1 पर B को अधिमान दिया जाएगा। फिर, एक ही लाभ रेखा P_1 पर दो संयोगों B और C में से B की अपेक्षा C को अधिमान दिया जाएगा क्योंकि C पर बिक्री अधिक होती है। इसी प्रकार, प्रतिबन्ध रेखा R पर D तथा E बिन्दुओं में से E को D की अपेक्षा अधिमान दिया जाएगा जो अधिक बिक्री का स्तर है। अतः बॉमल के मॉडल में विक्रय अधिकतम तथा न्यूनतम लाभ संयोग को चुनना बहुत कठिन है। जब तक लाभ प्रतिबन्ध

RIL-082

से अधिक होते है वे सदैव बिक्री को बढ़ाने के लिए विज्ञापन पर खर्च कर दिये जाएँगे।

2. **शेफर्ड (Shepherd)** के अनुसार एक अल्पाधिकार फर्म को किंकित मांगवक्र का सामना करना पड़ता है। यदि किंक काफी बड़ा हो तो कुल आगम और लाभ एक ही उत्पादन स्तर पर अधिकतम होंगे। इसलिए, विक्रय अधिकतम करने वाली और लाभ अधिकतम करने वाली दोनों फर्में उत्पादन के भिन्न स्तरों पर उत्पादित नहीं कर रही होंगी। परन्तु हाकिन्स ने दर्शाया है कि यदि फर्म किसी भी प्रकार की गैर-कीमत प्रतियोगिता जैसे अच्छी पैकिंग, फ्री-सर्विस, विज्ञापन, आदि में व्यस्त होती है तो शेफर्ड के निष्कर्ष अमान्य हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब विक्रय-अधिकतमकरण फर्म विज्ञापन पर अधिक खर्च करती है, तो उसका उत्पादन लाभ-अधिकतमकरण फर्म से अधिक होगा। ऐसा इसलिए कि विक्रय-अधिकतमकरण फर्म के मांग वक्र का किंक लाभ-अधिकतमकरण फर्म के किंक की दाईं ओर होगा।

3. **हाकिन्स** ने यह दर्शाया है कि बॉमल का निष्कर्ष कि एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता एक लाभ अधिकतमकर्त्ता से सामान्तया अधिक उत्पादित और विज्ञापित करेगा, अमान्य है। हाकिन्स के अनुसार, एक विक्रय अधिकतमकर्त्ता अधिक, कम या समान उत्पादन और अधिक, कम अथवा समान विज्ञापन बजट चुन सकता है। यह कीमत कटौतियों पर निर्भर न होकर मांग की विज्ञापन के साथ अनुक्रियाशीलता (responsiveness) पर निर्भर करता है। यह निष्कर्ष फर्मों द्वारा केवल एक वस्तु अथवा वस्तुओं के एक ग्रुप के उत्पादन के लिए है।

4. बहु-वस्तुओं के लिए, बॉमल तर्क देता है कि आगम और लाभ अधिकतमकरण के समान परिणाम होते हैं। परन्तु विलियमसन

ने यह दर्शाया है कि विक्रय अधिकतमकरण के लाभ अधिकतमकरण से परिणाम भिन्न होते हैं।

5. बॉमल के मॉडल की एक अन्य त्रुटि यह है कि यह अल्पाधिकारी फर्मों की कीमतों की परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करता है।

6. **कोटसियानिस** के अनुसार, बॉमल का यह मॉडल अवलोकित बाजार अवस्थाओं, जिनमें कीमत को काफी समय अवधियों के लिए बेलोच मांग की रेंज में रखा जाता है, की व्याख्या करने में सफल होता है।

7. यह मॉडल न केवल वास्तविक प्रतियोगिता बल्कि विरोधी अल्पाधिकारात्मक फर्मों से संभावित प्रतियोगिता के भय की उपेक्षा करता है।

8. कोटसियानिस के अनुसार, मॉडल यह नहीं दर्शाता है कि एक उद्योग जिसमें सभी फर्में विक्रय अधिकतमकर्ता हैं, कैसे संतुलन प्राप्त करेगा। बोमल फर्म और उद्योग के बीच संबंध स्थापित नहीं करता है।

इन कमियों के बावजूद , इसमें कोई संशय नहीं कि विक्रय अधिकतमकरण आधुनिक व्यवसायिक विश्व में फर्मों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

7.5 सारांश

किसी फर्म का संचालन अनेक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है, जिनमें लाभ अधिकतमकरण एवं विक्रय अधिकतमकरण प्रमुख सिद्धान्त के रूप में जाने जाते हैं। ये सिद्धान्त अनेक मान्यताओं पर आधारित हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभ अधिकतमकरण की स्थिति में औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र समान होते हैं। इसी प्रकार एकाधिकार की स्थिति में MR = MC होता है। बॉमल ने अमेरिका में फर्मों की जांच में पाया कि वे विक्रय अधिकतमीकरण से सम्बन्धित अनेक माडलों का प्रयोग करते हैं जिसमें एकल वस्तु का मॉडल, विज्ञापन के साथ

RIL-082

मॉडल, स्थिर लागतों के साथ मॉडल तथा बहु-वस्तु मॉडल
बामल द्वारा प्रस्तुत मॉडल में भी अनेक कमियाँ पायी जाती

7.6 बोध प्रश्न

1. लाभ अधिकतमकरण से आप क्या समझते हैं तथा इस
   मान्यताएँ बताइये।
2. पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार में लाभ अधिकतमकरण
   समझाइये।
3. बॉमल का विक्रय अधिकतमकरण सिद्धान्त को बताइये।

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- शर्मा एम0एल, प्रबंधकीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आग
  2004
- पन्त जे0सी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा 20
- जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन
  आगरा, 2005
- Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S. Chand & Company L
  2001.
- एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेश
  प्रा0 लि0, 1947

M.Com-106/108
RIL-082

खण्ड

2

उत्पादन फलन

इकाई -1 उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियम	5
इकाई -2 न्यूनतम लागत संयोग	19
इकाई -3 लागत के सिद्धान्त (Cost Concepts)	28
इकाई -4 लागत वर्गीकरण (Cost Classification)	34
इकाई -5 अनुमाप की मितव्ययिता और अमितव्ययिता	46
इकाई -6 लागत प्रतिफल सम्बन्ध	54

RIL-082

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 नागेन्द्र यादव,	एसोसिएट प्रोफेसर, प्रबन्धन अध्ययन विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड- 2 परिचय

इस खण्ड में उत्पादन फलन की व्याख्या कुल छः इकाइयों के द्वारा की गयी है। प्रथम इकाई में उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियमों की व्याख्या की गयी है। प्रतिफल के नियमों को पैमाने के स्थिर प्रतिफल, वृद्धिमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के द्वारा समझाया गया है।

द्वितीय इकाई में न्यूनतम लागत संयोग को लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन एवं दो पदार्थों के अनुकूलतम संयोग के द्वारा समझाया गया है।

तृतीय इकई में लागत के विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है तथा इसमें उत्पादन मात्रा एवं लागतें, उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें तथा तकनीक एवं लागतों के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ इकाई में लागतों के विभिन्न प्रकारों को लागत के वर्गीकरण के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है।

पंचम इकाई में अनुमान की मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता की चर्चा की गयी है। जबकि षष्ठम इकाई में लागत प्रतिफल सम्बन्धों को स्थिर लागत एवं उत्पादन, कुल लागत एवं उत्पादन जैसे लघुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्धों के द्वारा तथा दीर्घकालीन लागत उत्पादन सम्बंधों को तथा इसके मूल्यांकन को लेखा विधि, अभिव्यान्त्रिक विधि एवं इकोनोमेट्रिक विधि के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है।

RIL-082

इकाई –01 उत्पादन फलन एवं प्रतिफल के नियम

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आइसोक्वाण्ट

1.3 उत्पादन फलन

1.4 प्रतिफल के नियम

1.4.1 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

1.4.2 पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल

1.4.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्न

1.7 अन्य चयनित पाठन

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के पठन के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होंगे –

– उत्पाद फलन के विभिन्न कारकों को समझने में,

– आइसोक्वाण्ट के द्वारा विभिन्न संयोजनों के परीक्षण में

– प्रतिफल के विभिन्न नियमों का विश्लेषण करने में

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

उत्पाद फलन किसी भी फर्म के द्वारा उत्पाद एवं सेवाओं के उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाली लागत निर्ण लेने की क्षमता के लिए महत्वपूर्ण घटक होते हैं। कुल लागत एवं कुल आय मिलाकर एक फर्म के लाभ को सुनिश्चित करते हैं। अपने लाभांश को बनाने के लिए कोई भी फर्म उत्पादन में आने वाली लागत को कम करना चाहती है तथा अपनी आय को बढ़ाना चाहती है। इस दशा को पाने के लिए प्रबन्धक सबसे अनुकूलतम स्तर तक उत्पादन करना चाहते हैं उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास करते हैं, न्यूनतम लागत संयोजन

के घटकों का प्रयोग करते हैं तथा संगठन की प्रभाविकता को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। यदि किसी उत्पाद को बढ़ाने में कोई अतिरिक्त लागत नहीं आती है तो फर्म अपने उत्पादन की वृद्धि करके सदैव ही लाभ उठाना चाहेगी। परन्तु यदि लागत निषेधकारी है अर्थात दाम इतने ऊँचे हैं कि वस्तु खरीदी ही न जा सके तो उत्पादन करना लाभकारी नहीं समझेगी। इसी प्रकार अन्य परिस्थितियों में भी उत्पादन की लागत, उत्पाद के अन्य घटकों पर निर्भर करेगी।

यह उत्पादन की लागत ही होती है जो किसी उत्पाद के मूल्य को निर्धारित करने का आधार देती है। उत्पादन की लागत के द्वारा ही कोई उत्पादक अपने संभावित उपभोक्ताओं के क्रय शक्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण कर उनके अनुसार उत्पाद की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति को बना सकता है। इस प्रकार की स्थितियों के लिए कोई सीध प्रक्रिया एवं नियम नहीं है अपितु हमें लागत के सिद्धान्तों के तथा उत्पादन के फलन को जानने की आवश्यकता होगी। आइये हम पहले उत्पादन के फलन को जानने का प्रयास करते हैं।

कोई उत्पादन फलन किसी वस्तु के उत्पादन एवं लागत के मध्य तकनीकी एंव अभियांत्रिक सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है अर्थात किसी वस्तु के उत्पादन के घटकों एवं लागत के घटकों पर तकनीकी एवं अभियांत्रिक कारकों का क्या प्रभाव हो सकता है जो कि उत्पादन की लागत एवं कम्पनी के लाभांश को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ परम्परागत आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के चार प्रमुख लागत घटक होते हैं: भूमि, श्रम, पूँजी एवं संगठन या प्रबन्धन। साथ ही तकनीक भी उत्पादन के वृद्धि को प्रभावित करती है और इसके उत्पादन का अतिरिक्त निर्धारक कहा गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी कम्पनी या उद्योग का उत्पादन भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्धन एवं तकनीकी स्तर के मात्राओं का एक धनात्मक फलन है जो कि उत्पादन की प्रक्रिया में लगाया जाता है। इस को हम निम्न समीकरण के द्वारा समझ सकते हैं ।

$$X = f\ (Ld\ L\ K\ M\ T)$$

$$f_1, f_2, f_3, f_4, > 0$$

जहाँ $X =$ किसी वस्तु X का उत्पादन (output)

$Ld =$ X के उत्पादन में लगी भूमि

$L =$ X के उत्पादन में लगा श्रम

K = X के उत्पादन में लगी पूँजी

M = X के उत्पादन में लगा प्रबन्धन

T = X के उत्पादन में लगी तकनीकी

f = अनुल्लिखित फलन (Unspecified function)

f_1 = f के सापेक्ष 1 के स्वतंत्र घटक का आंशिक फलन

उपर्युक्त फलन एक साधारण उत्पादन फलन को दर्शाता है। किसी विशेष परिस्थिति में एक अथवा एक से अधिक लागत का गुणांक इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है एवं एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद के सापेक्ष लागत के विभिन्न गुणांक को अथवा अवयवों को महत्व भिन्न होता हैं। उदाहरणार्थ कृषि योग्य उत्पादन में भूमि अधिक होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है जबकि किसी उत्पाद के निर्माण में भूमि का होना एक कम आवश्यकता का विषय होता है। इसी प्रकार खाद्य फसलों के उत्पादन में यदि अच्छी गुणवत्ता का खाद एवं बीजों का प्रयोग करें तो उत्पादन को बढ़ाया जा सकता हैं परन्तु एक सीमा के पश्चात हमें भूमि को अधिक आवश्यकता होगी जिससे कि उक्त सीमा के बाद भी अधिक अन्न का उत्पादन किया जा सके। इसी के सापेक्ष यदि हम किसी अन्य वस्तु उदाहरणार्थ कार, साइकिल की उत्पादन को बढ़ाना चाहें तो हमें उत्पादन के अनुपात में अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता नहीं होगी वरन अच्छी तकनीकि, अधिक श्रम आदि की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि हम उपर्युक्त उदाहरणों में उत्पादन लागत (Cost of Production) में भूमि की भूमिका देखें तो फसलों की उत्पादन वृद्धि में भूमि की लागत को अधिक बढ़ाएगी जबकि कार अथवा मोटर साइकिल के अधिक उत्पादन में भूमि की लागत, कुल उत्पादन लागत (Cost of Production) को कम प्रभावित करेगी। इसी प्रकार कार एवं मोटर साइकिल के उत्पादन में तकनीकी एवं प्रबन्धन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती हैं। यदि हम उत्पादन के निर्णय की समस्याओं की व्याख्या करें तो उत्पादन के लिए केवल दो लागत को लेकर समझना आसान होगा। यदि श्रम एवं पूँजी दो महत्वपूर्ण लागत संघटक में तो उत्पादन फलन निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$X = f(L K)$$

उपर्युक्त फलन में मुख्यतः 3 घटक हैं : वस्तु का उत्पादन (Output of commodity) X, श्रम की इकाइयॉ (L) तथा पूँजी की इकाइयां (K) x को किसी दिये गये मूल्य पर L (श्रम) एवं K (पूंजी) के विभिन्न वैकल्पिक

आयोजन हो सकते हैं। L एवं K के संयोजन x से भिन्न होंगे। साधारणतया श्रम एवं पूँजी दोनों ही किसी वस्तु के उत्पादन में महत्वपूर्ण होते हैं। तथा एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। इस प्रकार कोई भी उत्पादक दोनों ही लागत घटकों को उत्पादन हेतु खरीदेगा या भाड़े पर लेना एवं उनको विभिन्न सम्भावित संयोजकों में से एक संयोजन के रूप प्रयोग करेंगा। वैकल्पिक संयोजनों के घटकों का प्रयोग किसी उत्पादन के स्तर पर करने पर इस प्रकार होता है कि यदि एक लागत घटक (Input factor) का प्रयोग बढ़ता है तो दूसरे लागत धटक (input factor) का प्रयोग कम हो जाता है। यदि हम इसका एक उदाहरण लेना चाहें तो यदि कोई व्यवसायी जूते बनवाना चाहता है तो उसे मोची (Cobber), चमड़ा, धागा, सिलाई यन्त्र, इत्यादि एवं कुछ पूँजी की आवश्यकता होगी। किसी एक दी गयी मात्रा मे जूते बनवाने के लिए उपर्युक्त उल्लिखित लागत घटक, श्रमिक (मोर्चा), सामान (चमड़ा, सिलाई यन्त्र आदि) एवं पूँजी को विभिन्न संयोजन में प्रयोग करना होगा जो कि एक सीमा तक एक दूसरे से स्थानापन्न हैं। उदाहरणार्थ यदि एक मोची के पास बहुत से सीमित एवं अप्रभावी सिलाई संयंत्र हो तो एक दिन वह मोची मुश्किल से एक जोड़ी जूता बना पायेगा जबकि दूसरा मोची जिसके पास अधिक प्रभावी एवं अच्छे संयंत्र हो तो वह दो जोड़ी या अधिक जूतों की जोड़ी बना सकता है। निम्न तालिका में हम श्रम एवं पूंजी के विभिन्न वैकल्पिक संयोजनों को एक दिन में बने जूतों की संख्या के द्वारा समझने का प्रयत्न करेंगें।

लागत उत्पादन सम्बन्ध (Input-Output relationship)

X=2		X = 5		X =9		X=12		X=14	
L	K	L	K	L	K	L	K	L	K
1	20	2	20	3	20	4	20	5	20
2	12	3	14	4	13	5	15	6	17
3	8	4	10	5	10	6	12	7	15
4	6	5	7	6	8	7	10	8	13
5	4	6	5	7	6	8	8	9	11
6	3	7	4	8	5	9	7	10	10

1.3 आइसोक्वाण्ट (Isoquant)

'एक आइसोक्वाण्ट परिभाषा के रूप में वह स्थित है जहाँ श्रम एवं पूँजी के सभी संयोजन समान उत्पादन को दर्शाते हैं। उपर्युक्त दी गयी तालिका के उदाहरण में व्यापारी 1 मोची एवं 20 इकाई पूंजी को लगा सकता है, 2 मोची 12 इकाई पूंजी लगा सकता है, 3 मोची तथा 8 इकाई पूंजी को लगा सकता है। अथवा 6 मोची एवं 3 इकाई पूंजी को 2 जोड़ी जूते बनाने में लगा सकता है। इसी प्रकार जब व्यापारी का उद्देश्य 5 जोड़ी जूते बनाने का है तो 2 मोची तथा 20 इकाई पूंजी लगाता है या 3 मोची 14 इकाई पूंजी लगाता हैं । यदि तालिका में दिये गये संयोजनों को इस वक्र अथवा ग्राफ के द्वारा समझें तो हमें आइसोक्वाण्ट वक्र प्राप्त होंगें।

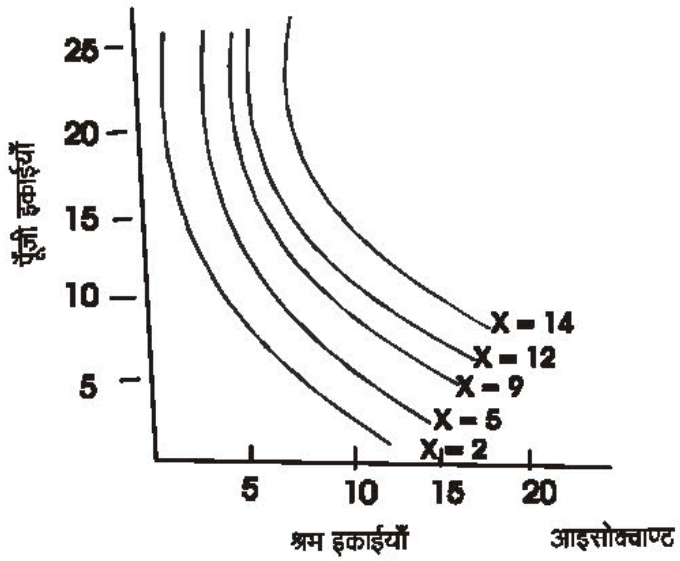

चित्र – 1 आइसोक्वाण्ट

आइसोक्वाण्ट या आइसो प्रोडक्ट के परिवार के वक्र श्रम एवं पूंजी के सभी सम्भावित संयोजनों को बनाते हैं जिनका प्रयोग किसी वस्तु के विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादित करने में किया जा सकता है। इस प्रकार से ये उत्पादन फलन के ज्यामितीय रेखांकन को प्रदर्शित करते हैं। उपर्युक्त वक्र का तालिका में दिये गये उदाहरण की सहायता से यदि हम अध्ययन करेंगे तो हमें ज्ञात होगा कि –

(क) ये वक्र गिर रहे हैं ।

(ख) आइसोक्वाण्ट जितना उच्च होगा उतना ही उत्पादन (output) भी उच्च होगा।

(ग) ये वक्र आपस में एक दूसरे को काटते नहीं हैं।

एक आइसोक्वाण्ट वक्र गिर रहा है क्योंकि न तो यह बढ़ रहा है और न ही स्थिर अथवा अटल होता है। एक ऊपर बढ़ते हुए आइसोक्वाण्ट का तात्पर्य ये है कि लागत के तत्व उदाहरणार्थ श्रम एवं पूंजी के बढ़ने पर आउटपुट बढ़ता नहीं है जो कि वास्तविक रूप से सत्य नहीं होता है। एक क्षैतिज (Horizontal) अथवा स्तम्भ (Vertical) आइसोक्वाण्ट का तात्पर्य यह होता है कि उत्पादन (output) किसी भी एक लागत (input) मे किये गये बदलाव से प्रभावित नहीं होता है जबकि अन्य लागत (input) तत्व समान रहें। ये भी सत्य नहीं हो सकता है क्योंकि लागत (input) के किसी भी एक अवयव में वृद्धि करने से उत्पादन (output) में वृद्धि अवश्य ही होती है जबकि अन्य लागत अवयव (Input factors) समान हों। इसी कारण से उच्चतर आइसोक्वाण्ट उच्च उत्पादन (Output) स्तर को दर्शाते है।

एक आइसोक्वाण्ट दूसरे आइसोक्वाण्ट को परस्पर नहीं काटता है। चूँकि यदि ऐसा होता तो इसका तात्पर्य यह होता कि समान लागत अवयवों के प्रयोग से दो भिन्न उत्पादन स्तर प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु यह संभव नहीं हैं।

आइसोक्वाण्ट वक्र नीचे से उत्तल होते है क्योंकि श्रम का पूंजी से स्थानापन्न करना अत्यन्त ही कठिन होता है। चूँकि अधिक श्रम के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। हमारे द्वारा पूर्व में लिए गये उदाहरण में आइसोक्वाण्ट x=2 पर ये नीचे से उत्तल है क्योंकि जब श्रम को 1 से 2 बढ़ा दिया गया है तब पूँजी इकाई 20 से घटकर 12 इकाई रह गयी है।। अर्थात 8 इकाई पूंजी की गिरावट होती है। पुनः जब श्रम इकाईयों को बढ़ाकर 3 यूनिट कर दिया गया है तब पुनः पूंजी इकाई घटकर 8 हो जाती है अर्थात 4 और पूंजी की गिरावट होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानापन्न की दर 1 इकाई श्रम पर 8 इकाई पूंजी की है तथा बाद में अगली 1 इकाई श्रम पर यह 4 इकाई पूंजी की है। यह इसलिए है क्योंकि स्थानापन्न होने में बहुत ही ज्यादा कठिनाई होती है।

यदि श्रम एवं पूंजी पूर्ण रूप से एक दूसरे के स्थानापन्न होते तो आइसोक्वाण्ट वक्र सीधी रेखाओं के रूप में नीचे गिरते हुए प्रतीत होते।

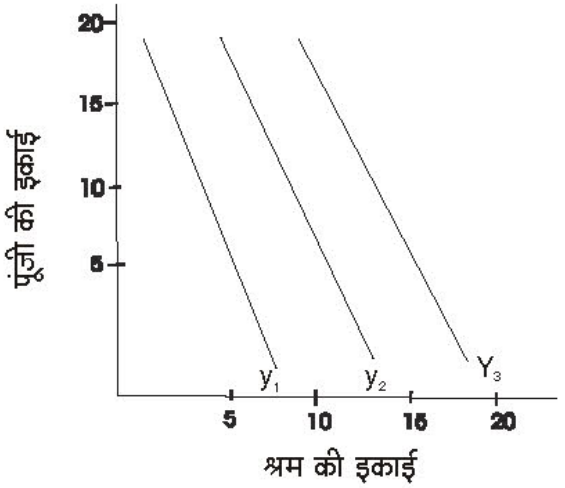

चित्र – 2 पूर्ण स्थानापन्न की स्थिति में आइसोक्वाण्ट

(Isoquants when factors are perfect substitute)

यदि हम इसके दूसरी ओर देखें तो यदि उत्पादन के एक लागत घटक (Input factor) को दूसरे लागत घटक (Input factor) से स्थानापन्न नहीं कर पाते हैं तो आइसोक्वाण्ट आयताकार रूप में प्रदर्शित होता हैं ।

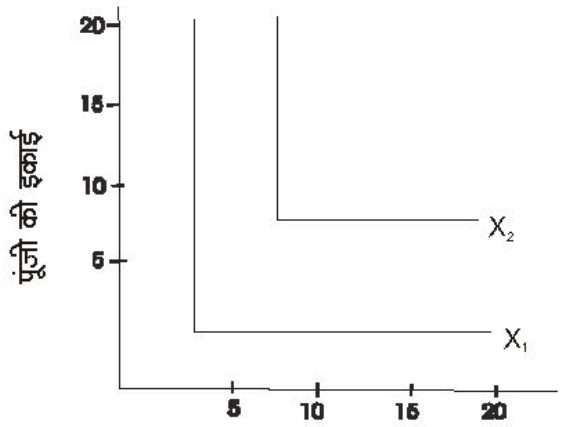

चित्र – 3 घटकों के पूर्ण स्थानापन्न न होने की स्थिति में आइसोक्वाण्ट

(Isoquants when factors are perfect non substitute)

चूँकि श्रम एवं पूंजी पूर्णरूप से स्थानापन्न (Substitute) नहीं हैं तथा उनको स्थानापन्न करने की क्षमता भी अधिक से अधिक मुश्किल हो जाती है। अत : आइसोक्वाण्ट नीचे से समतल है अतः आयताकार रूप में होते हैं।

1.3 उत्पादन फलन (Production function) का प्रबन्धकीय उपयोग

उत्पादन फलन के विभिन्न प्रबन्धकीय उपयोग हैं। इनका प्रयोग किसी दिये हुए आउटपुट पर हम न्यूनतम लागत संयोजन (Least cost combination) को जानने में कर सकते हैं जिनका अध्ययन हम आगे की

इकाइयों में करेंगे। इसके अतिरिक्त हम किसी दी गयी लागत पर अधिकतम उत्पादन लागत संयोजन (Maximum output-input combination) को जानने में भी कर सकते हैं। उत्पादन फलन के द्वारा विभिन्न लागत संघटकों के संभाव्य संयोजनों के प्रयोग से निर्णय क्षमता को बढ़ाने में प्रयोग किया जा सकता है। उत्पादन फलन के कम होने पर हम उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत किस लागत घटक (input factor) जो परिवर्तनशील हो, को सही रूप से उपयोग करने में सक्षम हो सकते है।। वास्तव में उत्पादन फलन एक महत्वपूर्ण निर्णय क्षमता का आधार होता है। आय के बढ़ने पर घटने पर, अटल रहने पर परिवर्तनशील लागत घटकों (Variable input factors) को प्रयोग करने की क्षमता को उत्पादन फलन के द्वारा जाना जा सकता हैं।

1.4 प्रतिफल के नियम (Returns to scale)

पिछले बिन्दुओं के अन्तर्गत हमने आइसोक्वाण्ट का अध्ययन किया जो कि विश्लेषण एक महत्वपूर्ण यन्त्र है। अब हम प्रतिफल के नियमों को जानने का प्रयास करेंगे। प्रतिफल के नियम किसी लागत (Input)में होने वाले अनुपातिक एवं युगपत (Proportional and simultaneous) परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन (output) में आये बदलाव की व्याख्या करता है। लागत (input) में अनुपातिक एवं युगपत वृद्धि वास्तविकता में उत्पादन (Production) स्तर की वृद्धि का द्योतक होता है।

जब कोई फर्म अपने स्तर में वृद्धि करती है अर्थात यह अपने दोनों लागतों को अनुपातिक रूप में वृद्धि करती है तो निम्न तीन तकनीकि सम्भावनाएं हो सकती हैं।

1. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात से अधिक बढ़ जाएगी।
2. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात में बढ़ेगी।
3. कुल उत्पादन मात्रा अनुपात से कम बढ़ेगी।

इसी प्रकार निम्न तीन प्रकार के प्रतिफल हो सकते हैं ।

1. पैमाने के स्थिर अथवा समान प्रतिफल (Constant Returns to scale)
2. पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल (Increasing Returns to scale)
3. पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to scale)

जब किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयोग होने वाले सभी साधनों को बढ़ाया जाए तो इसका उत्पादन पर क्या प्रभाव पडता है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर हो सकते हैं, वृद्धिमान हो सकते हैं अथवा ह्रासमान भी हो सकते हैं। यदि सभी साधनों को एक विशेष अनुपात में बढ़ाया जाता हो तथा परिणाम स्वरूप उत्पादन भी उसी अनुपात से ही बढ़े तो पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होंगे। अतः यदि सभी साधनों को दोगुना करने से उत्पादन भी दुगुना हो जाता है पैमाने के प्रतिफल स्थिर होंगे परन्तु यदि सभी साधनों के बढ़ने से उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल प्राप्त होंगे। अतः यदि सभी साधनों की मात्रा को दुगना किया जाता है तथा फलस्वरूप उत्पादन दुगने से अधिक बढ़ता है तो पैमाने के प्रतिफल वृद्धिमान होंगे। इसके विपरीत यदि सभी साधनों की मात्रा को बढ़ाने से उत्पादन में अनुपात से कम वृद्धि होती हैं तो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होंगे।

1.5.1 पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Return to Scale)

समोत्पाद चित्र से यह पता चलता है कि क्या पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं वर्धमान हैं अथवा ह्रासमान हैं यदि विभिन्न समोत्पाद वक्र जो उत्पादन के समान वृद्धि को दर्शाते हैं एक दूसरे के समान दूरी पर स्थित हों तो इसका अर्थ होता है कि पैमाने का प्रतिफल स्थिर है, जैसा कि रेखाचित्र में दिखाया गया है। इस दशा में सीधी रेखाएं जो मूल बिन्दु 0 से खींची जाएं तो उन पर समुत्पाद वक्रों के बीच का अन्तर समान होगा।

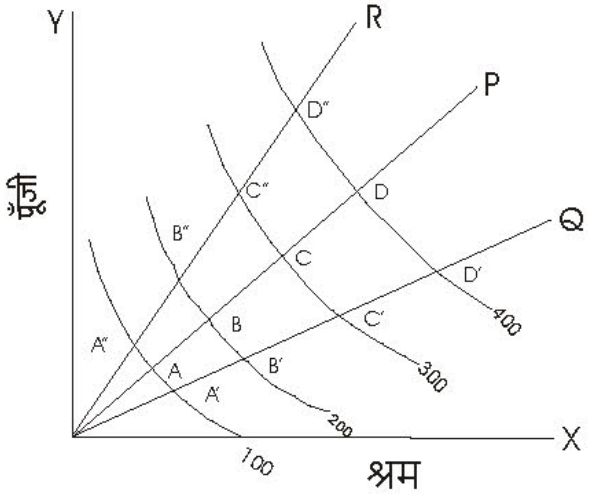

चित्र – 4 पैमाने के स्थिर प्रतिफल

रेखाचित्र में तीन सीधी रेखाएं OP, OR, OQ मूल बिन्दु 0 से निकलती हुई खीची गयी हैं। पैमाने के लिए स्थिर प्रतिफल की दशायें रेखा OP पर OA = AB = BC = CD, रेखा OQ पर OA′ = A′B′ = B′C′ = C′D′ तथा रेखा OR पर OA″ = A″B″ = B″C″ = C″D″ विभिन्न समोत्पाद वक्रों के बीच की

दूरी का समान होना यह बताता है कि साधनों को एक अनुपात में बढ़ाने से उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है। अतः रेखाचित्र पैमाने के स्थिर प्रतिफल को दर्शाती है। कई अर्थशास्त्रियों के मतानुसार उत्पदन फलन अनिवार्य रूप से पैमाने के स्थिर प्रतिफल के प्रकार का होता है। उनका तर्क है कि यदि सभी साधनों की मात्राओं को दोगुना कर दिया जाए तो कोई कारण नहीं कि उत्पादन दुगना न हो। यदि हम तीन समान प्रकार की फैक्ट्रियॉ बनाएं जिनमें समान पूंजी, साज समान, कच्चा माल तथा श्रमिक लगे हों तो क्या वे समान प्रकार की एक फैक्ट्री की तुलना में तीन गुना उत्पादन नहीं करेगी? इस प्रकार के विचार वाले अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि सभी साधनों को आवश्यक भाग में बढ़ाना अथवा घटाना सम्भव होता तो तब अवश्य ही पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते। उनका कहना है कि कुछ उद्योगों में यदि पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त नहीं होते तो इसका कारण उसमें प्रयोग होने वाले कुछ साधनों के समान अनुपात से बढ़ाया घटाया नहीं जा सकता। वे साधनों की मात्राओं के समान अनुपात से परिवर्तन न कर सकने के दो कारण बताते हैं।

प्रथम, कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनकी मात्रा इसलिए नहीं बढ़ायी जा सकती क्योंकि उनकी पूर्ति न्यून अथवा दुर्लभ होती है। अतः पैमान के स्थिर प्रतिफल प्राप्त न होने का प्रथम कारण साधनों की दुर्लभता है।

दूसरे, यह बताया जाता है कि कुछ साधन अविभाज्य होते हैं तथा उनका पूर्ण उपयोग तभी संभव होता है जब उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाय। अविभाज्यता के कारण उनको वस्तु की कम मात्रा उत्पादित करने के लिए भी प्रयोग करना पड़ता है। इसलिए जब आरम्भ में उत्पादन बढ़ाया जाता है तो इन अविभाज्य साधनों की मात्रा को बढ़ाया नहीं जाता क्योंकि उनका पहले पूर्ण उपयोग नहीं हो रहा होता है। अतः उत्पादन बढ़ाने पर अविभाज्य साधनों के अधिक गहन एवं पूर्णरूप से प्रयोग होने से परिवर्तनशीलत साधनों से वर्धमान प्रतिफल प्राप्त होता है। साधनों की अविभाज्यताएं बढ़े पैमाने के उत्पादन की अधिकांश बचतों की उत्पत्ति का कारण है। अतः स्पष्ट है कि कई साधनों के अविभाज्य होने के कारण उनकी मात्रा को आवश्यक अनुपात से बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता है। अतः इस मतानुसार यदि कुछ साधनों की पूर्ति सीमित या न्यून न होती और न ही साधन अविभाज्य होते तो तब सभी साधनों को समान मात्रा से बढ़ाया जा सकना सम्भव होता और फलस्वरूप पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते।

1.5.2 पैमाने के वर्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

पैमाने के वर्धमान (बढ़ते) प्रतिफल का अर्थ है कि साधन में वृद्धि की तुलना में उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है। उदाहरणतः यदि सभी साधनों में 25 प्रतिशत वृद्धि कर दी जाए तथा इसके परिणामस्वरूप उत्पादन 40 प्रतिशत बढ़ जाए तो यह पैमाने के वर्धमान प्रतिफल की दशा होगी। बढ़ते प्रतिफल के दो कारण हो सकते हैं – प्रथम पैमाना बढ़ाने पर श्रमिकों में अधि क विशेषीकरण हो सकते हैं – प्रथम पैमाना बढ़ाने पर श्रमिकों में अधिक विशेषीकरण या श्रम विभाजन सम्भव होता है जिससे श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ जाती है। द्वितीय उत्पादन के बढ़े पैमाने पर तकनीकी दृष्टि से अधिक उन्नत तथा विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग करना सम्भव एवं लाभकारी हो जाता है जिससे उत्पादन में अधिक वृद्धि की दर प्राप्त होती है। यदि उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाज्य भी होते तो भी पैमाने वृद्धि दर पर प्राप्त होते हैं, क्योंकि फर्म बड़े पैमाने पर साधनों की मात्रा अधिक हो जाने के कारण श्रमिकों में विशेषीकरण तथा उन्नत एवं विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग करके उत्पादन में अधिक तेज गति से वृद्धि कर सकती है।

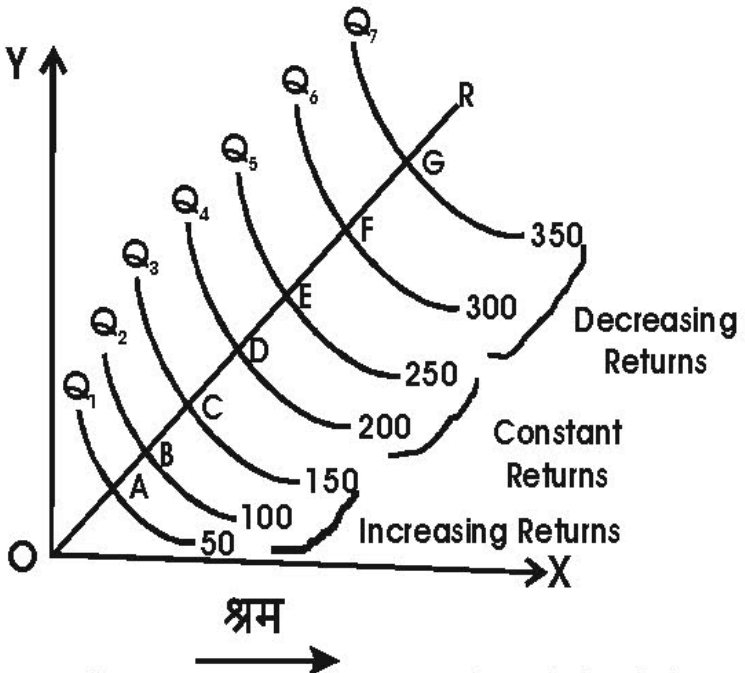

चित्र – 5 एकल उत्पादन प्रक्रिया में पैमाने के बदलते प्रतिफल

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को समोत्पाद चित्र के द्वारा दर्शाया जा सकता है। जब पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं तो विभिन्न समोत्पाद वक्र मूल बिन्दुओं से खीची गयी रेखा पर क्रमशः बढ़ती हुई दूरी पर स्थित होंगे।

रेखाचित्र बिन्दु C तक अथवा समोत्पाद वक्र Q_3 तक पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते है। क्योंकि BC < AB अर्थात उत्पादन की समान वृद्धियाँ साधनों में क्रमशः कम वृद्धियों से प्राप्त होती है।

1.5.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

अब तक हमने देखा कि जब साधनों में वृद्धि की तुलना में उत्पादन मे कम अनुपात से वृद्धि होती है तो पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। जब कोई फर्म साधनों की अधिक मात्रा प्रयोग करके अपने उत्पादन का विस्तार करती है तो अन्ततः पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होंगे। परन्तु अर्थशास्त्रियों में पैमाने के घटते प्रतिफल के कारण अथवा कारणों के बारे में सहमति नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि उद्यमकर्ता एक स्थिर साधन है। जहां अन्य साधनों को बढ़ाया जा सकना सम्भव है। उद्यमकर्ता को बढ़ाया जाना असम्भव है क्योंकि वह तो एक ही रहता है इस विचार के अनुसार पैमाने के बढ़ते प्रतिफल परिवर्तनशील अनुपात के नियम का एक विशेष प्रकार है। अतः इस स्थिति में एक बिन्दु के पश्चात पैमाने के घटते प्रतिफल इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि अन्य साधनों की बढ़ती हुयी मात्राएं एक स्थिर उद्यमकर्ता द्वारा प्रयोग की जाती है। किन्तु अन्य अर्थशास्त्री पैमाने के घटते प्रतिफल को परिवर्तनशील अनुपात के नियम की विशेष प्रकार नहीं मानते। उनका मत हैं कि अन्ततः पैमाने के घटते प्रतिफल के कारण बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रबन्ध, समन्वय तथा नियन्त्रण सम्बन्धी बड़ी कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं जब फर्म का आकार अत्यधिक बढ़ जाता है तो उसका प्रबन्ध इतनी कुशलता से नहीं हो सकता जितना कि कम आकार पर सम्भव होता है।

पैमाने के घटते प्रतिफल की दशा को भी समोत्पाद वक्रों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जब विभिन्न समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु से खींची गयी सीधी रेखा पर क्रमशः बढ़ती दूरी पर स्थित होते हैं तो वे पैमाने के घटते प्रतिफल को व्यक्त करते हैं इसका अर्थ यह है कि उत्पादन में समान वृद्धि को प्राप्त करने के लिए क्रमशः अधिकाधिक साधनों की आवश्यकता होती है।

रेखा चित्र 5 में बिन्दु E के पश्चात पैमाने के घटते प्रतिफल प्राप्त होते हैं क्योंकि EF > DE तथा FG > EF

यह उल्लेखनीय है कि अलग अलग उत्पादन फलन सदा विभिन्न प्रकार के पैमाने के प्रतिफल को प्रकट नहीं करते। प्रायः एक ही उत्पादन फलन में पैमाने को बढ़ते, स्थिर तथा घटते प्रतिफल की तीन अवस्थाएं होती हैं। आरम्भ में जब पैमाना बढ़ाया जाता है तो श्रम के विशिष्टिकरण तथा

अधिक उन्नत एवं विशिष्ट प्रकार की मशीनों का प्रयोग सम्भव हो जाने के कारण बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। एक बिन्दु के बाद पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था आती है जिसमें उत्पादन उसी अनुपात से बढ़ता है जितने अनुपात से सधनों की मात्रा बढ़ती है। वास्तविक अनुभव से पता चलता है कि पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था काफी लम्बी होती हैं। यदि फर्म अपने पैमाने अथवा आकार का विस्तार करती जाएं तो अन्ततः घटते प्रतिफल प्राप्त होने लगते हैं अतः एक ही उत्पादन फलन में पैमाने के बदलते प्रतिफल पाये गये हैं। एक उत्पादन फलन में ये बदलते हुए प्रतिफल रेखाकृति में प्रदर्शित किये गये हैं इस रेखाकृति में प्रारम्भ में A से C तक पैमाने के वृद्धिमान (Increasing) प्रतिफल , C और E के बीच पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा के पश्चात पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

1.5 सारांश (Summary)

इस प्रकार इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम यह देखते हैं कि उत्पादन को बढ़ाने में विभिन्न कारकों का योगदान होता है। तथा उत्पादन फलन किसी भी वस्तु के उत्पादन एवं लागत के मध्य भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्धन, तकनीकि आदि से सम्बन्धित हो सकता है। इनके प्रभावों को हमने आइसोक्वाण्ट की सहायता से पढ़ा। इसके अतिरिक्त प्रतिफल के नियमों को स्थिर, वृद्धिमान एवं ह्रासमान स्थितियों में विभाजित किया जा सकता है। तथा इसकी सहायता से कोई भी उत्पादक अपने उत्पादन में लाभ को स्थिति के अनुसार नियंत्रित कर सकता है।

1.6 स्वपरख प्रश्नावली

प्र.1 उत्पादन फलन क्या है? उत्पादन फलन की विशेषताओं को बताइये।

प्र.2 आइसोक्वाण्ट से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित समझाइये।

प्र.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को समझाइये। इस नियम के लागू होने के क्या कारण या शर्तें हैं?

प्र.4 प्रतिफल के नियम से आप क्या समझते हैं? इसके तीनों प्रतिफलों को समझाइये।

प्र.5 उत्पादन फलन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

प्र.6 निम्नलिखित को समझाइये –

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था

2. पैमाने के समान प्रतिफल की अवस्था

3. पैमाने के घटते प्रतिफल की अवस्था

प्र.7 पैमाने के वर्धमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल में अन्तर बताइये।

1.7 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari.
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवंआयोजन द्वारा एं.के. अग्रवाल

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Managerial Economics by Mote, Paul and Gupta
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त द्वारा एच.एल. आहूजा
3. Managerial Economics by Thomas Maurice

इकाई–2 न्यूनतम लागत संयोग

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन

2.3 दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.4 सारांश

2.5 बोध प्रश्न

2.6 अन्य चयनित पाठन

2.7 संदर्भ पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होंगे –

– न्यूनतम लागत संयोग के विश्लेषण में

– दो पदार्थों के अनुकूलतम संयोग के परीक्षण में।

2.1 प्रस्तावना

समोत्पाद वक्र साधनों के उन सभी संयोगों को बताता है जिनसे उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित होती है। अतः समोत्पाद वक्र तकनीकी दशाओ को प्रकट करता है । इसके विपरीत समलागत वक्र साधनों पर किये जाने वाले कुल व्यय और साधनों की कीमतों के अनुपात को प्रकट करता है। यदि वस्तु की किसी विशेष मात्रा का उत्पादन करने के लिए उत्पादक साधनों के कौन से संयोग को चुनेगा अथवा वस्तु की किसी विशेष मात्रा को उत्पादित करना हो तो समोत्पाद वक्र कौन से बिन्दु पर साधनों के संयोग के विषय में सन्तुलन की स्थिति में होगा?

निम्न रेखाचित्र के द्वारा इसे समझने का प्रयास करते हैं।

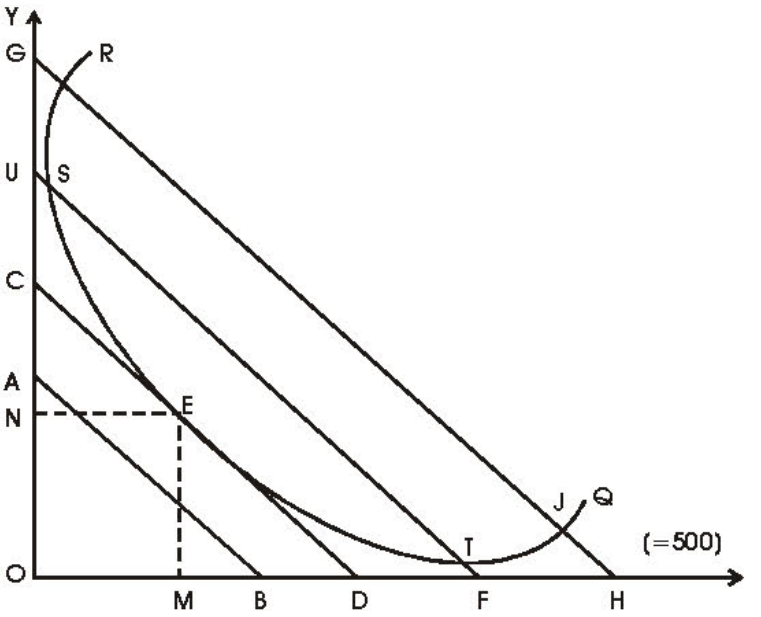

चित्र 1 : साधनों का न्यूनतम संयोग

हम यह मानते हैं कि उत्पादक वस्तु की एक विशेष मात्रा को कम से कम लागत पर उत्पादित करने का प्रयास करेगा। वस्तु की एक विशेष मात्रा को न्यूनम लागत पर उत्पादित करने से ही उसका लाभ अधिकतम होगा जो कि सभी विवेकशील उत्पादकों का लक्ष्य होता है। उदाहरण के रूप में किसी वस्तु की 500 इकाइयों उत्पादित करने के लिए चित्र में समोत्पाद वक्र Q पर स्थित किसी भी साधनों के संयोग जैसे कि RSETJ आदि द्वारा उत्पादित की जा सकती है। वह इस समोत्पाद वक्र पर स्थित साधनों के उस संयोग को उत्पादन करने के लिए चयन करेगा जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो।

चित्र 1 में उत्पादक साधनों के संयोग E को चुनेगा जहॉ पर समोत्पाद वक्र Q समलागत रेखा CD को स्पर्श करती है । वस्तु की 500 इकाइयों को उत्पादित करने के लिए साधनों के E संयोग प्रयोग से लागत न्यूनतम होगी। उत्पादक वक्र Q पर स्थित किसी अन्य संयोग जैसे R तथा S को उत्पादित करने के लिए नहीं चुनेगा क्योंकि ये सभी CD से ऊँचे सम–लागत वक्रों पर स्थित होंगे एवं परिणाम स्वरूप उत्पादक को वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए अधिक लागत उठानी पड़ेगी। यदि वह संयोग R अथवा S को चुनता है तो उसे वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए अधिक लागत उठानी पड़ेगी क्योंकि R और S ऊँचे सम लागत वक्र क्रमशः GH तथा UF पर स्थित है। इसी प्रकार समोत्पाद वक्र Q पर स्थित T तथा J बिन्दुओं द्वारा व्यक्त साधनों (श्रम एवं पूँजी के संयोगों को भी उत्पादक नहीं चुनेगा क्योंकि ये संयोग भी सम लागत वक्र CD की अपेक्षा ऊँचे सम लागत वक्रों

क्रमशः UF तथा GH पर स्थित हैं। इसी प्रकार E से भिन्न साधनों के किसी भी अन्य संयोग की लागत की तुलना में अधिक होगी अर्थात उत्पादक वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए साधनों के संयोग E को चुनेगा जिस पर समोत्पाद वक्र Q समलागत रेखा CD को स्पर्श करता है। श्रम तथा पूँजी का E संयोग वस्तु की 500 इकाइयॉ उत्पादित करने के लिए अनुकूलतम हैं इससे लागत न्यूनतम होती है।

बिन्दु E पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर श्रम और पूँजी की कीमतों के अनुपात के बराबर है। समोत्पाद वक्र की ढाल प्रतिस्पथापन की सीमान्त दर को प्रकट करती है तथा सम लागत वक्र की ढाल साधनों की कीमतों के अनुसार दर्शाती है। समोत्पाद वक्र तथा सम लागत वक्र CD की ढालें बिन्दु E पर बराबर है। क्योंकि बिन्दु E पर वे परस्पर स्पर्श कर रही हैं अतः बिन्दु E पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर श्रम एवं पूँजी की कीमतों के अनुपात के समक्ष हैं।

अतः सन्तुलन बिन्दु पर

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal rate of Technical Substitution)

$$MRTS_{LK} = \frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{श्रम की कीमत}} = \frac{W}{r}$$

w = श्रम की मजदूरी दर r = पूँजी की कीमत दर

चूँकि MRTS दो साधनों को सीमान्त भौतिक उत्पादों (Marginal Physical Product) के अनुपात के बराबर होती है। अतः

$$MRTS_{LK} = \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$$

अर्थात सन्तुलन की अवस्था में $\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$

अर्थात $\frac{MP_L}{W} = \frac{MP_K}{r}$

अतः दो साधनों के संयोग के विषय में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्यमकर्ता दो साधनों की इतनी इतनी मात्राओं का प्रयोग करेगा जिससे उन साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पादों में अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होगा। साधनों के प्रयोग के विषय में उत्पादक संतुलन की शर्त को दो साधनों से अधिक से अधिक साधनों की अवस्था में विस्तृत रूप में भी लिख सकते हैं। अतः उत्पादन प्रक्रिया में तीन साधनों श्रम, पूँजी तथा भूमि

के प्रयोग होने की स्थिति में उत्पादक अपने लागत व्यय को इन साधनों में इस प्रकार खर्च करेंगा कि निम्न शर्त की पूर्ति होती है।

$$\frac{MP_L}{W} = \frac{MP_K}{r} = \frac{MP_D}{t}$$

जहाँ MP_D भूमि की सीमान्त उत्पाद है तथा t भूमि की कीमत अर्थात उस पर tax (लगान) को दर्शाता है।

उत्पादक द्वारा विभिन्न साधनों के संयोग का चयन करने के बारे में व्यवहार, उपभोक्ता द्वारा वस्तुओं के संयोग के चयन सम्बन्धी व्यवहार के बिल्कुल समान हैं। दोनों उत्पादक तथा उपभोक्ता वस्तुओं की उतनी मात्रा खरीदते है ताकि उनमें प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनकी कीमतों के अनुपात के समान हो। सन्तुलन स्थिति को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उन वस्तुओं की कीमतों के अनुपात को बराबर करता है। इसी तरह उत्पादक द्वारा वस्तु की एक दी हुई मात्रा को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करने के लिए साधनों की तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनकी कीमतों के अनुपात में बराबर करता है।

2.2 लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन (Maximum Outpupt from a given level of outlay)

लागतों को न्यूनतम करने की समस्या एक दी हुयी लागत व्यय के वस्तु उत्पादन को अधिकतम करना है। यदि किसी वस्तु के उत्पादन पर कुल कितना निवेश करना है यह निर्णय पहले ही लिया जा चुका है तो कुल व्यय की एक निदिष्ट मात्रा तथा साधनों की कीमतें दी होने पर एक सम लागत रेखा बनती है।

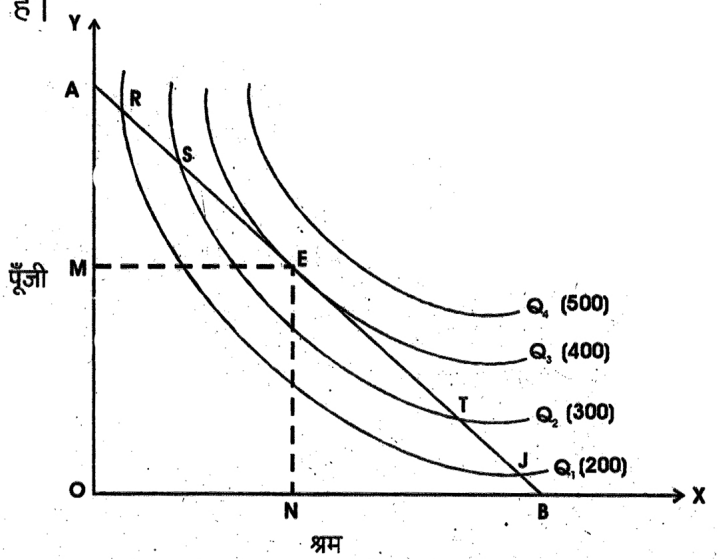

चित्र–2: कुल व्यय की एक दी हुई मात्रा से उत्पादन अधिकतम करना।

उपर्युक्त चित्रानुसार यदि किसी उत्पादक के पास 5000 रूपये हैं जिन्हें वह श्रम तथा पूँजी पर व्यय करके किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो 5000 रूपये के कुल व्यय तथा श्रम व पूँजी को दी हुई कीमतों के आधार पर समलागत रेखा AB प्राप्त होती है। उत्पादक को इस सम लागत रेखा AB पर स्थित श्रम तथा पूँजी के विभिन्न संयोगों जैसे कि R.S.E.T. और J में से किसी संयोग को चुनना होगा। चित्र में समोत्पाद वक्रों का एक मानचित्र दर्शित है जिसमें विभिन्न समोत्पाद वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों (200, 300, 400, 500 इकाइयॉ) को दर्शाते हैं। समलागत रेखा पर स्थित श्रम तथा पूँजी के संयोगों में से उत्पादक बिन्दु E द्वारा व्यक्त श्रम तथा पूँजी के संयोग को उत्पादन के लिए चयन करेगा अर्थात उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु E पर होगा जिसके अनुसार वह श्रम की ON मात्रा तथा पूँजी की OM मात्रा का वस्तु उत्पादन के लिए प्रयोग करेगा। इस संयोग विशेष के चयन का कारण यह भी है कि दी हुयी सम लागत रेखा पर स्थित श्रम तथा पूंजी के सभी संयोगों में से संयोग E जो श्रम की ON मात्रा तथा पूँजी की OM मात्रा का संयोग है। वक्र का अधिकतम सम्भव उत्पादन (400 इकाई) प्राप्त कर सकते हैं। साध न लागत पर स्थित शेष सभी संयोग जैसे कि R.S.T. तथा J अपेक्षाकृत कम वस्तु उत्पादन के समोत्वाद वक्रों पर स्थित हैं जिनसे वस्तु की 400 इकाइयों की तुलना में कम उत्पादन सम्भव होता है।

सन्तुलन बिन्दु E पर सम लागत रेखा समोत्पाद वक्र Q_3 (उत्पादन की 400 इकाइयॉ) को स्पर्श कर रही हैं। अतः साधन संयोग के चयन की दृष्टि से संतुलन की स्थिति में साधनों की कीमतों का अनुपात (w/r) तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{LK}$) के समान होगा।

अतः अनुकूलतमक साधन संयोग E पर –

$$MRTS_{LK} = \frac{W}{r}$$

चूँकि तकनीकि प्रतस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{LK}$) साधनों के सीमान्त उत्पादों (MP) के अनुपात के समान होती है। अतः

$$MRTS_{LK} = \frac{W}{r}$$

केन्तु $$MRTS_{LK} = \frac{MP_L}{MP_K}$$

अतः $$\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$$

अतः यह स्पष्ट है कि दिये हुए कुल व्यय से उत्पादन को अधिकतम करना तथा वस्तु की उत्पादन मात्रा दी हुई होने पर लागत न्यूनतम करने के विषय

RIL-082

में हम उत्पादन के सन्तुलन की समान शर्तों पर पहुँचते हैं।

2.3 दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग (Optimum Combination of two Products)

कोई भी फर्म किन्हीं दो पदार्थों के कौन से संयोग का चुनाव करेगी, इससे पूर्व सम आय रेखाओं के सिद्धान्त को जानना आवश्यक है। एक सम आय रेखा को उन पदार्थो संयोगों के बिन्दु पथ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनसे समान आय अर्जित होगी? यह हम निम्नलिखित की सहायता से जानने का प्रयास करेंगे।

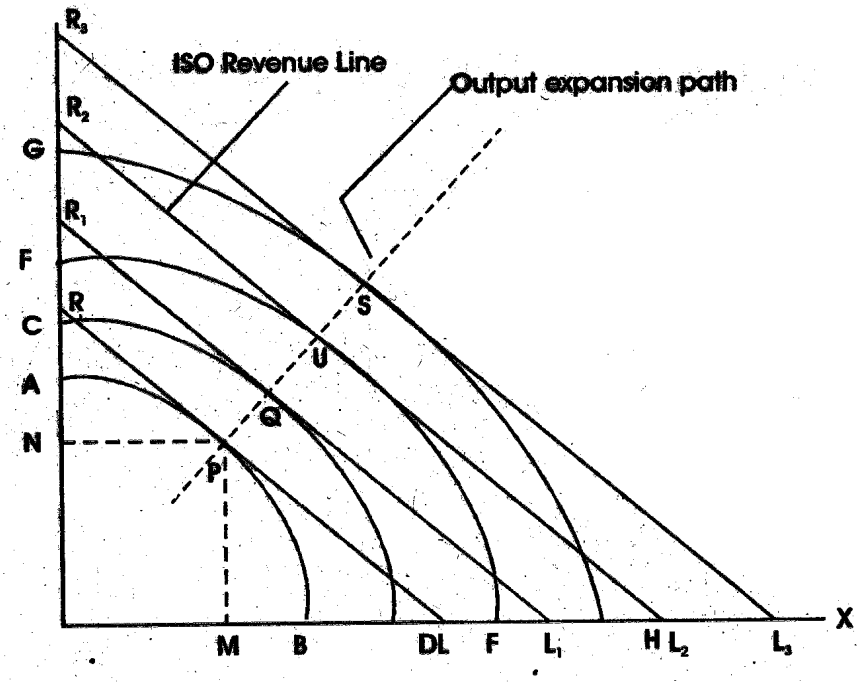

RL एक सम आय रेखा है इसका अर्थ यह है कि यदि इस पर स्थित X तथा Y दो पदार्थों के सभी संयोग बाजार में बेचे जाते हैं तो वे समान आय प्राप्त करते हैं। यदि फर्म पदार्थों को स्थिर दी हुयी कीमतों पर बेचती है तो सम आय रेखा एक सरल रेखा होगी। एक अपेक्षाकृत ऊँची सम आयरेखा दो पदार्थो के बड़े संयोगों को बेचने से अर्जित अधिक आय प्रदर्शित करती है।इस प्रकार जबकि प्रत्येक सम आय रेखा पर स्थित पदार्थों के किसी संयोग को बेचने के समान अर्जित आय प्रदर्शित करती है। विभिन्न सम आय रेखाएं अर्जित आय की विभिन्न भाषाएं प्रदर्शित करती हैं जैसे कि R'L', R"L", R'"L'"..... उत्तरोत्तर ऊँची सम आय रेखाएं हैं। पदार्थों की कीमतें दी हुयी तथा स्थिर होने पर विभिन्न सम आय रेखाएं एक दूसरे की समानान्तर होंगी। यह पुन: ध्यान देने योग्य है कि सम आय रेखा का ढाल X तथा Y की कीमतों के अनुपात के समान होता है।

यदि इसमें कल्पना करें कि फर्म का उद्देश्य अपना लाभ अधिकतम करना होता है तो उत्पादन के लिए उपयोग किये जाने वाले साधनों की मात्रा दी हुयी होने पर तब लाभ अधिकतम होंगे जब फर्म अपनी आय को अधिकतम करती हैं । इस प्रकार उपभोग किये जाने वाले साधनों की मात्रा दी होने पर फर्म का उद्देश्य अपनी आय को अधिकतम करना होगा। चित्र में साधनों की मात्रा उतनीही है जितनी कि उत्पादन संभावना वक्र CD द्वारा प्रदर्शित है अब फर्म उत्पादन संभावना वक्र CD पर स्थित संयोगों में से एक पदार्थ संयोग का चुनाव करेगी। वह CD पर स्थित उस पदार्थ संयोंग का चुनाव करेगी जो उसकी आय को अधिकतम करती है। आय अधिकतम होने के लिए दिये हुए उत्पादन संभावना वक्र पर रूपान्तरण की सीमान्त दर (MRT_{XY}) उन दो पदार्थों के बीच दी हुयी कीमतों के अनुपात के समान अवश्य होनी चाहिए। यदि दिये हुए उत्पादन संभावना वक्र पर MRT_{XY} कीमत अनुपात के समान नहीं है जैसा कि CD वक्र पर K तथा T बिन्दु पर है तो दिये गये उत्पादन संभावना वक्र पर उस दिशा में चलकर आय में वृद्धि की जा सकती है जिसमें आय वृद्धि होगी। यदि दिये हुए उत्पाद संभावना वक्र के एक बिन्दु पर दो पदार्थों के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर दी हुयी कीमत अनुपात के समान हैं तो किसी भी दिशा में चल कर आय वृद्धि करने की कोई सम्भावना नहीं होगी। चूँकि CD वक्र को K बिन्दु पर X का Y के लिए रूपन्तरण की सीमान्त दर बड़े पदार्थों के मध्य दी हुयी कीमत अनुपात की अपेक्षा कम हे। (उत्पादन संभावना वक्र CD तथा दी हुयी कीमत अनुपात को प्रदर्शित करने वली सम आय सेवा RLएक दूसरे को K बिन्दु पर प्रतिच्छेद कर रही हैं) अतः CD वक्र पर Q की ओर चलकर आय में वृद्धि की जासकती है। दिये हुए उत्पादन सम्भावना वक्र के T बिन्दु पर MRT_{XY} दी हुयी कीमत अनुपात की अपेक्षा अधिक है अतः इसलिए ऊपर Q बिन्दु की ओर चलकर आय में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार Q बिन्दु पर आय अधिकतम होगी जहॉ MRT_{XY} दी हुयी कीमत अनुपात के समान हैं।

यह स्पष्ट है कि दी हुयी परिस्थितियों के अन्तर्गत Q बिन्दु उच्चतम सम्भव सम आय रेखा RL पर स्थित है। इस प्रकार फर्म Q पदार्थ संयोंग के उत्पादन का चुनाव करेंगी।

ज्यामितीय रूप में हम कह सकते हैं कि आप वहॉ अधिकतम होगी जहॉ एक दिया हुआ उत्पादन सम्भावना वक्र सम आय रेखा को स्पर्श रेखा है। K तथा T बिन्दु (जहॉ दिया हुआ उत्पादन सम्भावना वक्र CD एम आय रेखा का प्रतिच्छेद कर रहा है।) R'L' कि अपेक्षा नीचे की सम आय रेखा पर

स्थित है जिस पर Q बिन्दु स्थित है। स्पर्शी बिन्दु Q पर दो पदार्थों के रूपान्तरण की सीमान्त दर उनकी कीमत अनुपात के समान है क्योंकि उत्पादन संभावना वक्र तथा सम आय रेखा के ढाल स्पर्शी बिन्दु पर एक समान हैं । अतः साम्य बिन्दु पर – $MRT_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ जिसमें P_Y वस्तु की कीमत तथा P_Y वस्तु Y की कीमत को दर्शाती है।

उपरोक्त स्थिति साम्य की प्रथम क्रम की दशा है। द्वितीय क्रम की शर्त के लिए आवश्यक है कि उत्पादन संभावना वक्र नीचे से नतोदर होना चाहिए।

2.4 सारांश

उपरोक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उत्पादन संभावना वक्र CD द्वारा प्रदर्शित साधनों के दिये होने पर फर्म पदार्थ संयोग Q के उत्पादन का चुनाव करेगी अर्थात वह X पदार्थ की OM तथा Y पदार्थ की ON मात्रा का उत्पादन करेगी। यदि अब फर्म के उपलब्ध साधनों में वृद्धि होने से तत्सम्बन्धी उत्पादन सम्भावना वक्र EF हो जाता है। तो उत्पादन संभावना वक्र EF होने पर फर्म U पदार्थ संयोग का उत्पादन करके अपनी आय को अधिकतम करेगी। इसी प्रकार यदि फर्म के साधनों में और अधिक वृद्धि हो जाती है। तो उत्पादन संभावना वक्र GH होने पर फर्म S पदार्थ संयोग का चुनाव करेगी जहॉ बढ़े हुए साधनों से इसकी आय अधिकतम होगी । P.Q.S. और S जैसे बिन्दुओं को मिलाने से हमें जो वक्र प्राप्त होगा उसे उत्पादन विस्तार पथ कहा जाताहै तथा इसके आधार पर साधनों की बदलती हुयी मात्राओं के परिणाम स्वरूप सभी आय अधिकतम पदार्थ संयोग का बिन्दु पथ होता है तथा कोई भी फर्म अपने साधनों में वृद्धि के साथ इस मार्ग के सहारे अपने उत्पादन का विस्तार करती है।

2.5 महत्वपूर्ण शब्द

साधनों का न्यूनतम संयोग, दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.6 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 साधनों के न्यूनतम संयोग से आप क्या समझते हैं चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.2 क्या लागत व्यय की एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिकतम उत्पादन संभव है उदाहरण द्वारा समझाइये।

प्र.3 आप दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग कैसे करेंगे? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.4 कुल व्यय की एक दी हुयी मात्रा से उत्पादन अधिक कैसे हो सकता है चित्र द्वारा बताइये।

प्र.5 टिप्पणी लिखिए।

1. न्यूनतम संयोग
2. अधिकतम उत्पादन
3. दो पदार्थों का अनुकूलतम संयोग

2.7 अन्य चयनित पाठन

(1) Managerial Economics by Maheshwari.

(2) Text book of Economics by Boyes

(3) Managerial Economics by Dean

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन द्वारा ए.के.अग्रवाल

2.8 संदर्भ पुस्तकें

1. Managerial Economics by Mote, Paul and Gupta
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा
3. Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–3 लागत के सिद्धान्त (Cost Concepts)

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 लागत के निर्धारक तत्व

3.2.1 उत्पादन मात्रा एवं लागतें

3.2.2 उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें

3.3.3 तकनीकी एवं लागतें

3.3 सारांश

3.4 महत्वपूर्ण शब्द

3.5 स्वपरख प्रश्न

3.6 अन्य चयनित पाठन

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम –

– लागतों के विभिन्न निर्धारकों को समझेंगे,

– लागतों के मुख्य स्वरूपों को जानेंगे,

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

लागतों का अध्ययन किसी भी उत्पादन फलन के लिए अति आवश्यक है जब तक किसी उद्यमी को उत्पादन में लगे हुये सभी लागतों की जानकारी नहीं होती है तब तक वह उत्पादन के आर्थिक सिद्धान्त को क्रियान्वित करने में अक्षम होता है। किसी भी उद्यमी को लागत के विभिन्न पहलुओं को जानना आवश्यक है जिसके द्वारा वे यह निर्धारित कर सकें कि कितने स्तर (पैमाने) पर कितनी लागत लगाने पर कितने प्रतिफल की प्राप्ति होगी। इकाई 4 (लागत के वर्गीकरण) में हमने काफी विस्तार से अध्ययन किया है परन्तु इस इकाई में हम लागत के कुछ मुख्य सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे।

3.2 लागत के निर्धारण तत्व (Determinant of Cost)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में लागतों के व्यवहार को अत्यन्त महत्व दिया गया है। उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन एवं बितरण की लागतें विभिन्न कारकों पर निर्भर करती हैं जो कि एक फर्म की लागतें विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है जो कि एक फर्म से दूसरी फर्म के अनुसार भिन्न होती हैं। लागतों के निर्धारण के तत्वों की चर्चा हम निम्न प्रकार से कर सकते है।

क. उत्पादन मात्रा स्तर (Output level)

ख. उत्पादन कारकों की कीमत (Prices of factors of production)

ग. उत्पादन कारकों की उत्पादकता (Productivities of Factors of production)

घ. तकनीक (Technology)

आगे की चर्चा में हम उपर्युक्त कारकों का लागत पर प्रभाव जानेंगे। इस चर्चा के अंदर हम जब किसी एक कारण्क का लागत पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तार से विश्लेषण करेंगे तो अन्य कारकों तथा मूल्य को स्थिर मानेंगे।

3.2.1 उत्पादन मात्रा एवं लागत (Output and Cost)

कुल लागत उत्पादन मात्रा के साथ साथ परिवर्तित होती है। कोई भी फर्म जितना अधिक उत्पादन करती है इसकी लागतें उतनी ही बढ़ती हैं। इसका विपरीत भी होता है। चूंकि यदि हम उत्पादन में वृद्ध करते हैं तो उसके लिए सीधे तौर पर अधिक कच्चे माल, श्रम आदि की आवश्यकता होती है। और इस कारण कुल लागत, उत्पादन मात्रा के बढ़ने के साथ बढ़ जाती है जबकि घटाने पर घटती भी है। यदि हम एक स्तर और अधिक उत्पादन मात्रा को बढ़ा दें तो हमें स्थिर संयंत्रों तथा अतिरिक्त उपकरणों एवं मशीनों की भी आवश्यकता हो सकती है। लागत एवं उत्पादन के मध्य जो सम्बन्ध है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है तथा इसको हम इस खण्ड की विभिन्न इकाइयों में पढ़ेंगे। साधारण तौर पर अर्थशास्त्रियों के मतानुसार किसी भी उत्पाद एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए लागत (Concept) चार मुख्य उत्पादन कारकों से व्युत्पन्न होते हैं उदाहरणार्थ भूमि, श्रम, पूँजी तथा संगठन या प्रबन्धन। इन चारों कारकों के आधार पर चार प्रकार की लागतें (Costs) या लागत कीमतें (Input prices) देखने को मिलती है किराया, भत्ता, ब्याज एवं लाभ। लाभ लागत का अवयव नहीं होता हैं। अर्थशास्त्र में प्रबन्धन एवं

कार्मिकों का वेतन जिसमें प्रबन्धक को भी सम्मिलित किया जाता है लागत के भाग को दर्शाता है। किसी भी पदार्थ/वस्तु के उत्पादन में माध्यमिक वस्तुओं जिसे हम कच्चा माल कहते हैं, की आवश्यकता होती है। कच्चे माल की कीमतें, कुल लागत से सीधे संबन्धित होती है। इस प्रकार से कुल लागत में से हम भूमि का किराया, श्रमिकों के भत्ते, कच्चे माल की कीमत, पूंजी पर ब्याज तथा सभी प्रबन्धन कर्मियों के वेतन को सम्मिलित कर सकते हैं। यदि हम सभी अवयवों को स्थिर रखते हुए किसी एक अवयव की लागत या कीमत में वृद्धि करते हैं तो कुल उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जब किसी एक कारक की कीमत में वृद्धि होती है तो उसके लिए अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है और इस बढ़ी हुयी लागत के बदले में कहीं और से पूर्ति नहीं होती। इस प्रकार किसी भी कारक की कीमत बढ़ने पर उत्पादन लागत में सीधे तौर पर वृद्धि हो जाती है।

अधिकाधिक उद्योगों में उत्पादन के कारक एक सीमा तक एक दूसरे को स्थानापन्न होते है। उदाहरणार्थ यदि हम इस श्रम को पूँजी के द्वारा स्थानापन्न कर सकते है। उत्पादन के लागत कारकों को स्थानापन्न करने का एक करक उनकी कीमतें भी होती है। अर्थात यदि श्रम की कीमत के तकनीकी कीमत से स्थानापन्न करने में उत्पादकता में वृद्धि होती है तो यह एक लाभकारी स्थिति होती है। हालॉकि सम्बन्धित कारक कीमत के परिवर्तन का कुल उत्पादन लागत पर प्रभाव निश्चित नहीं। यदि लागत के एक कारक की कीमत बढ़ जाती है तथा दूसरे की घट जाती है तो साधारणतया पहले वाले कारक के उपयोग में कमी आयेगी तथा दूसरे वाले कारक के उपयोग में वृद्धि होगी तथा कुल उत्पादन लागत में इसका प्रभाव अनिश्चित होता है। इसका सही प्रभाव स्थानापन्न की मॉग या सीमा पर पड़ता है। यदि अधिक से अधिक स्थानापन्न होना सम्भव है तो कुल उत्पादन लागत में कमी आ सकती है। अन्यथा यह स्थिर रह सकती है या बढ़ भी सकती है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि लागत साधनों की कीमत के साथ लागतें बदलती हैं इसके सम्बन्धित साधनों के मूल्य का संबंध लागत के साथ जानना अत्यन्त आवश्यक है।

3.2.2 उत्पादन साधनों की उत्पादकताएं एवं लागतें (Productivities of factors of Production and cost)

किसी उत्पादन साधन की उत्पादकता से हमार तात्पर्य उस साधन की एक इकाई द्वारा उत्पादन मात्रा में योगदान से होता है किसी लागत

सधन को जितनी अधिक उत्पादकता होगी उसका परिमाण उतना ही कम होगा जबकि उत्पादन के लिए अन्य लागत साध्नों को किसी दी गयी उत्पादन मात्रा पर उत्पादन के लिए स्थिर रखना होगा। दिये गये साधन मूल्यों, तकनीकी एवं उत्पादन मात्रा पर साधन उत्पादकता में वृद्धि करने पर कुल उत्पादन लागत घट जाती हैं। इस प्रकार से उत्पादन लागत का उत्पादकता के साथ विपरीत अनुपात में व्यवहार होता है। साधन मूल्यों की ही भॉति, यदि किसी एक भी साधन उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा दूसरे साधन की उत्पादकता में कमी होती है तो इसका कुल उत्पादन लागत पर प्रभाव अनिश्चित होता है। कुल लागत केवल उसी दशा में घटेगी जब कि वह साधन जिसकी उत्पादकता में वृद्धि हुयी है का स्थानापन्न उस साधन से किया जाए जिसकी उत्पादकता में एक अर्थपूर्ण मात्रा में कमी आयी हो। उत्पादकता का प्रयोग हम यहॉ कुशलता के स्थान पर भी करते हैं। साधन की कुशलता में वृद्धि के कई प्रकार हैं। जैसे कि मशीन की कुशलता या उत्पाकता उसकी गति को बढ़ा कर की जा सकती है, इसको ज्यादा घण्टे तक चलाकर की जा सकती हैं या ज्यादा समय तक चलाकर की जा सकती है।

किसी साधन की उत्पादकता अथवा कुशलता में वृद्धि किसी दी गई उत्पादन मात्रा पर कुल उत्पादन लागत को कम करने में सहायक होती है।

3.2.3 तकनीक एवं लागतें (Technology and Costs)

उत्पादन के विषय में तकनीकी एक महत्वपूर्ण निर्धारक हैं यदि हम तकनीकी में आये आधुनिकीकरण का प्रयोग अपने उत्पादन में करते हैं तो इससे उत्पादन में वृद्धि देखी जा सकती है जबकि एक ठहरी हुयी तकनीक के प्रयोग से उत्पादन में और अधिक वृद्धि सम्भव नहीं होती है। चूँकि तकनीकी के प्रयोग से साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है जो उसकी कुशलतता को बढ़ा देते हैं अतः अन्ततः उत्पादन की लागत में कमी आती है। इस प्रकार उत्पादन की लागतें, तकनीकी प्रगति के विपरीत अनुपात में व्यवहार करती हैं।

उपर्युक्त अभी अवधारणाओं को सम्मिलित रूप से लेने पर लागत एवं किसी एक निर्धारण्क को साथ लेने पर लागत फलन को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं।

$$TC_x = f(X, P_F, E_F, T)$$

$f_1, f_2, > 0 > f_3, f_4$

जहाँ TC_x = X वस्तु की कुल उत्पादन लागत

X = X वस्तु की उत्पादन मात्रा (output)

P_F = उन सभी साधनों की कीमत जिनका प्रयोग वस्तु के उत्पादन के लिए किया जाता है।

E_F =

उन सभी लागत साधनों की उत्पादकता या

कुशलता जिनका उपयोग X वस्तु के उत्पादन में किया गया है।

T = X वस्तु के उत्पादन में हुयी तकनीकी प्रगति।

f = अनुलिखित फलन

f_1 = परिवर्तनीय घटक के सपेक्ष f का आंशिक व्युत्पन्न।

3.3 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम कह सकते हैं कि लागत के निर्धारित करने के लिए मुख्य रूप से उत्पादन मात्रा, उत्पादन कारकों की कीमतें, उत्पादकता एवंतकनीक मुख्य भूमिका निभाते हैं तथा इनके सही मिश्रण से उत्पादन को सही प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता हैं ।

3.4 महत्वपूर्ण शब्द

उत्पादन मात्रा स्तर, उत्पादन कारकों की कीमतें, उत्पाद तकनीकी।

3.5 स्व–परख प्रश्न

प्र.1 उत्पादन लागत का विश्लेषण करते हुए इसके निर्धारक तत्वों को बताइये।

प्र.2 उत्पादन मात्रा एवं लागत में क्या संबंध हैं?

प्र.3 उत्पादन कारकों की उत्पादकता का लागत के निर्धारण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

प्र.4 उत्पादन की तकनीक का उत्पादन लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्र.5 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

1. उत्पादन मात्रा स्तर
2. उत्पादन कारकों की कीमत
3. उत्पादन कारकों की उत्पादकता

प्र.6 उत्पादन लागत एवं उत्पादन तकनीक में क्या सम्बन्ध हैं?

प्र.7 उत्पादन मात्रा स्तर एवं लागत में क्या सम्बन्ध हैं, उदाहरण द्वारा बताइये।

3.6 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–4 लागत वर्गीकरण

इकाई की संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 लागत का वर्गीकरण

4.2.1 वास्तविक लागतें

4.2.2 अवसर लागतें

4.2.3 सीमान्त लागतें

4.2.4 वृद्धि लागतें

4.2.5 डूबी लागतें

4.2.6 स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतें

4.2.7 लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें

4.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.3.1 लघुकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.4.2 दीर्घकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

4.4 व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें

4.5 निजी एवं सामाजिक लागतें

4.6 लेखांकन एवं आर्थिक लागतें

4.7 सारांश

4.8 महत्वपूर्ण शब्द

4.9 स्व परख प्रश्न

4.10 अन्य चयनित पाठन

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के पठन के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्दश्यों की पूर्ति में सफल होंगे –

- उत्पादन में लगने वाली विभिन्न लागतों को समझने में,
- लागत उत्पादन सम्बन्धों के विश्लेषण में
- लागत उत्पादन सम्बन्धों में लागतों के प्रभाव का विश्लेषण करने में।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

लागत को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। ये कारक स्थिति के अनुसार तथा कम्पनी के अनुसार भिन्न होते हैं। इसी कारण इन अवयवों के आधार पर हमें निर्णय लेने से पूर्व इनको विस्तृत रूप से लेना चाहिए। लागत के बारे में निर्णय लेने हेतु हमें भिन्न लागतों का ज्ञान होना आवश्यक है। लागत के कुछ सिद्धान्तों को हम निम्न प्रकार से चर्चा कर सकते हैं।

4.2 लागत का वर्गीकरण

4.2.1 वास्तविक लागत (Actual Cost)

ये वे लागत होती हैं जो किसी उत्पाद अथवा सेवा उत्पादित करने अथवा अपनाने में खर्च होती है। वास्तविक लागत को हम अधिग्रणह लागत (Acquisition Cost) या व्यय लागत (Outlay cost) कहते हैं। इस प्रकार की लागत के उदाहरण के अन्तर्गत कच्चे माल की लागत अथवा आर्थिक लागत (Material cost) श्रम लागत (Labour cost), किराया को ले सकते हैं।

4.2.2 अवसर लागत (Opportunity cost)

अवसर लागत हम उस लाभ (benefit) या आय (Revenue) को कहते हैं जो किसी एक कार्य को करने के बदले में त्याग कर सकते थे। हम इसको इस प्रकार से कह सकते हैं कि यदि हमारे पास एक लाख रूपये हैं और हम इस धन को X अथवा Y प्रोजेक्ट में लगा सकते है। परन्तु यदि हम X प्रोजेक्ट में धन का निवेश करते हैं तो T प्रोजेक्ट में धन निवेश करने से जो लाभ हमें हो सकता था उसे अवसर लागत कहते है।

चूँकि प्रोजेक्ट में हम धन निवेश करने का अवसर हम X प्रोजेक्ट में निवेशित करने के निर्णय पर त्याग देते हैं तथा इस सर्वश्रेष्ठ Y प्रोजेक्ट के द्वारा अर्जित आय अथवा लाभ को हम अवसर लागत (Opportunity cost) कहते है।

4.2.3 सीमान्त लागत (Marginal cost)

किसी एक अतिरिक्त यूनिट के उत्पादन में जो लागत में वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत (Marginal cost) कहते है। सीमान्त लागत को इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि यदि वर्तमान परिस्थिति में किसी उत्पाद अथवा सेवा के उत्पादन में एक अतिरिक्त यूनिट की वृद्धि करने पर जो लागत में वृद्धि आती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं।

वित्तीय शब्दावली में nवीं इकाई की सीमान्त लागत (MCn) कुल वीं इकाई की कुल लागत (TCn) एवं (n-1)वीं इकाई की कुल लागत (TCn-1) का अन्तर होती है।

M Cn = T Cn - T Cn-1

M Cn = n इकाई की सीमान्त लागत

T Cn = n इकाई की कुल लागत

अन्य शब्दों में हम सीमान्त लागत को उस दर के द्वारा परिभाषित कर सकते हैं जिस पर उत्पादन के बदलने पर कुल लागत बदल जाती है।

4.2.4 वृद्धि लागल (Incremental cost)

वृद्धि लागत को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं।

अ– किसी नीति को सम्भावित परिवर्तन के कारण कुल लागत में हुए अन्तर अथवा,

ब– व्यवसाय के स्तर अथवा प्रकृति के बदलने पर हुयी लागत में वृद्धि

अर्थात हम वृद्धि लागत को उदाहरण के द्वारा इस प्रकार से समझ सकते हैं कि यदि किसी कम्पनी को विपणन नीति में या विज्ञापन नीति या विवरण नीति इत्यादि में बदलाव के कारण उस कम्पनी के उत्पादन लागत में हुई वृद्धि के कारण, उत्पादन लागत में आये बदलाव को वृद्धि लागत कहते हैं।

वृद्धि लागत का मालूम होना इसलिए आवश्यक है कि वृद्धि लागत के आधार पर कम्पनी अपनी आय में भी वृद्धि सुनिश्चित कर सके। किसी बदलाव के कारण आय (Revenue) में आये बदलाव को वृद्धि आय (Incremental Revenue) कहते हैं।

4.2.5 डूबी हुई लागत (Sunk cost)

डूबी हुई लागत वे लागत होती हैं जो मात्रा में बदलाव के बाद भी परिवर्तित नहीं की जा सकती है एवं उनकी भरपाई नहीं की जा सकती है। उदाहरणार्थ मूल्यह्रास (Depreciation)I इसको हम इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि जिस लागत को हम किसी वस्तु के अधिग्रहण में खर्च कर चुके हैं तथा किसी भी निर्णय से उसकी भरपाई सम्भव नहीं है। यदि हम एक नई कार 2.5 लाख रूपये में खरीदते हैं तो 20 प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से एक वर्ष पश्चात इसकी कीमत दो लाख रूपये हो जायेगी और किसी भी प्रकार से हम इसे वापस नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इसे डूबी हुयी लागत कहते हैं। डूबी हुई लागत प्रायः वास्तविक लागत का ही अंश होती है अर्थात किसी भी वस्तु के खरीदने पर हमारी जो वास्तविक लागत होती है उसी में डूबी हुई लागत सन्निहित होती है।

4.2.6 स्थिर एवं परिवर्तनशील लागत (Fixed and variable costs)

स्थिर लागत वे लागत होती है जो किसी भी फर्म की कुल लागत का ही एक हिस्सा होती है तथा उत्पादन के परिवर्तन के साथ ये लागत परिवर्तित नहीं होती हैं। यदि हमें अपने फर्म को स्थापित करने के लिए भूमि क्रय करना पड़े, मशीने बनवानी पड़ें तो इस हेतु आयी लागत को हम स्थिर लागत कहते हैं। सीधे तौर पर स्थिर लागत को हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। स्थिर लागत को हम प्रायः उपरिव्यय लागत अथवा अप्रत्यक्ष लागत भी कहते हैं। यदि उत्पादन में वृद्धि होती है तो स्थिर लागत प्रति उत्पादित इकाई कम होता जाता है अर्थात यदि हम 100 यूनिट उत्पादित करते हैं तो कुल स्थिर लागत को 100 से विभाजित करके स्थिर लागत का अनुपात निकाल सकते हैं। यदि 100 के स्थान पर 150 यूनिट का उत्पादन करते हैं तो स्थिर लागत को 150 यूनिट से विभाजित करके उसका अनुपात निकाला जा सकता है। इस प्रकार हम ज्यादा से ज्यादा यूनिटों का उत्पादन कर स्थिर लागत का विभाजन कर सकते हैं।

परिवर्तनशील लागत वे लागत होती है जो कि उत्पादित यूनिटों की संख्या अथवा मात्रा पर निर्भर करती हैं अर्थात यदि हम ज्यादा मात्रा में उत्पादों का उत्पादन करें गे तों परिवर्तनशील लागत ज्यादा आयेगी एवं यह उत्पादन कम करने पर परिवर्तनशील लागत कम आयेगी।

परिवर्तनशील लागत X यूनिटों की मात्रा

Variable cost X Quantity of Production

श्रम लागत, माल (कच्चा माल इत्यादि) लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार ही बढ़ते एवं घटते हैं।

4.2.7 लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें (Short Run and Log Run costs)

यदि हम लधुकाल एवं दीर्घकाल के सिद्धान्त को किसी फर्म की अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत समझने का प्रयास करें तो लघुकाल (Short term) वह समय सीमा होती है जिसमें कोई भी उत्पादक अपने उत्पादन को परिवर्तित करने के लिए स्वतन्त्र होता है। परन्तु अपने प्लाण्ट के स्तर को बदलने का समय उस पर नहीं होता है। चूँकि फर्म की मशीनों एवं संयंत्रों को एकदम से बदलना या किसी भी क्षण परिवर्तित करना सम्भव नहीं होता है। इसके लिए एक कम से कम निर्धारित समयसीमा होती है। ऐसी हालत में बढ़ती हुयी मॉग को नियन्त्रित करने के लिए केवल यही तरीका होता है कि उत्पादक अपनी कर्म में उपलब्ध मशीनों एवं संयंत्रों को अधिक से अधिक प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाये। और यदि मॉग में कुछ कमी आती है तो उत्पादक मशीनों एवं संयंत्रों को खाली छोड़कर अपने उत्पादन को कम कर सकता है।

दीर्घकाल एक ऐसी समय सीमा होती है जिसमें लागत (मशीनरी/संयंत्र/माल इत्यादि) को स्थिति के अनुसार बदलने का मौका मिल जाता है। दीर्घकाल के अन्तर्गत हम मॉग एवं पूर्ति में आये बदलाव को स्थिति के अनुसार बदलने में सक्षम होते हैं।

अर्थात अब हम कह सकते हैं कि लघुकालीन लागतें वे होती हैं जो कि सम्पन्न उपयोग (अर्थात उत्पादन) की मात्रा तथा अन्य स्थिर कारकों के साथ बदलती है। लघु काल में यद्यपि स्थिर लागते अपरिवर्तित रहती है परन्तु परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के साथ बदलती है।

दीर्घकालीन लागतें वे होती हैं जो संयंत्र (Plant) के आकार के साथ परिवर्तित होती है । लघु कालीनएवं दीर्घकालीन लागतों का प्रयोग उत्पादन के स्थायी एवं अस्थाई निर्णयों का लागत, मूल्य एवं इस प्रकार लाभ की भविष्यवाणी करने में किया जाता है।

4.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध (Cost-Output Relationship)

लागत –उत्पादन सम्बन्ध लधुकाल के लिए एवं दीर्घकाल के लिए भिन्न भिन्न होता है। आइये इसको जानने का प्रयास करते हैं।

4.3.1 लघुकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध

किसी भी फर्म के लिए लघुकाल में उत्पादों के उत्पादन की कुल लागत TC किसी दिये गये उत्पादन स्तर पर कुल परिवर्तनशील लागत (Total variable cost) एवं कुल स्थिर लागत (Total fixed cost) के योग को बराबर होती हैं।

TC = TFC + TVC

ग्राफ के द्वारा इन लागतों को आकृति का अध्ययन करें ।

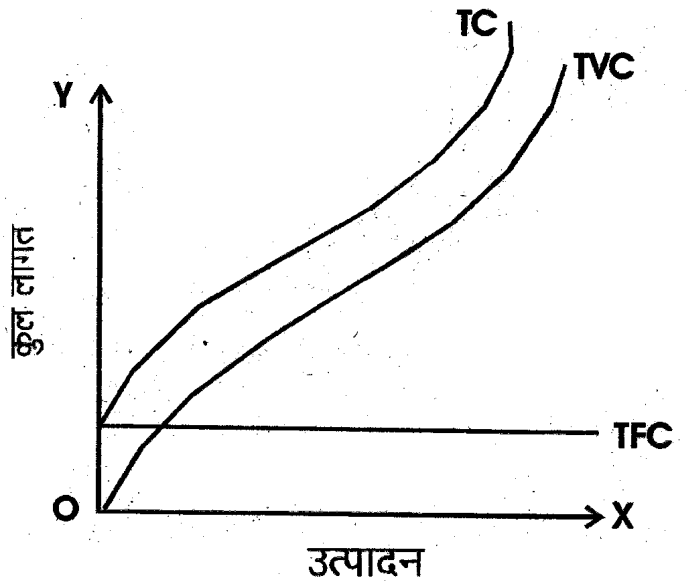

चित्र – 1 लघुकालीन कुल लागत वक्र

लघुकाल के लिए औसत लागत को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

1. औसत स्थिर लागत (AFC) प्रति उत्पादन यूनिट की स्थिर लागत है।

$$AFC = \frac{TFC}{Q} \text{ (Q = उत्पादन)}$$

अर्थात् चूँकि कुल स्थिर लागत अटल (Constant) है अतः AFC लगातार गिरने लगेगी।

2. औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) इसी प्रकार से प्रति यूनिट परिवर्तनशील लागत है।

$$AVC = \frac{TVC}{Q} \text{ (Q = उत्पादन}$$

AVC वक्र पहले गिरता है तथा बाद में उठता है।

अतः औसत कुल लागत $ATC = \frac{TC}{Q} = \frac{TFC}{Q} + \frac{TVC}{Q} = AFC + AVC$

इन औसत लागतों को हम निम्न ग्राफ के द्वारा समझ सकते हैं।

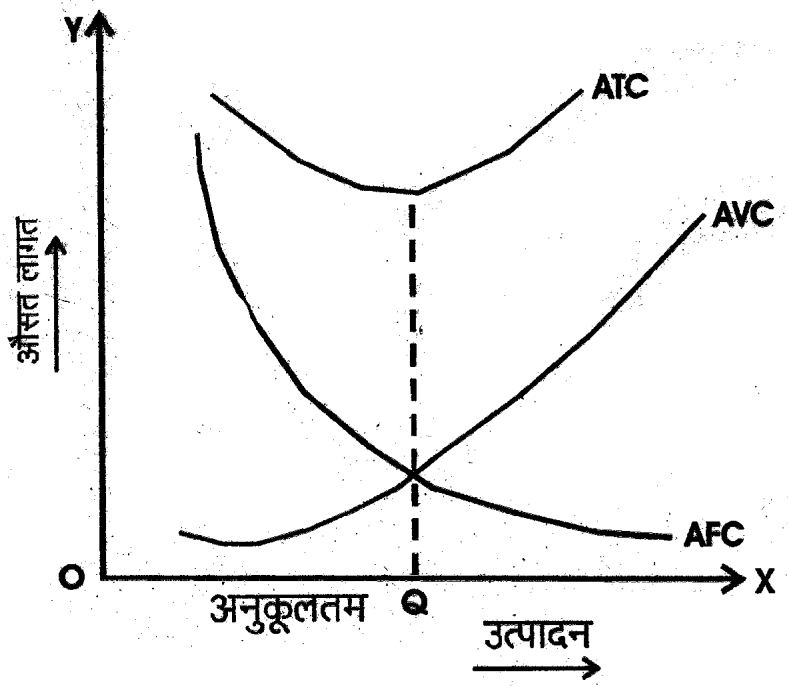

चित्र – 2 : लघुकालीन औसत लागत वक्र

औसत लागत वक्रों के गुण निम्नवत होते हैं –

1. AFC स्थिर रूप से गिरता है तथा दोनों अक्षों को असमान रूप से छूता है।

2. AVC पहले गिरता है अपने न्यूनतम स्तर पर पहुँचता है तथा फिर बढ़ता है।

3. जब AFC क्षैतिज अक्ष पर पहुँचता है तो AVC, ATC पर पहुंचता है।

4. ATC पहले गिरता है अपने न्यूनतम स्तर पर पहुंचता है तथा फिर उठता है। जब यह अपने न्यूनतम स्तर पर होता है तो उत्पादन (Output) अनुकूलतम स्तर पर होता है।

4.4.2 दीर्घ काल के लिए (For Long Run)

दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा फर्म के पास अधिसंख्य विकल्प होते हैं। उदाहरणार्थ, फर्म पास यदि उत्पादन के दो विकल्प लघु एवं मध्यम आकार के संयंत्र के रूप में है तथा ये संयंत्र औसत लागत AC_1 तथा AC_2 पर क्रमशः कार्य करते हैं।

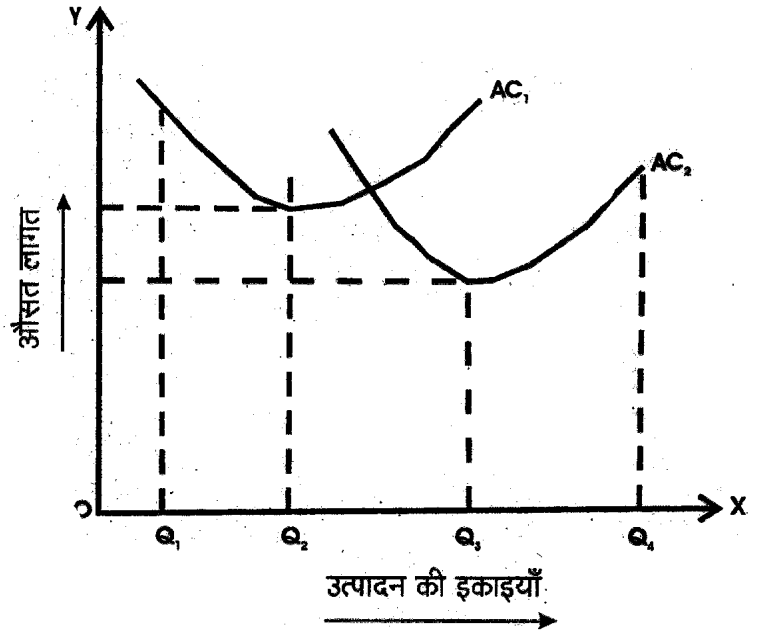

चित्र–3 : दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

यहाँ उत्पादन के लिए Q_1 तथा Q_2 में से केवल एक ही विकल्प अर्थात लघुसंयंत्र उपलब्ध है जबकि Q_2एवं Q_3 उत्पादन विकल्पों में दोनों ही विकल्प अर्थात लघु संयंत्र अथवा दीर्घ संयंत्र को प्रयोग करने की सुविधा है। पुनः Q_3 तथा Q_4 उत्पादन के मध्य केवल मध्यम आकार के संयंत्र को प्रयोग किया जा सकता है। ये वक्र हमें किसी विकल्प के किसी उत्पादन स्तर पर मितव्ययिता पूर्वक कार्य करने करने को जानने में सहायता प्राप्त करते हैं।

यहाँ हमने केवल दो विकल्पों का वर्णन किया है परन्तु वास्तविकता में बहुसंख्य विकल्प होते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्येक विकल्प के लिए वक्र खींचते हैं तथा सर्वश्रेष्ठ उत्पादन स्तर को चुनते हैं।

4.5 व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें (Explicit and Implicit Costs)

व्यक्त लागतें वे लागतें होती हैं जो व्यवसायिक लागतों के रूप कम्पनी की लेखा किताबों में उल्लिखित होती हैं उदाहरणार्थ वेतन, किराया, ब्याज, माल के लिए भुगतान आदि।

अव्यक्त लागतें वे लागतें होती है जो नगद रूप में भी सामने नहीं आती हैं तथा लेखा में भी उल्लिखित नहीं होती हैं। ये उद्यमी के संसाधनों में सर्वश्रेष्ठ उपयोग के फलतः आय के रूप में होती है। उदाहरणार्थ जब कोई उद्यमी स्वयं व्यापार करता है तो वह अपने द्वारा किये गये कार्य का वेतन नहीं लेता जबकि अन्यत्र काम करने पर उसको वेतन मिलता। इस प्रकार की लागत को हम अव्यक्त (Implicit) लागत कहेंगे।

4.6 निजी एवं सामाजिक लागतें (Private and Social Costs)

निजी लागतें वे लागतें होती हैं जो किसी संगठन के द्वारा व्यापार करने के लिए संसाधनों को एकत्र करने में लगाई जाती है। इस प्रकार की लागतों में व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें दोनों ही आती हैं।

सामाजिक लागतें वे लागतें होती हैं जो समाज के उन व्यक्तियों पर आहरित होती हैं जो कि व्यापारिक उत्पादन प्रक्रिया में सीधे रूप से सम्मिलित नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी फैक्ट्री में मलबा नदी में छोड़ा जाता है तो समाज के लोग व्यर्थ ही उस गन्दगी से प्रभावित होते हैं इसी प्रकार उद्योगों द्वारा फैलाये गये वायु एवं ध्वनि प्रदूषण इसका उदाहरण हैं।

4.7 लेखांकन एवं आर्थिक लागतें (Accounting Cost and Economic Costs)

कीमत सिद्धान्त के लिए समुचित ज्ञान के लिए लागत के इन विभिन्न विचारों को जानना आवश्यक है। जो प्रायः उपयोग किये जाते हैं। जब एक साहसी कोई उत्पादन कार्य करता है तो उसे उन साधनों की कीमतों का भुगतान करना पड़ता है जिन्हें वह उत्पादन के लिए नियुक्त करता है। वह इस प्रकार नियोजित मजदूरों को मजदूरी, उपयोग किये गये कच्चे माल, ईधन तथा ऊर्जा की कीमतें, उत्पादन कार्य के लिए किराए पर लिए गये भवन का किराया तथा व्यवसाय करने के लिए उधार ली हुयी मुद्रा पर ब्याज दर का भुगतान करता हैं।

ये सब उसकी उत्पादन लागत में सम्मिलित होती है। एक लेखाकार साहसी द्वारा विभिन्न उत्पादक साधनों के बाहरी पूर्तिकर्ताओं को किये गये भुगतानों को ही ध्यान रखेगा। किन्तु एक अर्थशास्त्रीय का लागत का विचार इससे कुछ भिन्न होता है। ऐसा सामान्यतः होती हे कि उद्यमी अपने उत्पादक व्यवसाय में कुछ मौद्रिक पूँजी का विनियोग करता है। यदि उद्यमी द्वारा अपने व्यवसाय में विनियोजित मौद्रिक पूंजी कहीं अन्य जगह विनियोजित करता हो तो वह ब्याज अथवा लाभांश की कुछ मात्रा अर्जित करता। इसके अतिरिक्त एक साहसी अपने उत्पादन कार्य में स्वयं का समय लगाता है तथा अपनी साहसिक तथा प्रबन्धकीय योग्यताओं में योगदान करता है। यदि उद्यमी ने अपना व्यवसाय स्थापित न किया होता तो वह अपनी सेवाओं को मुद्रा को

कुछ धनात्मक मात्रा के लिए दूसरों को बेच देता अतः अर्थशास्त्री उत्पादन लागत में सम्मिलित करते हैं।

1. अपने व्यवसाय में साहसी द्वारा स्वयं विनियोजित मौद्रिक पूंजी पर सामान्य प्रतिफल, जिसे वह यदि अन्यत्र विनियोजित करता तो अर्जित कर सकता। अपने व्यवसाय में स्वयं उद्यमी द्वारा विनियोजित पूंजी पर सामान्य प्रतिफल वस्तुतः उसकी मौद्रिक पूंजी की अवसर लागत होती है।

2. मजदूरी अथवा वेतन – जब कोई अपनी सेवायें, प्रबन्धक को देता है और उसने बदले आय अर्जित करता है उसे मजदूरी कहते हैं। लेखाकार उन दो मदों को उत्पादन लागत में सम्मिलित नहीं करते हैं परन्तु अर्थशास्त्रीय इसे उचित लागत मानते हैं तथा तदनुसार उन्हें सम्मिलित करेंगे। इसी प्रकार अन्य साधनों जैसे स्वयं उद्यमियों के स्वामित्व तथा उनके द्वारा स्वयं अपने व्यवसाय में उपयुक्त भूमि से मौद्रिक पुरस्कार को भी अर्थशास्त्रियों द्वारा उत्पादन लागत का अंग माना जाता है। इस प्रकार लेखाकार उन लागतों को मानते हैं जिनका फर्म के साहसी द्वारा अन्य लोगों को नगद भुगतान किया जाता है। अर्थशास्त्री उस मुद्रा की मात्रा का भी ध्यान रखते हैं जो कि साहसी तब अर्जित कर सकता है, जबकि वह अपनी मौद्रिक पूँजी विनियोजित किये होता तथा अपनी सेवाओं एवं अन्य साधनों को अन्य सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोगों में बेच दिया होता। विभिन्न साधनों को किराये पर लेने या खरीदने के लिए फर्म द्वारा किये जाने वाले प्रसंविदात्मक नकद भुगतान या लेखांकन लागतें, या स्पष्ट लागतें भी कही जाती हैं।

साहसी द्वारा विनियोजित मौद्रिक पूंजी पर सामान्य प्रतिफल तथा उसकी सेवाओं के लिए मजदूरी तथा वेतन एवं उन अन्य साधनों की अवसर लागतों जिनका वह स्वयं स्वामी हैं तथा उन्हें अपनी फर्म में उपयोग करता है को अस्पष्टतया निहित लागतें कहा जाता है। अर्थशास्त्री स्पष्ट तथा अस्पष्ट दो प्रकार की लागतों को ध्यान में रखते हैं।

आर्थिक लागत – लेखांकन लागतें + अस्पष्ट लागतें

यहाँ यह ध्यान देना महत्वपूर्ण हैं कि उपरोक्त अवसर लागत का विचार फर्म की अस्पष्ट लागतों तक ही सीमित नहीं है। अवसर लागतों का विचार स्पष्ट लागतों पर भी लागू होता है। उदाहरण के लिए जब एक फर्म कच्चा माल खरीदती है तो वह मुद्रा की उसी मात्रा से किसी अन्य वस्तु को खरीदने के अवसर का परित्याग करती है जिसका उसने कच्चे माल पर व्यय

किया है। अतः फर्म के दृष्टिकोण से उसके द्वारा कच्चे माल के लिए भुगतान किया गया तथा मौद्रिक मूल्य उसकी अवसर लागत प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार स्पष्ट लागतें किसी अवसर लागतें भी हैं यह उल्लेख किया जा सकता है कि फर्म आर्थिक लाभ तभी अर्जित करेगी जब कि वह लोखांकन तथा अस्पष्ट लागतों के योग की अपेक्षा अधिक आय प्राप्त कर रही होती है। इस प्रकार यदि फर्म लाभ रहित तथा हानि रहित स्थिति में है तो इसका अर्थ है कि फर्म को लेखांकन तथा अस्पष्टत : लागतों के योग के समान आय प्राप्त हो रही है और अधिक नही।अतः –

आर्थिक लाभ = कुल आय – आर्थिक लागतें ।

चूँकि आर्थिक लागतें स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों का योगफल होती है अतः आर्थिक लाभों को निम्न प्रकार से परिभाषित तथा मापा जा सकता है।

आर्थिक लाभ = कुल आय –(स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें)

4.8 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार की लागतों को समझने के पश्चात इनका उपयोग उत्पादन की औसत लागत को कम करने में किया जा सकता है तथा तदनुसार अपने लाभांश को सम्भावित उच्चतम स्तर तक ले जाया जा सकता है या दीर्घकाल में यदि स्थितियां अनुकूल न हों तो अपने लाभांश को स्थिर रखने में सहायता की जा सकती है। किसी भी निर्णयकर्ता को अपने कुल लाभ को बढ़ाने में किसी भी डूबी हुई लागत, स्थिर लागत तथा औसत लागत को नजरअन्दाज कर देना चाहिए क्योंकि इनमें से कोई भी लागत सीमान्त लागत को प्रभावित नहीं करती हैं अतः अनुकूलतम निर्णयों पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

4.8 महत्वपूर्ण शब्द

वास्तविक लागत, अवसर लागत, सीमान्त लागत, वृद्धि लागत, डूबी लागत, व्यक्त एवं अव्यक्त लागत, निजी एवं सामाजिक लागत, लेखांकन एवं आर्थिक लागत ।

4.9 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 उत्पादन की लागतों का विश्लेषण करते हुए अवसर लागत के अर्थ एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।

प्र.2 उत्पादन की लागत से आप क्या समझते हैं? लघुकालीन एवं दीर्घकालीन लागतों को समझाइये।

प्र.3 लागत उत्पादन सम्बन्ध को समझाते हुए लघुकाल एवं दीर्घकाल के लिए लागत उत्पादन सम्बन्ध बताइये।

प्र.4 निम्न में अन्तर स्पष्ट करें।

1. वयक्त एवं अव्यक्त लागतें।
2. निजी एवं सामाजिक लागतें।
3. स्थित एवं परिवर्तनशील लागतें
4. लेखांकन एवं आर्थिक लागतें

प्र.5 टिप्पणी लिखिये।

1. अवसर लागत
2. सीमान्त लागत
3. वृद्धि लागत
4. डूबी लागत
5. वास्तविक लागत

4.10 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–5 अनुमाप की मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अनुमाप की मितत्वययिता

5.3 अनुमाप की अमित्वययिता

5.4 मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता का स्पष्टीकरण

5.5 सारांश

5.6 महत्वपूर्ण शब्द

5.7 स्वपरख प्रश्न

5.8 अन्य चयनित पाठन

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम होंगे।

– वस्तुओं के उत्पादन में मितव्ययिता के सिद्धान्त को समझने में,

– उत्पादन लागत में अमितव्ययिता के कारणों के विश्लेषण में

5.1 प्रस्तावना

जब भी कोई निर्माता किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो उसको सदैव इस बात का ध्यान रखना होता है किस प्रकार वह अपनी लागत को कम से कम कर सके तथा अपने लाभांश को बढ़ा सके। लघु काल एवं दीर्घकाल में लागत एवं लाभांश की दशाएं भिन्न होती हैं अनुमाप की मितव्ययिता का तात्पर्य इस बात से होता है कि यदि कोई निर्माता लागत अवयवों को ज्यादा मात्रा में खरीद कर ज्यादा मात्रा में उत्पादन करे तो उसको कम कीमत में सामान मिलने के कारण एवं मशीन तथा अन्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के कारण औसत लागत में कमी आती

है जो कि निर्माता के लाभांश में वृद्धि करता है। इस इकाई में हम अनुमाप की मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता के प्रभावों को समझने का प्रयास करेंगे।

5.2 अनुमाप की मितव्ययिता (Economies of Scale)

अनुमाप की मितव्ययिता को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं कि वह स्थिति जब दीर्घकाल में उत्पादन की मात्रा (Output) बढ़ जाती है तो उत्पादन की इस दीर्घकाल में औसत लागत (Longrun Average cost) कम हो जाती है और इसी प्रकार से उत्पादक ज्यादा मात्रा में उत्पादों को उत्पादित करके मितव्ययिता लाभ उठाते हैं।

निम्नांकित चित्र में हम मितव्ययिता को देख सकते हैं –

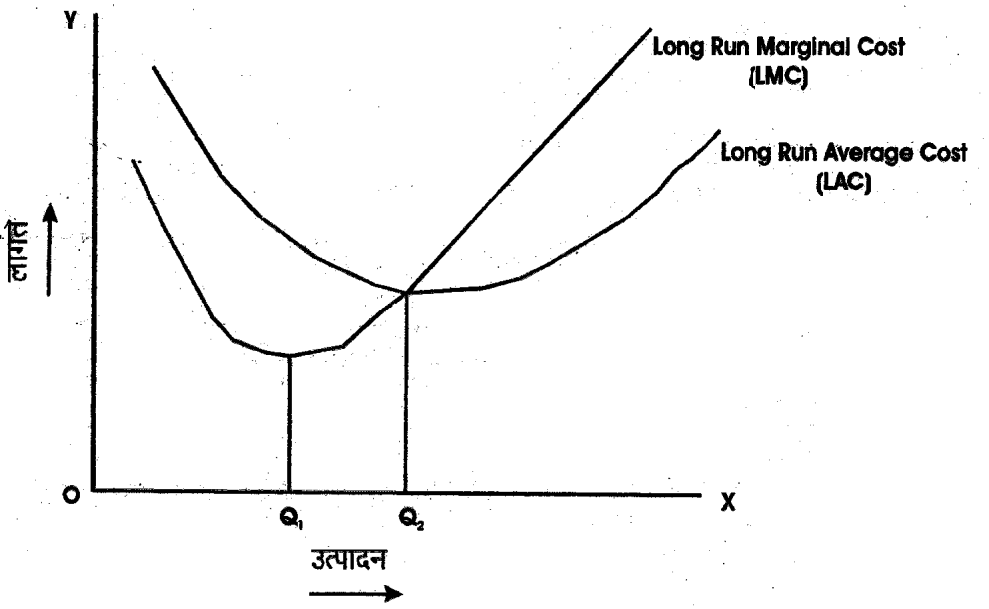

चित्र–1

उपर्युक्त चित्र में हम देख सकते हैं उत्पादन के Q_1 स्तर से OQ_2 स्तर तक अनुभाप की मितव्ययिता प्रदर्शित होती है।

5.3 अनुमाप की अमितव्ययिता (Scale of Diseconomies)

अमितव्ययिता दीर्घकालीन उत्पादन में वह स्थिति है जब और अधिक उत्पादन बढ़ाने पर भी दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) बढ़ जाती है अर्थात एक स्तर के बाद यदि हम उत्पादन को बढ़ाते भी हैं तो बाजार लागत घटने के बाद पुनः बढ़ने लगती है।

उपर्युक्त चित्र 1 में Q_2 बिन्दु के बाद की LAC अमितव्ययिता को प्रदर्शित करती है। अब हम यहाँ पर यह जानने का प्रयास करते हैं कि

अर्थशास्त्रियों के मत से मितव्ययिता की स्थित कब और कैसे आती है और फिर क्यों उसके बाद फर्म अमितव्ययिता की स्थिति में आती है।

5.4 मितव्ययिता एवं अमितव्ययिता का स्पष्टीकरण (Explanation for Economies and Diseconomies)

अनुमाप की मितव्ययिता का एक मुख्य कारण दीर्घ स्तरी कम्पनियों के लिए दीर्घस्तर पर उत्पादन की प्रकिया में आये अवसरों के द्वारा विशिष्टीकरण (Specialisation) एवं श्रम के विभाजन (Division of labour) का लाभ लेना होता है। यदि हम किसी लघु उद्योग का उदाहरण लें तो चूंकि वस्तुओं का उत्पादन कम होता है क्योंकि उत्पादन की मांग भी कम होती है। अतः उद्यमी कम मशीनों एवं श्रमिकों का एक सीमित मात्रा में प्रयोग करते हैं जो उनकी प्रतिदिन की मांग को पूर्ण करने में सक्षम हो। परन्तु यदि उद्यमी की फर्म को उत्पाद की मांग अधिक हो तथा दीर्घकाल में उसे अधिक मात्रा में उत्पादन करना हो तो वह अधिक एवं विशिष्ट श्रमिकों की नियुक्ति कर सकता है। साथ ही ज्यादा आधुनिक मशीनों का भी प्रयोग कर सकता है जो उत्पादन में वृद्धि के साथ ही लागत (Cost) में भी कमी लाने में सक्षम होती हैं और इस प्रकार कम्पनी की औसत लागत कम हो जाती है। इसी को अनुमाप की मितव्ययिता कहते हैं। इसका एक पहलू यह भी है कि जब अधिक उत्पादन के लिए अधिक कच्चे माल तथा अन्य सम्बन्धित अवयवों की आवश्यकता होती है तो उनकी खरीद में भी बड़ी मात्रा होने के कारण छूट मिल जाते हैं और ये औसत लागत को कम करने में सहायक होती है। इस प्रकार यदि दीर्घकाल में श्रमिक एवं मशीनों के द्वारा अधिकतम कार्य कुशलता को अपनाते हुए ठोस लाभ को कार्य के विभाजन एवं विशिष्टीकरण के द्वारा पूर्ण किया जाता है तकनीकी कारण भी मितव्यति को सार्थ बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । तकनीकी के इस प्रभाव को हम तीन प्रकार से पढ़ सकते हैं।

प्रथम यदि उत्पादन में विभिन्न प्रकार की मशीनों की आवश्यकता हो तो मशीनों के सही सामन्जस्य को बनाए रखने में उत्पादन की अच्छी मात्रा की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए यदि एक मशीन की उत्पादन क्षमता 30000 यूनिट प्रति दिन है तथा दूसरी मशीन की क्षमता 45000 यूनिटों की पैकिंग कर सकती है तो मशीनों के सही सामन्जस्य स्थापित होने पर एक दिन में अधिकतम 90000 यूनिटों का उत्पादन हो सकता है बशर्ते मशीनों का पूर्ण अथवा अधिकतम उपयोग हो।

दूसरे दृष्टिकोण से हम यदि देखें तो आधुनिक तकनीक को अपनाने के लिए जो बड़ी मशीने होती हैं उनको खरीदने एवं लगाने की लागत अधिक होती है। छोटी मशीनों की लागत एवं लगानें की तुलना में। उदाहरण के रूप में एक प्रिन्टिंग मशीन जो एक दिन में 2 लाख पेपर प्रिन्ट कर सकती है, की लागत एक 20000 पेपर प्रिंट करने वाली मशीन से 10 गुना अधिक नहीं होती है, और न ही इसको स्थापित करने के लिए 10 गुना ज्यादा भूमि की एवं 10 गुना श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि यदि ज्यादा बड़े स्तर पर कार्य करने के लिए तकनीक को अपनाया जाए तो प्रति यूनिट लागत कम हो जाती है।

तीसरे दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो तकनीकी अवयव शायद सबसे महत्वपूर्ण विषय हैं। जैसे जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है तथा बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन होता है वैसे वैसे मात्रा के साथ साथ गुणवत्ता की उपयोगिता भी बढ़ जाती है जिसके लिए हमें अधिक विकसित तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होगी। उदाहरणार्थ यदि हमें कोई छोटी सड़क बनाने का कार्य मिले तो हम तारकोल एवं श्रमिकों के द्वारा सड़क बनवा कर उस पर एक रोलर चलवा कर सड़क बना देते है। परन्तु उसकी गुणवत्ता उतनी अच्छी नहीं होती है और यदि किसी महानगर में एक व्यस्त सड़क को बनाना हो तो एक आधुनिक मशीन कम रोलर का प्रयोग किया जाता है जो एक ही बार में पत्थर एवं तारकोल के मिश्रण को सड़क पर फैलाते हुए उसे रोल करती चली जाती है। और इस प्रकार से अच्छी गुणवत्ता वाली सड़क का निर्माण कम समय में हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य बड़े पैमाने के कार्य जहॉ श्रम की अधिकता से ही अच्छा कार्य सम्पन्न करना मुश्किल होता है वहॉ आधुनिक एवं विकसित प्रौद्योगिकी वाली मशीनों के द्वारा गुणवत्ता पर कार्य किया जाता हैं । इस प्रकार से हम देखते हैं कि दो मुख्य एवं बड़े क्षेत्र

(क) विशिष्टीकरण एवं श्रम का विभाजन, तथा

(ख) तकनीकी एवं प्रौद्योगिक कारक, किसी उत्पादक के द्वारा बड़े पैमाने पर कार्य करने पर प्रति इकाई लागत को घटाने में सहायक होते हैं। ये प्रभाव दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के भाग को ऋणात्मक ढाल देते हैं। दीर्घ कालीन औसत वक्रों के उठे हुए होने के कारण तथा सभी प्रकार के मितव्ययी अभिमापनों के अध्ययन के पश्चात ये वक्र क्षैतिज अथवा समानान्तर नहीं होते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत (Long term average cost) वक्र अथवा

अमितव्ययिता अंभिमापन (Diseconomies of scale) प्राय: प्रभावी तथा कार्यकुशल प्रबन्धन के अभाव का परिणाम होता है। किसी भी व्यवसाय को प्रबन्धित करने के लिए एक कुशल प्रबन्धक को विभिन्न प्रक्रियाओं एवं सम्बन्धित विभागों जैसे कि उत्पादन (Production),परिवहन (Transport),वित्त (Finance), विक्रय (Sales), मानव संसाधन (Human Resource),क्रय (Purchase), शोध एवं विकास (Research and Development) आदि को भली भॉति समन्वित करना आना चाहिए। किसी भी प्रबन्धक को प्रबन्धन के इन कार्यों को करने के लिए सही सूचनाओं का होना आवश्यक है अन्यथा वह सही निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो सकता।

जैसे जैसे किसी प्लाण्ट की क्षमता में वृद्धि होती है वैसे वैसे प्रबन्धक अपनी जिम्मेदारियों एवं अधिकारों को अपने से निचले क्रम के अधिकारियों को सौंपता है। यदि प्रबन्धक स्वयं ही रोज के संचालन एवं प्रक्रियाओं को जाकर देखने लगे तो इसमें समय खराब होता है तथा श्रमिकों के दबाव में रहने के कारण गुणवत्ता कम होने का भय रहता है। इस दशा में अधिकारों एवं जिम्मेदारियों को अपने से निचले क्रम के अधिकारियों के साथ बॉटने तथा सौंपने से एक कुशल तथा प्रभावी प्रबन्धन होता है। ऐसा न होने पर प्रक्रियाओं एवं संचालन की कुशलता मे कमी आती है तथा प्रबन्धन भी कुशल नहीं हो पाता है तथा प्रबन्धकीय फलन की लागत बढ़ जाती है तथा उत्पादन की लागत भी बढ़ती है।

इस पूरी प्रक्रिया में यह कहना मुश्किल है कि कौन सा ऐसा समय होता है जब अमितव्ययिता स्थापित होने लगती है और कब यह अमितव्ययिता, मितव्ययिता से अधिक भारी पड़ जाती है। जिन व्यापरिक संगठनों में अभिमापन की मितव्ययिता को अनदेखा किया जाता है उनमें शीघ्र ही अभिमापन की अमितव्ययिता हावी हो जाती है।

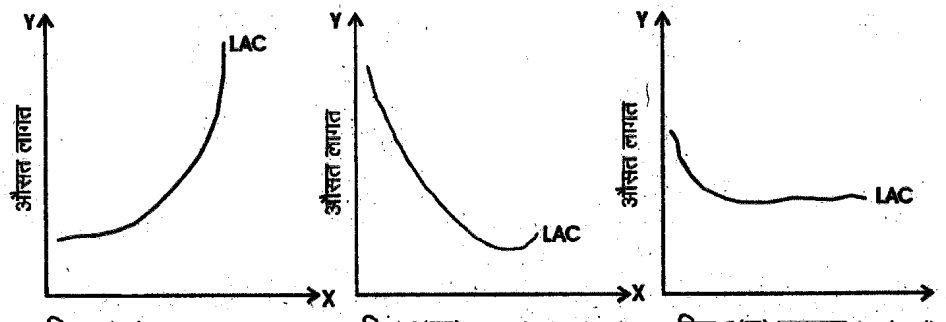

चित्र 2(क) उत्पादन (output) प्रारम्भिक अमितव्ययिता (Early Diseconomics)

चित्र 2(ख) उत्पादन (output) फैली हुयी मितव्ययिता (Extended Economics)

चित्र 2(ग) उत्पादन (output) फैली हुयी स्थिर LAC (Extended Const. LAC)

यदि हम चित्र 2 (क) को देखें तो इस अवस्था में LAC (दीर्घकालीन औसत लागत) उत्पादन के कम आयतन पर ही घूम जाता है। अन्य स्थितियों में अभिमापन की मितव्ययिता अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। प्रबन्धन की कुशलता कम होने पर भी तकनीकी मितव्ययिताएं अमितव्ययिताओं की कुशलता कम होनेपर भी तकनीकी मितव्ययिताएं, अमितव्ययिताओं को उत्पादन की एक बड़ी रेन्ज पर सन्तुलित कर देती है। अतः यदि हम चित्र 2 (ख) में देखें तो LAC वक्र तब तक ऊपर नहीं घूमता जब तक कि बहुत ज्यादा उत्पादन न किया जाए। कई सारी वास्तविकत स्थितियों में इस प्रकार की कोई भी स्थितियों अंश के व्यवहार को नहीं बता पाती हैं यदि कोई फर्म एक साधारण स्तर के प्रक्रिया पर कार्य करती है तो सभी प्रकार की अमिमापन की मितव्ययिताओं को प्रदर्शित करने में सक्षम होती है तथा अभिमापन की अमितव्ययिता तब तक नहीं आती है जब तक कि उत्पादन बहुत ज्यादा स्तर तक नहीं बढ़ जाए। इस अवस्था में LAC एक लम्बा क्षैतिज भाग रखेगा जिसकी हम चित्र 2(ग) में देख सकते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों एवं बिजनेस एक्जिक्युटिव वैश्विक अर्थव्यवस्था में विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाओं में देखने को मिल सकती है।

कभी कभी यह भी देखा गया है कि यह मानना बहुत ही आसान एवं वास्तविक है जब किसी फर्म के सभी उत्पादों की रेन्ज पर स्थिर (Constant) आय (Return) होते हैं। इस प्रकार की विशेष परिस्थिति में फर्म एक लम्बे समय में समान या स्थिर (Constant) लागत को अनुभव करती है तथा वक्र समतल होता है तथा सभी उत्पादन स्तर पर LMC के बराबर होता है। चित्र 3 में एक ऐसी ही फर्म का विवरण दिया गया है जिसमें एक स्थिर मात्रा में इकाइयों का उत्पादन 20रूपये की सीमान्त लागत पर हो रहा है।

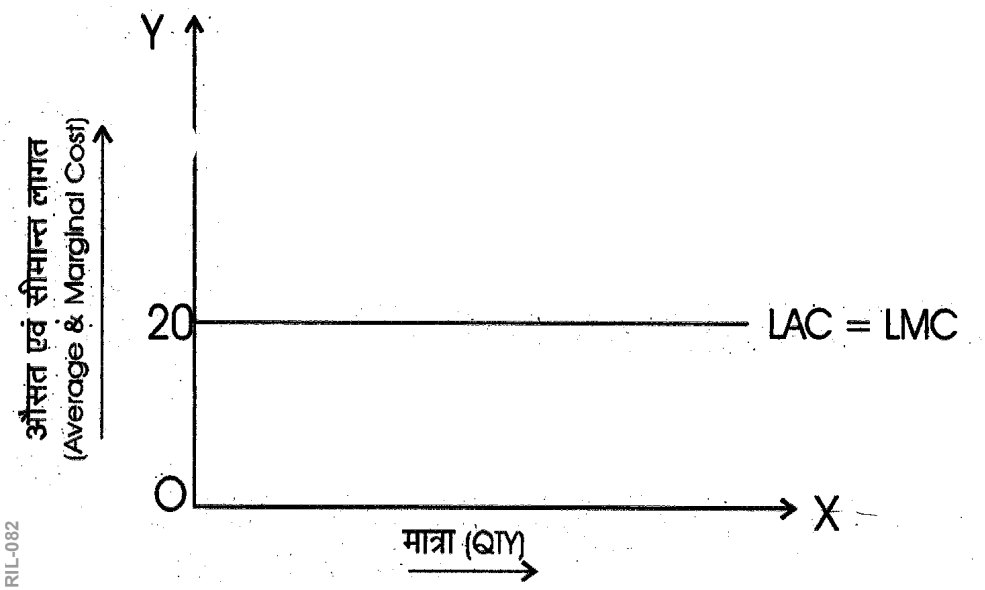

इस प्रकार की फर्म न तो अभिमापन की मितव्ययिता को और न ही अभिमापन की अमितव्ययिता को अनुभव करती है और इसे स्थिर लागत का अनुभव करते हैं।

5.5 सारांश (Summary)

इस प्रकार में हमने देखा कि अभिमापन की मितव्ययिता के प्रभाव को धनात्मक रूप में प्रयोग करने के लिए हमें यह देखना आवश्यकत हैं कि यदि दीर्घकाल में वस्तुओं की मॉग बढ़ती है तो श्रमिकों एवं मशीनों आदि के सही सामन्जस्य में प्रयोग करने पर औसत लागत में कमी आती है। इसके अतिरिक्त विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन तथ तकनीकी एवं प्रौद्योगिक कारक किसी भी उत्पादक के द्वारा बड़े पैमाने पर कार्य करने पर प्रति इकाई लागत को घटाने में सहायक होते हैं।

5.6 महत्वपूर्ण शब्द

अनुमाप की मितव्ययिता, अनुमाप की अमितव्ययिता

5.7 स्वपरख प्रश्न

प्र.1 अनुमाप की मितव्यीयता से आप क्या समझते हैं? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.2 अनुमाप की अमितव्ययिता का क्या अर्थ है?

प्र.3 मितव्ययिता एवं अमितव्ययीता में अंतर स्पष्ट करें।

प्र.4 टिप्पणी लिखिए।

1. अनुमाप की मितव्ययिता
2. अनुमाप की अमितव्ययिता

प्र.5 प्रारम्भिक अमितव्ययिता से आप क्या समझते हैं? चित्र द्वारा समझाइये।

प्र.6 फैली हुयी मितव्ययिता एवं फैली हुयी स्थिर में अन्तर स्पष्ट करें।

5.8 अन्य चयनित पाठन

1. Managerial Economics by Maheshwari
2. Text Book of Economics by Boyes
3. Managerial Economics by Dean

4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन बाई ए.के.अग्रवाल

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- Managerial Economics by Mote, Paul, and Gupta.
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त बाई एच.एल. आहूजा ।
- Managerial Economics by Thaumas Maurice.

इकाई–6 लागत प्रतिफल सम्बन्ध

इकाई की संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 लघुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्ध

6.2.1 स्थिर लागत एवं उत्पादन

6.2.2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन

6.2.3 कुल लागत एवं उत्पादन

6.3 दीर्घकालीन लागत उत्पादन सम्बन्ध

6.4 लागत उत्पादन सम्बन्ध का मूल्यांकन

6.4.1 लेखा विधि

6.4.2 अभियान्त्रिक विधि

6.4.3 इकोनोमेट्रिक विधि

6.5 सारांश

6.6 महत्वपूर्ण शब्द

6.7 स्वपरखे प्रश्न

6.8 अन्य चयनित पाठन

6.9 सन्दर्भ पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम होंगे।

– लागत प्रतिफल सम्बन्धों के विश्लेषण में

– लागत–उत्पादन सम्बन्धों के मूल्यांकन में

– लागत–प्रतिफल के सम्बन्धों को व्यापारिक निर्णयों हेतु समझने में।

6.1 प्रस्तावना

लागत एवं प्रतिफल के मध्य सम्बन्ध व्यापारिक निर्णयों को समझने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक विश्लेषण में लागत प्रतिफल सम्बन्ध का महत्व इतना अधिक एवं आवश्यक है कि लागत फलन का अभिप्राय प्रायः लागत एवं उत्पादन की दर (Rate of output) से ही होता है, और इसके अन्तर्गत बाकी अन्य सभी स्वतंत्र परिवर्तनशील घटकों को स्थिर माना जाता है। अर्थशास्त्रियों का इस सम्बन्ध पर ज्यादा जोर इस लिए भी हैं क्योंकि बाजार में एवं अन्य आर्थिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का इस पर तेजी से प्रभाव पड़ता है। पुनः यदि एक बार हम लागत प्रतिफल फलन को जान लेते हैं तो भविष्य की उत्पादन लागत, विभिन्न उत्पादन स्तरों पर हम लागत फलन को समायोजित करके जान लेते हैं जिससे कि अन्य प्रभावों जैसे माल का मूल्य श्रम की उत्पादकता, मजदूरी दर इत्यादि भी प्रतिबिम्बित हो जाते हैं।

यहाँ पर हमें यह जानना आवश्यक है कि लागत प्रतिफल का सम्बन्ध एक आंशिक सम्बन्ध होता है।

लागत मुख्यतः 2 प्रकार की होती हैं –

स्थिर लागत

परिवर्तनशील लागत

स्थिर लागतें उत्पादन के सापेक्ष स्थिर होती हैं जबकि परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के सापेक्ष बदलती है। हम ये भी जानते हैं कि स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में विभेद केवल लघुकाल में लिए होता है जबकि दीर्घकाल में सभी लागतें पस्विर्तनशील लागतें होती हैं। चूंकि एक सीमा के उपरान्त किसी भी मशीन या भूमि या बिल्डिंग की स्थिर लागत उत्पादन के साथ निकलती रहती है और दीर्घकाल में यह नगण्य हो जाती है अर्थात लागत एवं प्रतिफल के सम्बन्ध को लघु एवं दीर्घकाल में अलग अलग पढ़ना ज्यादा आसान होगा।

6.2 लघुकालीन लागत–प्रतिफल सम्बन्ध (Short Run Cost-Output Relationship)

लघुकालीन लागत प्रतिफल सम्बन्ध किसी एक स्थिर संयंत्र (fixed plant) या किसी विशेष स्तर के औद्योगिक प्रक्रिया से संबंधित होता है।

अर्थात, लागत में भिन्नता किसी संयंत्र की एक निश्चित क्षमता के उत्पादन (output) स्तर पर ही दर्शाता है तथा ये सम्बन्ध संयंत्र की क्षमता के बदलने पर बदल जाएगा।

अतः लागत प्रतिफल के भिन्नता से सम्बन्धित लघुकालीन फलन निम्न प्रकार का हो सकता है।

$$TC = f(x) + A$$

जहाँ TC = कुल लागत (Total Cost)

X = उत्पादन (output)

A = कुल स्थिर लागत (Total fixed cost)

यहाँ स्थिर लागत किसी दिये गये संयंत्र की क्षमता के लिए है। अन्य संयंत्रों के आकार के लिए इसका मूल्य भिन्न होगा। f(x) कुल परिवर्तनशील लागत को दर्शाता है।

निर्णय लेने के लिए एक उद्यमी को केवल लागत एवं प्रतिफल के मध्य ही सम्बन्ध जानना आवश्यक नहीं है अपितु लागत एंव प्रतिफल के विभिन्न प्रभारों के एकाकी रूप में जानना भी ज्यादा आवश्यक है। अतः हम लघुकाल में लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को निम्नांकित विषयों के सन्दर्भ में जानेंगे।

क. स्थिर लागत एवं उत्पादन (Fixed cost and output)

ख. परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन (Variable cost and output)

ग. कुल लागत एवं उत्पादन (Total cost and output)

हम एक काल्पनिक उदाहरण को निम्नांकित तालिका में प्रदर्शित कर लागत आय के विभिन्न सम्बन्धों को जानने का प्रयास करेंगे।

उत्पादन की इकाई	कुल स्थिर लागत	कुल परिवर्तनशील लागत	कुल लागत	सीमान्त लागत	औसत स्थिर लागत	औसत परिवर्तन शीललागत	औसत कुल लागत
rc	TFC	TVC	TC	MC	AFC	AVC	ATC
0	176	0	176	-	-	-	-
1	176	75	251	75	176	75	251
2	176	130	306	55	88	65	153
3	176	175	351	45	59	58	117
4	176	209	385	34	44	52	96

RIL-082

5	176	238	414	29	35	48	83
6	176	265	441	27	29	44	74
7	176	289	405	24	25	41	66
8	176	312	488	23	22	39	61
9	176	328	504	16	20	36	56
10	176	344	520	16	18	34	52
11	176	367	543	23	16	33	49
12	176	400	576	33	15	33	48
13	176	448	624	48	14	34	48
14	176	510	686	62	13	36	49
15	176	600	776	90	12	40	52

Table 1 : लागत प्रतिफल सम्बन्ध (सभी लागत रूपयों में)

6.2.1 स्थिर लागत एवं उत्पादन

यदि परिभाषा को दृष्टिगत करें तो स्थिर लागत उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होता। इस प्रकार से जितनी ज्यादा इकाइयों का हम उत्पादन करेंगे इतनीही कम लागत स्थिर लागत प्रति इकाई आयेगी. तथा सीमान्त स्थिर लागत शून्य ही रहेगी। हमारे काल्पनिक उदाहरण में कुल स्थिर लागत 176 रूपये है। जो कि उत्पादन की इकाई से प्रेरित नहीं है। अथवा सम्बन्धित नहीं हैं एवं औसत स्थिर लागत उत्पादन के बढ़ने पर एक ही प्रकार से घट रही है। औसत स्थिर लागत 176 रूपये हैं जब उत्पादन एक इकाई है, 88 रूपये हैं जब उत्पादन 2 इकाई तथा इसी प्रकार से 12 रूपये है। जब उत्पादन 15 इकाई हैं इसी प्रकार से कुल औसल लागत का वक्र 176 रूपये पर क्षैतिज हैं तथा औसत स्थिर लागत वक्र लगातार नीचे गिर रहा है। चित्र 1 से सन्दर्भ लेते हैं ।

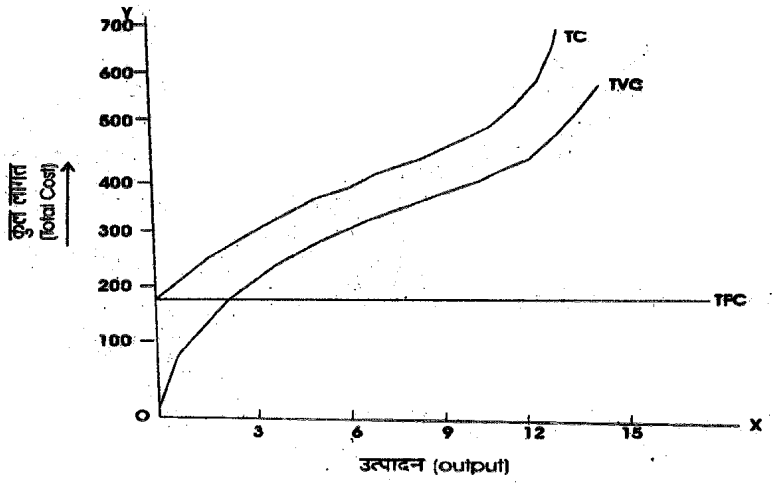

यहाँ पर हम ये भी देखते हैं औसत स्थिर लागत वक्र आयताकार हाइपरबोला (Rectangular hyperbola) है।, स्थिर लागत एवं उत्पादन के बीच का सम्बन्ध सभी व्यवसायों के लिए सही होता है।

6.2.2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन

कुल परिवर्तनशील लागत उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती है परन्तु फिर भी ये सम्बन्ध रेखीय नहीं होता है अर्थात प्रत्येक उत्पादित इकाई के अनुसार ही परिवर्तनशील लागत में वृद्धि नहीं होती हैं ।

आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार इसकी प्रकृति कुछ इस प्रकार से होती है कि प्रारम्भ में तो जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता है कुल परिवर्तनशील लागत घटती हुई दर से बढ़ती है उसके बाद से स्थिर दर से बढ़ती है तथा बाद में बढ़ती हुई दर से बढ़ती हैं । अर्थात कुल परिवर्तनशील लागत एक स्तर तक तो घटती है उसके बाद स्थिर रहती हैं तथा पुनः और उत्पादन बढ़ने पर यह बढ़ जाती है और यह घटते प्रतिफल के नियम को दर्शाता है उदाहरणार्थ किसी भी मात्रा के उत्पादन के लिए श्रम की आवश्यकता रेखीय अनुपात में नहीं बदलती है। यदि किसी फर्म को एक यूनिट उत्पाद का भी उत्पादन करना हो तो उसे कुछ श्रमिकों की आवश्यकता होती है और एक निश्चित सीमा तक उत्पादन बढ़ने पर भी अतिरिक्त श्रमिकों की आवश्यकता नहीं होती है जब तक कि उत्पादन बहुत ज्यादा नहीं बढ़ाना पड़ता है और यदि इस सीमा से अधिक हमें पुनः उत्पादन बढ़ाना हो तो कुछ श्रमिकों को हमें और बढ़ाना पड़ेगा। परन्तु इतने श्रमिक पुनः इससे अगली सीमा तक उत्पादन वृद्धि के लिए उपयुक्त होंगे। परन्तु इसके विपरीत यदि हम कच्चे माल की लागत को देखें तो यह उत्पादन वृद्धि के साथ सीधे अनुपात में बढ़ता है इसके अतिरिक्त कुछ अन्य परिवर्तनशील लागतें भी होती हैं जैसे कि स्टैशनरी, बिजली के बिल इत्यादिं जो कि उत्पादन के स्तर पर भिन्न प्रंकार से बदलती है। यदि एक बार उत्पादन पर्याप्त स्तर पर पहुँच जाता है तो उसके बाद उत्पादन में वृद्धि बढ़ते हुए क्रम मे मंहगी हो जाती है। क्योंकि इस स्तर पर परिवर्तनशील लागत की वस्तुएं पहले की अपेक्षा ऊंचे दामों पर मिल सकतीं हैं या उपयुक्त मात्रा में नहीं मिल सकती हैं इसके अतिरिक्त भी कुल परिवर्तन लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध के रेखीय न होने के कारण उत्पादन प्रक्रिया घटते प्रतिफल के नियम के अनुसार हाता हैं

यह भी कह सकते हैं कि इस नियम के अनुसार जैसे जैसे किसी उत्पादन के स्थायी या स्थिर घटकों का सापेक्ष उत्पादन की परिवर्तनशील

घटक बढ़ते हैं उस परिवर्तनशील घटक के सीमान्त उत्पाद पहले बढ़ते है, फिर स्थिर रहते हैं तथा उसके बाद घटना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार से यदि साधन की कीमत दी हो तो कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि पहले उत्पादन के बढनेके साथ घटती है फिर स्थिर रहती है तथा उसके बाद बढ जाती है। यहॉ पर हमें यह कहना भी जरूरी है कि परिवर्तनशील लागत का साधारण व्यवहार उपर्युक्त वर्णन के अनुसार ही होता है परन्तु यह उत्पाद से उत्पाद भिन्न होता है। पूँजी प्रबल उत्पादों में साधारणतया प्रथम चरण श्रम प्रबल उत्पादों की अपेक्षा ज्यादा लम्बा होता है।

यदि हम कुल परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध के सम्बन्ध में देखें तो औसत परिवर्तनशील लागत फलनका व्यवहार ऐसा होगा कि यह पहले उत्पादन की वृद्धि के साथ गिरेगा, उसके बाद थोड़े से उत्पादन के लिए स्थिर हो जाता है तथा उसके बाद शनैः शनैः उत्पादन की प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ जाता है । चूँकि कुल स्थिर लागत उत्पादन के साथ बदलती नहीं है सीमान्त लागत कुल परिवर्तनशील लागत में बदलाव के बराबर हो जाती है। उत्पादन के सापेक्ष सीमान्त लागत में अन्तर औसत परिवर्तनशील लागत के समान होती हैं

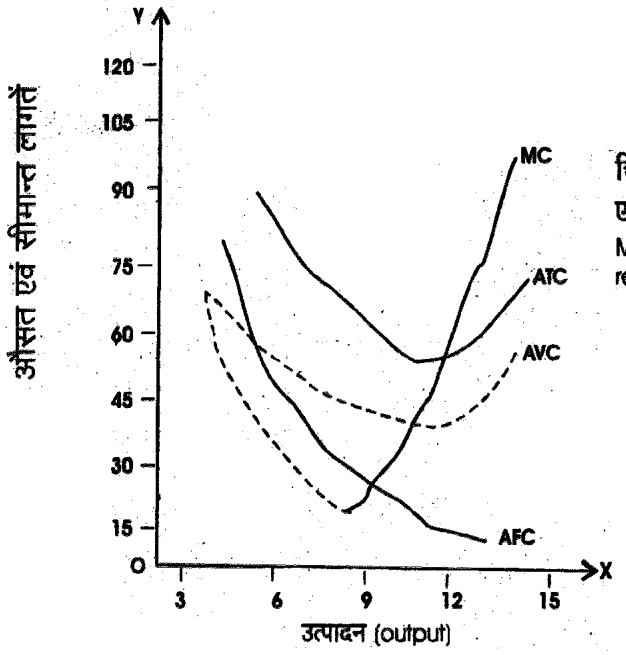

चित्र-2 औसत एवं सीमान्त लागत एवं उत्पादन सम्बन्ध (Average and Marignal cost and output relationship)

लागत उत्पादन सम्बन्ध के काल्पनिक उदाहरण के बारे में पीछे दी गयी तालिका एवं चित्र 1 एव 2 परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन के मध्य सैद्धान्तिक सम्बन्ध को दर्शाते हैं कुल परिवर्तनशील लागत एकरसता से शून्य उत्पादन पर शून्य से 15 इकाई उत्पादन पर 600रूपये तक बढ़ रही है। यह शून्य उत्पादन एवं 9इकाइ के बीच घटती दर से बढ़ता है। यह वृद्धि की दर

75 रू.से 16 रू. तक गिर रही है। इसकी वृद्धि दर उत्पादन स्तर के 8 से 9 या 9 से 10 तक बढ़ने पर समान है । उत्पादन की 10यूनिट के बाद कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि बढ़ती हुयी दर पर प्रदर्शित होती है। चित्र 1 में यह TVC वक्र में प्रदर्शित होता है। यहां पर यह गौर करने का विषय है कि वक्र उत्पत्ति के स्थान से निकलता हैं तथा नीचे से यह अवतल है। दी गयी तालिका में औसत परिवर्तनशील उत्पादन रेन्ज शून्य से 11 तक एकरसता से गिरती है। उत्पादन स्तर 11 एवं 12 पर स्थिर रहती है तथा 12 यूनिटों के उत्पादनस्तर के बाद एकरसता से बढ़ती हैं ।

चित्र 2 में AVC वक्र U आकार का है। सीमान्त लागत AVC वक्र की ही भांति व्यवहार करती है। यह उत्पादन स्तर 9 एवं 10पर न्यूनतम है। चित्र 2 MC वक्र भी U आकार का है।

6.2.3 कुल लागत एवं उत्पादन (Total cost and Output)

कुल लागत उत्पादन के बढ़ने पर बढ़ती है। अपने एक घटक के लिए (TVC) उत्पादन (output) का एक बढ़ता हुआ फलन हैं तथा इसका एक ही घटक TFC उत्पादन (output) के सभी स्तरों की दी गयी मूल्य पर लेता है। हमारे काल्पनिक उदाहरण में कुल लागत 176 रूपये हैं जब कि उत्पादन शून्य है तथा यह उत्पादन 15 यूनिटों पर 776 रूपये तक एकरसता से बढ़ता है । वक्र के समानान्तर है। (चित्र 1) TVC वक्र की ही भांति यह नीचे से अवतल है परन्तु पहले के असमानयह लागत अक्ष को एक धनात्मक बिन्दु पर काटती है। जो कि कुल स्थिर लागत के बराबर है।

औसत कुल लागत (ATC), जिसे औसत लागत भी कहते हैं पहले उत्पादन के बढ़ने के साथ गिरती है फिर कुछ उत्पादन (output) रेन्ज तक स्थिर रहती है तथा उसके उपरान्त उत्पादन के प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ती हैं । इस प्रकार का व्यवहार हमारे काल्पनिक उदाहरण (तालिका) में प्रदर्शित होता हैं तथा चित्र 2 में प्रदर्शित होता है। परिणामी ATC वक्र U आकार का है। ऐसा व्यवहार इसे दोनों घटकों AFC तथा AVC के कारण है। अत्यन्त कम मात्राओं पर ATC उच्च होता है चूंकि स्थिरलागत कुछ यूनिटों पर बंट जाती हैं जैसे जैसे मात्रा बढ़ती है स्थिर लागत और ज्यादा यूनिटों पर बंट जाती है। इसके अतिरिक्त परिवर्तनशील कारकों का प्रयोग ज्यादा कुशलता से किया जा सकता है। एक स्थिर संयंत्र एवं एक दूसरे की तुलना में जैसे जैसे मात्रा बढ़ती है किसी भी संयंत्र के आधार के अनुसार एक ऐसी अवस्था आती है जहॉ ATC अपने न्यूनतम स्तर पर होती है। लागत के हिसाब से इस

बिन्दु पर लागत की दृष्टि से उत्पादन का सबसे अनुकूलतम स्तर मिलता है इस बिन्दु के पश्चात ATC बढ़ती है। इसके बढ़नेका कारण परिवर्तनशील कारकों को पहले की भांति कुशलता से इस्तेमाल न कर पाना है। जब AVC,ATC की वृद्धि का महत्व AFC के कम होने के लाभसे अधिक हो जाताहै।

AVC, ATC एवं MC के मध्य सम्बन्धों को संक्षिप्त में निम्न प्रकार से दर्शा सकतें हैं।

(क) सभी तीनलागत माप पहले गिरती हैं फिर स्थिर रहती है। तथा उसके बाद उत्पादन (output) के वृद्धि के साथ बढ़ती है।

(ख) MC के परिवर्तन की दर AVC के परिवर्तन की दर से अधिक है तथा इसीलिए MC का न्यूनतम स्तर एक ऐसे उत्पादन (output) पर है जिस उत्पादन (output) पर AVC न्यूनतम है।

(ग) AVC = MC जब AVC सबसे कम है।

(घ) ATC = MC जब ATC सबसे कम है।

6.3 दीर्घकालीन लागत–उत्पादन सम्बन्ध (Long run Cost-Output Relationship)

दीर्घकाल में उत्पादन का कोई भी स्थिर कारक नहीं होता है। अतः कोई स्थिर लागत नहीं होती है। आंशिक कुल लागत फलन निम्न प्रकार से होता हैं ।

$$TC = f(x,k)$$

जहाँ का तात्पर्य संयंत्र (Plant) के आकार / क्षमता से है। जैसे-जैसे K परिवर्तित होता है, TC परिवर्तित होती है। अत: दीर्घ कालीन लागत फलन (3-14) में लघु कालीन लागत फलन का एक परिवाह है, जिसमें के प्रत्येक मूल्य के लिए एक है। यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि दिये गये उत्पादन (output) एवं संयंत्र आकार (plant size) पर कुल लागत में सम्बन्ध क्या है? यह सम्बन्ध एक दिशीय नहीं है। यदि उत्पादन (output) कम है, छोटे संयंत्र के लिए कुल लागत, बड़े संयंत्र के लिए कुल लागत से कम होगी तथा यह बड़े उत्पादन के लिए उल्टा होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बड़े संयंत्रों की अधिक क्षमता होने के कारण कम उत्पाद (output) पर इसकी कम क्षमता का प्रयोग होगा तथा छोटे संयंत्रों में अधिक उत्पादन (output) के लिए वे सक्षम नहीं होंगे। अत: लघुकालीन कुल लागत वक्र का परिवार प्रत्येक संयंत्र

आकार के लिए निम्नांकित चित्रों के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

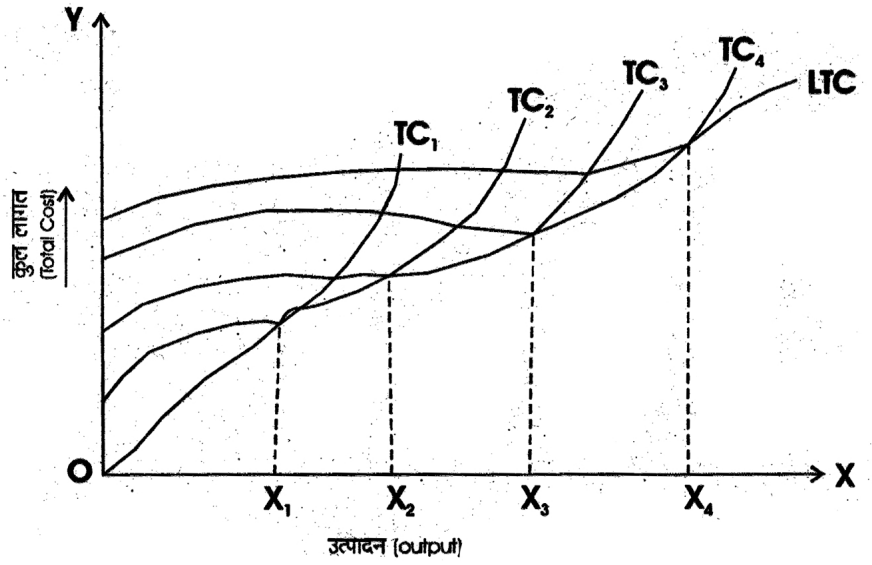

चित्र : 3(क) लघु कालीन कुल लागत वक्र (Short run total cost curve) लघुकाल में, वर्तमान स्थिर संयंत्र के द्वारा केवल संभव रेन्ज में ही उत्पादन में भिन्नता सम्भव होती है। परन्तु दीर्घकाल में संयंत्र के आकार एवं क्षमता के परिवर्तन करने की भी संभावना रहती है तथा सभी प्रकार की अपेक्षित भिन्नताएं सम्भव होती है। अत: दीर्घ कालीन लागतें उत्पादन (output) की लागतों के इन विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित होती है जो उत्पादन (production) के स्तर अथवा क्षमता को बदलकर प्राप्त किये जाते हैं।

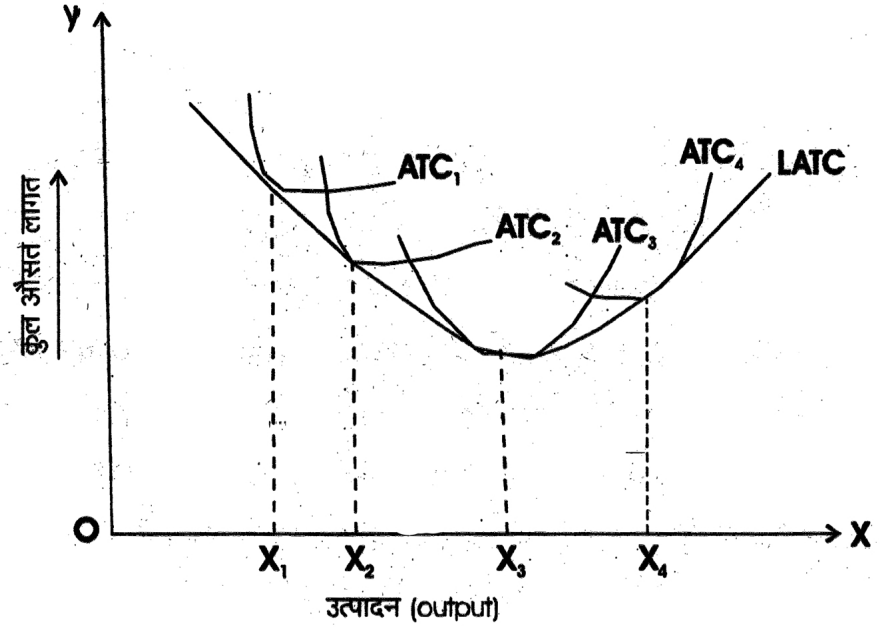

चित्र : 3(ख) लघु कालीन कुल लागत वक्र (Short run total average cost

curve)

लघु कालीन लागत वह न्यूनतम लागत है जिस पर कोई भी उद्यमी किसी दिये गये संयंत्र की क्षमता पर मनचाहा उत्पादन (production) कर सकता है। इसके विपरीत, दीर्घकालीन लागत वह न्यूनतम लागत होती है जिस पर कोई उद्यमी किसी भी संयंत्र क्षमता पर किसी भी उत्पादन (production) क्षमता को प्राप्त कर सकता है। अत: दीर्घ कालीन लागत वक्र लघु कालीन लागतों वक्रों के परिवार का एक "envelop" होता है जो कि चित्र (क) में प्रदर्शित है। इस चित्र में TC_1, TC_2 एवं TC_3 लघुकालीन लागत वक्र है। जबकि संयंत्र आकार/क्षमता 1, 2 एवं 3 इकाई क्रमश: हैं तथा LTC दीर्घकालीन कुललागत वक्र हैं। यह देखा गया है कि LTC, TC_1 से सभी मात्राओं के लिए कम है सिवाय x_1 के जो TC_2 से सभी मात्राओं के लिए कम है सिवाय x_2 के आदि। सम्बन्धित लघु कालीन औसत कुल लागत वक्र (ATC_1, ATC_2) तथा दीर्घ कालीन औसत कुल लागत वक्र (LATC) चित्र 3(ख) में निचले हिस्से में प्रतीत होते हैं। यह देखा गया है कि दीर्घकालीन एवं लघु कालीन औसत लागत वक्र को x_1, x_2 तथा x_3 बिन्दु के स्पर्श रेखा पर LATC एवं लघुकाल ATC वक्र के बीच ही समान हैं। उन बिन्दुओं की स्पर्श रेखाएं के न्यूनतम बिन्दु को केवल दीर्घकाल में दर्शाती है न कि लघु काल में। दीर्घकाल में औसत कुल लागत वक्र U आकार का होता है जिस प्रकार से लघुकालीन औसत कुल लागत वक्र होते हैं परन्तु पहले वाला दूसरे की अपेक्षा कुछ समतल होता है। अभिमापन की मित्वययिताएं एवं अमितव्ययिताएं इस U आकार के LATC वक्र के लिए जिम्मेदार होती हैं। अभिमापन की मितव्ययिताएं एवं अमित्वययिताएं हम भिन्न इकाई में पढ़ेंगे।

6.5 लागत–उत्पादन सम्बन्ध का मूल्यांकन (Estimation of Cost Output Relationship

पूर्व के सामग्री में हमने लागत - उत्पादन सम्बन्ध (Cost-output relationship) की प्रकृति का अध्ययन किया। इसमें हमें ज्ञात हुआ कि कुल लागत (total cost) उत्पादन (output) के साथ सीधे तौर पर परिवर्तित होती है। कुल लागत पहले धीमीदर से बढ़ती है, फिर स्थिर दर से बढ़ती है एवं इसके बाद बढ़ती हुई दर से बढ़ती है। औसत लागत एवं सीमान्त लागतों का परिणामी व्यवहार ऐसा होता है कि दोनों पहले गिरती हैं, अपने क्रमश: न्यूनतम स्तर पर पहुँचती हैं और उसके बाद बढ़ती है। इसका ज्ञान हमको उत्पादन (production) सम्बन्धी निर्णय क्षमता में आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक निर्णयकर्ता को यह भी जिज्ञासा होगी कि एक स्तर से दूसरे

स्तर तक उत्पादन (output) बढ़ाने पर औसत लागत में कितनी वृद्धि होगी? किस उत्पादन (output) स्तर पर औसत लागत न्यूनतम है? किस क्षमता का संयंत्र उसे स्थापित करना चाहिए। इत्यादि। इसे जानने के लिए हमें किसी फर्म का लागत-उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship) की अनुभव आधारित अध्ययन की आवश्यकता होगी।

लागत उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship) को मूल्यांकित करने के लिए हम निम्नांकित 3 विधियों का अध्ययन कर सकते हैं।

(क) लेखा विधि (Accounting Method)

(ख) अभियांत्रिक विधि (Engineering Method)

(ग) एकनोमेट्रिक विध (Economertric Method)

6.5.1 लेखा विधि (Accounting Method)

इस विधि के अन्तर्गत लागत उत्पादन सम्बन्ध (Cost output relationdhip) का आंकलन कुल लागत को स्थिर लागत (fixed cost) परिवर्तनशील लागत (variable cost) एवं अर्धपरिवर्तनशील लागत (semi-variable cost) में वर्गीकृत करके किया जाता है। इन घटकों को अलग - अलग करके मूल्यांकित किया जाता हैं। औसत परिवर्तशील लागत, वे सीमाएँ जिनके अन्तर्गत अर्ध परिवर्तनशील लागतें स्थिर होती हैं तथा स्थिर लागतों को निरीक्षण एवं अनुभव आधार पर मूल्यांकित किया जाता है। इतना करने के पश्चात् कुल लागत एवं उसके बाद औसत एवं सीमांत लागतों को उनके प्रत्येक उत्पादन (output) स्तर के लिए साधारण अंकगणितीय विधि (simple arithmetic) से ज्ञात कर लिया जाता है। लेखा विधि काफी साधारण प्रतीत होती है। इस विधि के द्वारा लागत-उत्पादन सम्बन्ध के अच्छे मूल्यांकन हेतु लेखा को विस्तृत रू से उसके अवयवों को अलग - अलग करके विभिन्न वर्षों का एक रिकार्ड बनाने की आवश्यकता होती है तथा व्यक्ति को उत्पादकता दर में इस दौरान होने वाले उतार-चढ़ाव का अनुभव होना चाहिए।

6.5.2 अभियानिन्त्रक विधि (Engineering Method)

अभियान्त्रिक विधि के द्वारा लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध का मूल्यांकन विभिन्न घटकों (input factors) के भौतिक यूनिटों के द्वारा निकाला जाता है उदाहरणार्थ छ संयंत्र, श्रम घण्टे, पदार्थ / माल का उपभोग एव दिये गये उत्पादन (output) के लिए अन्य लागत (inputs) यह मूल्यांकन अभ्यास कर्त्ताओं के

सयोजित या मिले जुले निर्णयों के द्वारा संयंत्र एवं मशीनों की दी गयी क्षमता दरों के आधार पर तथा लागत-उत्पादन (input outut norms) नियमों को दृष्टिगत करते हुए किया जाता है। यदि एक बार किसी उत्पादन स्तर (cutput level) की भौतिक इकाई को निकाल लिया जाता है, तो इनका गुणन सम्बन्धित वर्तमान या अपेक्षित साधन कीमत से कर दिया जाता है तथा आपस में जोड़कर उत्पादन स्तर (output level) के लिए लागत मूल्यांकन निकाला जाता है। यह अभ्यास विभिन्न मात्राओं के लिए दोहराया जाता है तथा इस प्रकार लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है। इस विधि को सफल प्रयोग के लिए लागत - उत्पादन (input output) नियमों का अच्छा अनुबव तथा साधन कीमतों में स्थिरता का होना आवश्यक है। इस प्रकार से विधि की सीमा/बन्धन (limitation) लेखा विधि की भाँति ही है। इस विधि का उपयोग लेखा विधि से ज्यादा महत्वपूर्ण उस दसा में हो सकता है। जब लेखा के रिकार्डों से लागत व्यवहार (cost behaviour) का एक व्यवस्थित इतिहास नहीं मालूम हो पाता हो या कुछ महत्वपूर्ण तकनीकी बदलाव अपेक्षित हो।

6.5.3 इकोनोमेट्रिक विधि (Econmetric Method)

इस विधि के अन्तर्गत लागत एवं उत्पादन (Output) के इतिहास का डाटा लागत-उत्पादन (Cost output) सम्बन्धों को मूल्यांकित करने में किया जाता है। पहले व्यवहारिक (Functional) रूप को चुना जाता है तथा फिर विधि को अपनाते हुए चुनित रूप को मूल्यांकित किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए निम्नांकित रूप होते हैं।

(a) Linear (रेखीय) $TC = a_1 + b_1x$

(b) Quadratic (चतुष्दिक) $TC = a_2 + b_2x + c_2 x_2$

(c) Cubic (घनाकार) $TC = a_3 + b_3x + c_3 x^2 + d_3x^3$

जहाँ x = उत्पादन (output)

$a_1, a_2, a_3, b_1, b_2, c_2, c_3$ एवं d_3 स्थिरांक है।

रेखीय कुल लागत फलन एक स्थिर सीमान्त लागत देती है तथा एकरसता से गिरते हुए औसत लागत वक्र को देती है। चतुष्दिक (quadratic) फलन U के आकार को औसत लागत वक्र का निर्माण करती है परन्तु यह एकरसता से बढ़ते हुए सीमान्त लागत वक्र पर लागू होता है। घनाकार लागत फलन (cost function) U आकार के औसत लागत वक्र एवं आकार के सीमान्त लागत वक्र दोनों के ही साथ एक समान होता है अतः यदि किसी को सद्धान्तिक लागत उत्पादन सम्बन्ध (theoritical cost

output relationship) की वैधता जाननी हो तो घनाकार लागत फलन की परिकल्पना करनी चाहिए।

इस विधि में हम समय-सारणी (time series) या Cross section डाटा का इस्तेमाल लागत-उत्पादन (cost output) सम्बन्ध को जानने में कर सकते हैं। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि यह केवल आंशिक लागत फलन को जानने में ही प्रयुक्त नहीं होती अर्थात् लागत-उत्पादन सम्बन्ध (cost output relationship), इस अवधारणा के साथ कि अन्य लागत के अवयव (जैसे की साधन-कीमत, साधन कुशलताएँ, तकनीकि इत्यादि) स्थिर हों, परन्तु व्यापक लागत फलन (Comprehensive cost function) को जानने में भी सहायक हैं जो लागत को प्रभावित करने वाले सभी कारकों की भिन्नता को अनुमति देता है। इसको हम साधारणतया साधन कीमतों, साधन उत्पादकताओं एवं तकनीकियों को फलन में अलग आकस्मिक भिन्न (variable) डालकर करते हैं। इसकी एक ही कमी यह है कि जिस वस्तु के लागत फलन की मात्रा निकालनी होती है उसका एक अच्छे लम्बे काल का एतिहासिक डाटा चाहिए होता है या अधिक से अधिक संख्या में उत्पादकों का रिकार्ड चाहिए होता है। चूंकि आज के सूचना प्रौद्योगिकी युग में डाटा को रिकार्ड करना तथा संचयित करना बहुत आसान हो गया है। अतः यह समस्या भी सहायक हो चुकी है। परन्तु इस पर भी यदि संयुक्त उत्पादों पर सहभागी लागत प्रयुक्त हो तो इस विधि का प्रयोग मुश्किल हो जाता है।

लेखा एवं अभियान्त्रिक विधियों का प्रयोग से Econometric Method ज्यादा सरल एवं सुगम है जबकि Econometric method का उपयोग राष्ट्रीय या औद्योगिक स्तर पर ज्यादा वांछनीय है। Econometric Method का प्रयोग आजकल काफी बढ़ गया है तथा समष्टि स्तर (Macro level) के साथ ही साथ व्यष्टि स्तर (Micro level) पर भी उसके प्रयोग के अच्छे लक्षण हैं।

लागत - उत्पादन (Cost output) सम्बन्ध के मूल्यांकन के विभिन्न उपयोग हैं उदाहरणार्थ-

(क) स्थिर संयंत्र एवं उपकरणों के आकार / क्षमता का अनुकूलतम स्तर जानने के लिए

(ख) किसी दिये गये संयंत्र क्षमता का अनुकूलतम उत्पादन (output) जानने के लिए

(ग) पूर्ति फलन (supply function) को जानने के लिए

6.6 सारांश

लघु कालीन लागत-उत्पादन सम्बन्ध अनुकूलतम उत्पादन स्तर को एवं लघु कालीन पूर्ति फलन को जानने में सहायक होते हैं तथा दीर्घ कालीन पूर्ति सम्बन्ध (Long run supply relations) संयंत्र के अनुकूलतम क्षमता को एवं दीर्घकालीन पूर्ति फलन जानने में सहायक होते हैं। जब कोई उद्यमी अपने output को बढ़ाने अथवा घटाने के बारे में विचार करता है तो अनुकूलतम उत्पादन (optimum output) के ज्ञान का होना महत्वपूर्ण होता है जबकि अनुकूलतम स्तर अथवा संयंत्र क्षमता का ज्ञान जब ज्यादा आवश्यक होती है जब किसी पुराने संयंत्र की क्षमता को बढ़ाना हो या नया संयंत्र लगाना हो।

6.7 अन्य चयनित पाठन

(1) Managerial Economics by Maheshwari

(2) Text Book of Economics by Boyes

(3) Managerial Economics by Dean

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन by ए० के० अग्रवाल

6.8 सन्दर्भ पुस्तकें

(1) Managerial Economics by Mote, Paul & Gupta

(2) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त by एच०एल० आहूजा

(3) Managerial Economics by Thaumas Maurice

6.9 स्व–परख प्रश्न

प्र०-1 लागत से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार की होती है?

प्र०-2 लघु-कालीन लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को समझाइये।

प्र०-3 दीर्घ कालीन लागत प्रतिफल के सम्बन्ध को समझाइये।

प्र०-4 स्थिर लागत एवं उत्पादन में सम्बन्ध समझाइये।

प्र०-5 स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत में अन्तर स्पष्ट करें।

प्र०-6 कुल लागत से आप क्या समझते हैं ? इसका उत्पादन में क्या महत्व है।

प्र०-7 आप लागत-उत्पादन सम्बंध का मूल्यांकन कैसे करेंगे?

प्र०-8 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

1- लेखा विधि

2- अभियांत्रिक विधि

3- एकनोमेट्रिक विधि

खण्ड

3

बाजार

इकाई - 1 5
पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण

इकाई - 2 26
अपूर्ण या एकाधिकृत एवं एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत निर्णय

इकाई - 3 44
अल्पाधिकार

इकाई - 4 61
गैर कीमत प्रतिस्पर्धा

इकाई - 5 72
कीमत विभेद

इकाई - 6 84
उत्पादन विभेदन

RIL-082

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 नागेन्द्र यादव	एसोसिएट प्रोफेसर, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-3 परिचय

प्रस्तुत खण्ड 3 को 6 इकाईयों में विभक्त किया गया है। इकाई-1 में पूर्णप्रतियोगिता की विशेषताओं को बताते हैं, इस बाजार, में कीमत निर्धारण की विधि का उल्लेख किया गया है।

इकाई - 2 अपूर्ण या एकाधिकृत प्रतियोगिता एक अधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण से सम्बन्धित है। इस इकाई में अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार को बीच अन्तर का विवरण भी दिया गया है।

अल्पाधिकार की विशेषतायें एवं कीमत निर्धारण की विस्तृत व्याख्या इकाई-3 में की गयी है।

इकाई- 4 गैर-कीमत प्रतिसपर्द्धा से सम्बन्धित है। इस इकाई में गैर कीमत प्रतिस्पर्द्धा के विभिन्न स्वरूपों का विस्तार में वर्णन किया गया है।

अलग-अलग क्रेताओं से अलग-अलग मूल्य लेना अर्थात् कीमत - विभेद की व्याख्या इकाई - 5 में की गयी है।

इकाई - 6 उत्पादन विभेदन से सम्बन्धित है जिसके उत्पाद विभेदन नीति के अन्तर्गत विभिन्न अवयवों की विस्तृत चर्चा की गयी है जो उत्पाद विभेदीकरण में सहायक होते हैं।

RIL-082

इकाई 1 : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण

इकाई की संरचना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 बाजारः भाषाएं

1.4 बाजार की सीमाएं

1.5 पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति में कीमत निर्धारण

1.6 पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण– दो सिद्धान्त

1.6.1 उत्पादन की लागत सिद्धान्त

उत्पादन की लागत सिद्धान्त : तीन प्रश्न

1.6.2 उपयोगिता सिद्धान्त

1.7 साम्यावस्था

1.7.1 साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार

1.8 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत निर्धारणः तीन अवस्थाएं

1.8.1 बाजार काल में कीमत निर्धारण

1.8.2 लघुकाल में कीमत निर्धारण

1.8.3 दीर्घकाल में कीमत निर्धारण

1.9 सारांश

1.10 महत्वपूर्ण शब्द

1.11 अन्य चयनित पाठन

1.12 सन्दर्भ पुस्तके

1.13 स्व.परख प्रश्न

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्रों को–

- बाजारों की प्रकृति को समझने में मदद मिलेगी

- विभिन्न स्थितियों में कीमत निर्धारण को समझने को मिलेगा
- बाजारों का वर्गीकरण को जानने में सहायता होगी।
- पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण के विश्लेषण में
- उत्पादों की लागत के निर्धारण को क्रियान्दित करने में
- कीमत परिवर्तन के प्रभाव को माग एवं पूर्ति के सापेक्ष विश्लेषित करने में ।

1.2 प्रस्तावना :

जब भी हम प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों के वर्गीकरण की बात करते है तो हमें उस बाजार विशेष में अपने बने रहने के लिए कीमत निर्धारण की प्रक्रिया एवं रणनीति को समझना अति आवश्यक होता है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मुख्यतः उत्पादों के बीच कोई विभेद नहीं होता है तथा क्रेता एवं विक्रेता अधिसंख्या होते है इस प्रकार के वातावरण की कीमत निर्धारण एक अत्यन्त ही जटिल प्रक्रिया प्रतीत होता है। अर्थात यदि बाजार में उत्पाद संमरूप है। फर्मो को आगमन एवं वहिगमन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो, उपभोक्ता को बाजार के बारे में पूर्ण ज्ञान है, तथा परिवहन लागतों को अभाव हो तो इस प्रकार की दशा में कीमत निर्धारण एक जटिल परन्तु महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। इस इकाई मे हम बाजार के विभिन्न वर्गीकरण को समझने के साथ ही साथ पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगें।

1.3 बाजारः परिभाषाएं

बाजारः बाजार से हमारा तात्पर्य केवल एक स्थान मात्र नहीं है जिसके अन्तर्गत कारोबार एक प्रकार से एक प्रक्रिया होती है जिसके अन्तर्गत कारोबार के लिए सौदेबाजी की जाती है। ये तुरंत विक्रय या भविष्य विक्रम के रूप में भी हो सकता है। वास्तविक रूप में बाजार एक ऐसा स्थान होता है जहॉ क्रेता एव विक्रेता एक स्थान पर अपने कारोबार को अंजाम देने के लिए एकत्र होते है तथा सौदेबाजी के द्वारा अपने अपने लाभ को बनाएं रखते हुए व्यापार करने के लिए स्वतन्त्र होते है।

बाजार को हम विभिन्न प्रकार से परिभाषित करते है । उदाहरणार्थ बाजार की महत्वपूर्ण वस्तुओं (Coomodity) के आधार पर वर्गीकृत कर सकते है जो प्राथमिक रूप से प्रारम्भिक उत्पाद को (Primany Procucers)

के द्वारा निर्धारित होते है। इसके अतिरिक्त बाजार निर्माता उत्पाद का आधार पर, कारखाने क्षेत्र के आधार पर या अन्य बिना कारखाने के क्षेत्र जिनके अन्तर्गत ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग भी शामिल है।

सेवा क्षेत्र के बाजार को कारक बाजार (Factor Markets) भी कहते है: N L K-O1 एवं E इनसे हमारा तात्पर्य: N Natural Resource (प्राकृतिक संसाधन) L : Labour (श्रमिक के रूप में प्राथमिक कारकों से हैं) K को हम (Capital) पूँजी (आर्थिक अथवा वास्तविक), OT को हम संगठन एवं तकनीकि (Organisation and technology) तथा E; को हम Entrepreneur (उद्यमी) के रूप में समझ सकते है।

उपर्युक्त कारकों से हम ये समझ सकते है कि किसी भी उत्पाद के बनने में किन स्तर की वस्तुओं अथवा विषयों की आवश्यकता होती है । क्रेता एवं निर्माता की दृष्टि से हम बाजार को निम्नांकित प्रकार से परिभाषित कर सकते है।

(i) MONOPOLY MARKETS (एकाधिकार बाजार) वे बाजार होते है जहॉ केवल एक ही निर्माता/विक्रेता हो तथा बहुत सारे क्रेता हो। साधारणतः इस प्रकार के बाजारे में वस्तुओं की मांग उत्पादन से अधिक होता है।

(ii) Duopoly Markets (द्विअधिकार बाजार) वे बाजार होते है जहॉ दो निर्माता/विक्रेता होते है तथा बहुत सारे उपभोक्ता या क्रेता होते है।

(iii) Oligopoly Markets (ओलीगोपोली बाजार) वे बाजार होते है जहॉ दो से अधिक परन्तु कुछ ही निर्माता अथवा विक्रेता होते है परन्तु क्रेता अथवा उपभोक्ता कई सारे होते है।

(iv) Perfect Competition true Competition- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार इस प्रकार के बाजारों की प्रकृति को हम मोनोपोलिस्टिक प्रतियोगिता आधारित बाजार के समान ही पाते है परन्तु मुख्य अन्तर उत्पादों की एक रूपता होती है। अर्थात विक्रेता/उत्पाद एवं क्रेता/उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होती है। उदाहरणार्थ पेट्रोल, चीनी, नमक, खाद्यान्न जैसी वस्तुए इस श्रेणी में आती है।

(v) Monopolistic competition : इस प्रकार के बाजार में प्रकार के उत्पाद होते है तथा बहुत सारे उपभोक्ता भी होते है। परन्तु उत्पादों

में विभिन्नता होती है जिस कारण उत्पादक अपने उत्पादों को एक दूसरे से अलग दिखाने में समर्थ होते है। इस प्रकार के उत्पादों के उदाहरण साबुन, कार, मोटर साइकिल, टूथपेस्ट इत्यादि हो सकते है।

किसी भी बाजार की अर्थ व्यवस्था इसके क्रेता एवं विक्रेता के सामन्जस्य के द्वारा स्थापित होती है जिसमें कि उत्पादों की गुण विशेषताओं का उत्यन्त महत्व है।

कुरनॉट (Cournot) के अनुसार, अर्थशास्त्रियॉ की समझ से बाजार शब्द का मतलब किसी स्थान मात्र से नही होती है जहॉ वस्तुओं को खरीदा या बेचा जाता है परन्तु यह वह सम्पूर्ण स्थान होता है जहॉ क्रेता एवं विक्रेता एक दूसरे से इस तरह से स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करते है कि समान वस्तुओं के मूल्य समान, आसानी से एवं शीघ्रता से प्रतीत होता है।

बेनहम (Benham) के अनुसार 'हम बाजार को ऐसे परिभाषित कर सकते है कि यह वह स्थान है जहॉ क्रेता एवं विक्रेता एक दूसरे से सीधे और तौर पर या किसी डीलर के द्वारा इस प्रकार आपस में सम्बन्धित होते है कि यदि बाजार के एक भाग में मूल्य के प्राप्ति पर कुछ प्रभाव होता है तो वह बाजार के अन्य भागों में मूल्य के देने को प्रभावित करता है।

इस प्रकार उपयुक्त विवरण के पश्चात हम बाजार के मुख्य अवयवों को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते है।

1— एक बाजार के अन्तर्गत वस्तुओं एवं Commodity दोनों को ही क्रय एवं विक्रय होता है। Commodity बाजार एवं वस्तु बाजार को उत्पाद बाजार, कहते है। सेवा बाजार को हम गुणांक बाजार (Factor Market) कहते है।

उदाहरणार्थ जब दर्जी किसी कमीज को सिलता है तब उसकी मजदूरी (सिलाई) बिकती है। जब कोई पूँजीवादी व्यक्ति ब्याज पर किसी को धन देता है तो पूँजी बिकती है।

2— क्रेता एवं विक्रेता का किसी स्थान पर वास्तविक रूप से मिलना आवश्यक नही है, परन्तु इनका आपस में एक से आपस में सम्बन्ध होना आवश्यक होता है जिस स्थान पर भी वे मिलते है उस स्थान को बाजार कहा जाता है । यदि वे दोनों एक स्थान पर नही मिलते

है तथा अलग–अलग स्थानों से ही खरीदते तथा बेचते है तो उनको आवश्यक रूप से मॉग एवं पूर्ति से सम्बन्धित स्थितियों की जानकारी होनी चाहिए तथा साथ ही साथ वस्तुओं की गुणवत्ता का भी ज्ञान होना चाहिए जिस पर उनका मूल्य निर्धारित होता है ।

3– कोई भी बाजार एक स्थान हो सकता है एक क्षेत्र हो सकता है। एक देश हो सकता है या सम्पूर्ण विश्व भी हो सकता है ।

1.4 बाजार की सीमाएं

बाजार की सीमाओं से हमारा तात्पर्य बाजार के परिक्षेत्र से है अर्थात बाजार किसी क्षेत्र तक सीमित हो सकता है । एक बड़े बाजार का तात्पर्य उस बाजार से होता है जिसके अन्तर्गत आने वाले क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है । उस बाजार में ज्यादा वस्तुओं को खरीदा एवं बेचा जाता है। वस्तुओं को बहुत अधिक विस्तृत क्षेत्र में बेचा जाता है । जब भी बहुत ज्यादा मात्राओ को बेचा जाता है । तो पहले उनको एक केन्द्रित क्षेत्र में बेचा जाता है तथा जैसे जैसे अधिक क्रेता एवं विक्रेता मिलते जाते है वेसे वैसे बाजार का क्षेत्रफल बढ जाता है ।

किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए बजारों का विस्तृत होना अति आवश्यक होता हैं इसके कई सारे लाभ होते है ।

1– उत्पादको को विक्रय से अधिक लाभ होता है ।

2– उत्पादक ज्यादा बचत कर सकते है तथा अधिक पूँजी प्राप्त कर सकते है।

3– संयंत्र की क्षमता एवं उत्पादन में वृद्वि की जा सकती है ।

4– अधिक लाभ होने पर आधुनिकतम तकनीकि एवं श्रम विभाजन का उपयोग किया जा सकता है । इत्यादि

इससे कर्मचारियों को भी लाभ मिलता है । उन्हे अधिक रोजगार, अधिक भत्ते तथा जीवन एवं कार्यशाला में अधिक अच्छी एवं गुणवत्तापरक शैली अपनाने का मौका मिलता है जो कि औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक होता हैं सभी को इससे फायदा होता है जैसे कि जन सामान्य की आय बढ़ जाती है रोजगार के अवसर प्राप्त होते है आदि । सरकार के भी बढी हुयी आय से टैक्स के रूप में तथा बिक्रीकर के रूप अधिक लाभ होता है ।

अधिक मात्रा एवं गुणवत्ता वाली वस्तुओ के निर्माण से निर्यात के अवसर मिलते है जिससे कि विदेशी मुद्रा के अर्जन में सहायता मिलती है । जब किसी देश में रोजगार, आयख भत्ते, लाभ तथा बचत में वृद्वि होती है तो सरकार एवं देश दोनो ही लाभान्वित होते है ।

1.5 पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति कीमत निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण विक्रेताओं की संख्या के आधार पर किया गया है । पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में प्रायः विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक होती है तथा क्रेता भी संख्या में अत्यधिक होते है परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत इसमें उत्पादों का विभेदीकरण नही होता है अर्थात वस्तुएं समरूप होती है । इसके अतिरिक्त फर्मो का इस प्रकार के बाजार में स्वतन्त्र रूप से प्रवेश एवं बहिर्गमन होता हैं, बाजार का उपभोक्ता को पूर्ण ज्ञान होता है तथा उत्पादों की उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता होती है । बाजार में किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही होता है तथा वस्तुओं के प्रति हमको लागतो का अभाव होता है । वस्तुओं की कीमते भी प्रायः समान ही होती है । यदि हम अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) बाजार को समझने का प्रयास करे तो इसमें भी अधिक संख्या क्रेता एवं विक्रेता होते है परन्तु व्यवहारिक तौर पर विक्रताओं की संख्या तुलनात्मक रूप से कम ही होती है । इसके अतिरिक्त अपूर्ण बाजार की विशेषताओ के अन्तर्गत वस्तुओं का विभेदन प्रायः पाया जाता है तथा तुलनात्मक रूप से क्रेताओं एवं विक्रेताओं में ज्ञान की कमी होती है तथा वितरण लागत में अधिकता होती है। अब हम पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत निर्धारण का अध्ययन करेगे।

पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं को हम उपर्युक्त व्याख्या में पढ चुके है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतो का निर्धारण समूचे उद्योग की मूल माँग (Total Demand) तथा कुल पूर्ति (Total Supply) के द्वारा होता है । इसमें किसी भी एक क्रेता या विक्रेता के द्वारा किये गये क्रय या विक्रय से वस्तु की कीमत पर कोई प्रभाव नही होता है । उद्योग की फर्म किसी दी हुई कीमत पर अपने उत्पादन की मॉग को इस प्रकार समायोजित करती है कि उसकी सीमान्त लागत (Marginal Price) सीमान्त आगम (Marginal Revenue) के समान हो जाए । साम्य कीमत (Equilibrium Price) का निर्धारण उद्योग के मॉग वक्र एवं पूर्ति वक्र के द्वारा होता है। उद्योग के द्वारा कीमत का

निर्धारण होता है जबकि फर्म इस कीमत को स्वीकार करती है अर्थात उद्योग कीमत निर्धारक (Price Maker) होता है जबकि फर्म कीमत ग्राही (Price Taker) होती है । निम्म चित्र में हम इसको आसानी से समझ सकते है।

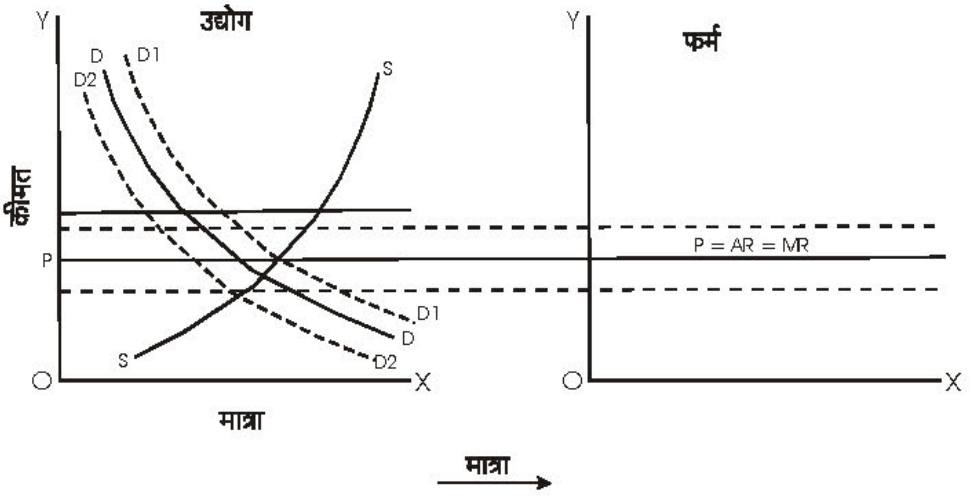

चित्र–1

इस प्रकार से हम देखते है कि पूर्ण प्रतियोगिता में कीमतो का निर्धारण मॉग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है । पूर्ण प्रतियोगिता में सम्पूर्ण बाजार में केवल एक ही कीमत होती है । मॉग –पूर्ति का परिवर्तन कीमत को प्रभावित करता है। अर्थात मॉग बढ़ने पर कीमत बढती है तथा मॉग घटने पर कीमत घटेगी। उद्योग जहॉ कीमत का निर्धारण करता है वही फर्म इस कीमत को स्वीकार करती है । फर्म इस दी गयी कीमत के अनुसार केवल उत्पादन की मात्रा का ही समयोजन करने मे सक्षम होती है । पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत औसत आगम (Average Revenue) तथा सीमान्त आगम (Marginal Revenue) तीनों समान होते है अर्थात Price = Average Revenue (कीमत = औसत आगम = सीमान्त आगम) ।

1.6 पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारणः दो सिद्वान्त

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धाधरण के लिए निन्नांकित दो सिद्वान्त उत्पादन की लागत सिद्वान्त (Cost of Production Theory) एवं उपयोगिता सिद्वान्त (Utility Theory) दी गयी है । उत्पादन की लागत सिद्वान्त के अनुसार P = Cop (कीमत = उत्पादन की लागत) के रूप मे होती है तथा दूसरे सिद्वान्त के अनुसार P = Mu (Price = Marginal Utility) अथवा कीमत. = सीमान्त उपयोगिता) होता है।

1.6.1 उत्पादन की लागत सिद्वान्त (Cost of Production Theory)

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण के इस सिद्वान्तानुसार कीमत दार्घ काल में उत्पादन की लागत के समान होती है तथा होना चाहिए भी। परन्तु इस उत्पादन लागत में सामान्य लाभ की सम्मिलित होना चाहिए। अर्थात यदि हम कहे कि कीमत उत्पादन की लागत के समान है तो तात्पर्य यह नही कि इस स्थिति न तो लाभ है और न ही हानि है। ऐसा इसलिए होता है कि उत्पादन की लागत में सभी पॉच उत्पादन के कारकों किराया, (Rent) मजदूरी, (Wages) ब्याज, (interest) वेतन, (Salary) एवं सामान्य लाभ (normal profts) की पूर्ति होती अथवा सम्मिलित होते है ।

1.6.1.1 उत्पादन की लागत सिद्वान्त की आलोचना :

(1) इस सिद्वान्त की आलोचना के फलस्वरूप यदि कीमत उत्पादन की लागत के समान है एक ही माग की इकाइयों को विभिन्न मूल्यों पर क्यों बेचा जाता है जबकि उनकी उत्पादन लागतों को समान होना चाहिए था या समान थी ।

इस आलोचना का उत्तर यह है कि कीमते भूतकालीन उत्पादन लागतों के समान नही होती है अपितु वर्तमान उत्पादन लागतों के समान होती है और समयानुसार इस उत्पादन लागतों में बदलाव के कारण कीमतों भी बदल जाएंगी ।

(2) दूसरी आलोचना यह थी कि कुछ उत्पाद किसी कीमत को क्यों नही नियंत्रित कर सकते है जबकि उनके उत्पादन मे भी लागत लगती है । यदि पढ़े लिखे लोगो के समान में एक पढ़ाई नही बिक पाती है तो इसकी व्याख्या इस कैसे करेंगे ।

इस आलोचना का उत्तर यह मिला कि उपयोगिता की भी वस्तु के क्रय में भूमिका होती है परन्तु यह केवल आंशिक ही होती है । उत्पादन की लागत पूर्ति की तरफ से होती है। पूर्ति की तरफ से हम अभाव तत्वों को लेते है जो कि उत्पादन की लागत को प्रभावित करते हैं उपयोग मूल्य (use values) इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है कि उपभोक्ता इनमें उपयोगिता को समझे तथा कीमत के द्वारा इस उपयोग मूल्य को आदान प्रदान करे।

(3) तीसरी आलोचना यह थी या है कि क्यो कुछ वस्तुएं अधिक मूल्य पर बिक जाती है जबकि उनकी उत्पादन कीमते इतनी अधिक नही होती है।

उदाहरणर्थ पिकासों की चित्रकारियॉ आदि। इसका उत्तर यह है कि ये वस्तुएं अत्यन्त अभाव में है । उत्पादन की लागत या सिद्वान्त अभाव या कमी वाली वस्तुओं के लिए नही है । वरन सामान्य वस्तुओ के लिए है।

1.6.2 उपयोगिता सिद्वान्त (Utility Theory)

ऑस्ट्रिया के अर्थशास्त्री के द्वारा दिये गये उपयोगिता सिद्वान्त के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को किसी वस्तु में अधिक उपयोगिता नजर आती है तो उसकी उत्पादन लागत कम होने पर भी इसकों अधिक कीमत पर खरीदा जा सकता है । इसके विपरीत किसी अधिक उत्पादन लागत से बनी वस्तु को अधिक उपयोगिता समझ में न आने पर वस्तु की कीमत कम हो सकती है । इस प्रकार से उपयोगिता ही किसी वस्तु अथवा सेवा के कीमत का मुख्य निर्धारक तत्व होता है ।

1.7 साम्यावस्था (Equilibrium)

वस्तु की मॉग एवं पूर्ति तथा कीमत निर्धारण : किसी वस्तु की मांग उसकी उपयोगिता तथा कीमत दोनों पर ही निर्भर करती है । किसी वस्तु या सेवा की मांग इसलिए होती है क्यो कि वह किसी व्यक्ति की आवश्यकता या इच्छा को सन्तुष्ट करती है । यदि बाकी की स्थितियॉ समान हो तो अधिक उपयोगिता होने पर वस्तु की मॉग बढ़ जाती है इस प्रकार से वस्तु की मॉग एवं कीमत मे सीधा सम्बन्ध होने पर हम यह भी कह सकते है कि वस्तु की उपयोगिता एवं कीमत में भी सीधा सम्बन्ध होता है किसी वस्तु की मांग इसकी कीमत में वृद्वि पर घट जाती है तथा कीमत में हानि पर यह बढ़ जाती है। इस प्रकार मॉग वक्र दाहिनी ओर नीचे की तरफ झुका होता है किसी भी वस्तु की उपयोगिता उसकी उच्चतम सीमा होती है उसके बाद उपभोक्ता और कीमत अधिक नही देगा।

पूर्ति : पूर्ति उत्पादन का ही एक भाग होता है ± स्टॉक (stock) जो बाजार में किसी दिये गये कीमत पर बेचने के लिए लाया जाता है। जिस प्रकार कीमत के बिना मॉग को नही दर्शाया नही जा सकता है उसी प्रकार पूर्ति को भी कीमत के बिना दर्शाया नहीं जा सकता है। यदि किसी वस्तु का मूल्य उतना गिर जाए कि उत्पादन की लागत को भी समायोजित न कर पाए तो यह पूर्ति ,स्टॉक मे ही रह जाती है । पूर्ति की लोच को हम निम्न प्रकार से समझ सकते है।

पूर्ति प्रतिक्रिया : पूर्ति प्रतिक्रिया हमारा तात्पर्य मॉग के अनुसार पूर्ति को घटाने या बढाने से है । यदि हम मॉग मे वृद्वि के अनुसार पूर्ति में वृद्वि के लिए सभी संसाधनों का उचित उपयोग करने मे सक्षम हो जाते है तो इसे धनात्मक पूर्ति प्रतिक्रिया कहेगे ।

लोचपूर्ण पूर्ति : जब हम पूर्ति को कीमत में कमी होने के कारण उसी के अनुरूप कम कर देते है या मूल्य में वृद्वि हो जाने के कारण पूर्ति को उसी अनुपात में बढा देते है ।

शून्य पूर्तिः जब किसी भी मूल्य पर पूर्ति मात्रा में अपरिवर्तित या अभिन्न रहती है।

अनन्त पूर्ति : पूर्ण लोच पूर्ति : जब कीमत में बिना किसी बदलाव के पूर्ति में कोई बदलाव आता है। यह प्रायः कृषि–मौसम या प्राकृतिक बदलाख के कारण होता है।

अत्याधिक लोचपूर्ण पूर्तिः जब कीमत में कम प्रतिशत में बदलाव के परिणाम स्वरूप पूर्ति में समान दिशा में बदलाव अनुपात से अधिक होता है तो उसे अत्यधिक लोचपूर्ण कहते है।

कम लोचपूर्ण पूर्ति : जब पूर्ति में प्रतिशत बदलाव कीमत में प्रतिशत बदलाव से उसी दिशा में अनुपालन से कम होता है।

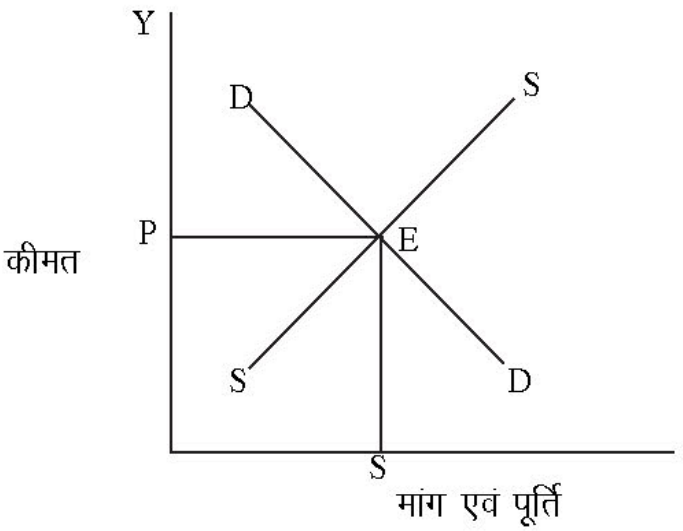

उपर्युक्त चित्र में मांग पूर्ति वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है। यदि E से एक लम्बा क्षैतिज रेखा पर डालते है तो ES प्राप्त होता है जो कि साम्य

पूर्ति कहलाती है। जो कि OP कीमत पर बिकती है तथा OS कुल पूर्ति भी है तथा कुल मॉग भी होती है।

प्रति इकाई कीमत	माँग : इकाईयाँ	पूर्ति : इकाईयाँ
10	1000	---
12	750	250
13	500	500
14	250	750
15	00	1000

10 सबसे की कीमत पर पूर्ति शून्य है। इसका मतलब यह नही है कि स्टॉक भी शून्य है। यह एक आरक्षित कीमत है जिस पर कि अभिप्रित पूर्ति को पूर्ति में बदला जा सकता था। यदि केवल अभिप्रिय पूर्ति पर ही सामान बाजार में ले पाया जाएगा तो इसमें परिवहन लागत खर्च होगी। स्टॉफ में भी वहॉ परिवर्तन हो जाएगा और यहॉ ब्याज में क्षति भी हो सकती है। अतः पूर्तिकर्त्ता अगले समय अधिक पर वस्तुओं को बेचने का निर्णाय लेगा। वस्तुएं आसानी से खराब हो जाने वाली या सड़ने वाली (Perishable) हों तो कोई भी आरक्षित कीमत नहीं हो सकती है। वास्तविक रूप में विक्रेता को जब सारा सामान क्षय होने का भय हो तो वह किसी भी मूल्य पर बेच सकता है। इसे हम बचाव कीमत (Salvage Price) कहते हैं। रु0 13 की कीमत पर D एवं S समान हैं और रू0 15 पर मॉग को शून्य दिखाया है जो आसानी से नही होती हैं। शून्य मॉग प्रायः कीमत के अतिरिक्त किसी कारण से होती है।

साम्य कीमते, साम्य उत्पादन (Output) एवं सामय मॉग कभी स्थायी नहीं होती है। मॉग अथवा पूर्ति के किसी भी बदलाव होने से कीमत में बललाव आ जाता है। इसी प्रकार कीमत में बदलाव के कारण भी मॉग बदलाव आ जाता है। इसी प्रकार कीमत में बदलाव के कारण भी मॉग एवं पूर्ति में भी बदलाव हो जाता है। यह सम्बन्ध प्रायः वृत्ताकार होता है। साम्यावस्था क्षणभंगुर प्रकृति की होती है। जब मांग एवं पूर्ति के द्वारा कीमत का निर्धारित होता है तो हम कीमत नियमों का अध्ययन करते हैं। जब कीमत के द्वारा मॉग एवं पूर्ति में बदलाव आता है तो हम मॉग एवं पूर्ति के नियम का अध्ययन करते हैं।

साम्यावस्था → असाम्यावस्था → साम्यावस्था → असाम्यावस्था,

एक श्रृंखला में आती है परन्तु भिन्न–भिन्न कीमतें देती है।

इस प्रकार से हम निम्न रूप में कह सकते है :

- जब मॉग फलन बेहतर होता है तो कह सकते है
- जब मॉग फलन गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब पूर्ति फलन गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब पूर्ति गिरता है तो कीमतें गिरती है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन बेहतर होता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन गिरता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो पूर्ति फलन गिरता है।
- जब कीमतें बढ़ती है तो मॉग फलन बढ़ता है।

1.7.1 साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार :

पूर्ण प्रतियोगिता स्थिति में साम्य कीमतों संकलित (aggregate) पूर्ति एवं मॉग पर निर्भर करती है। उत्पादन की लागतें (पूर्ति आधारित) तथा उपयोगिता (मांग आधारित) दोनों ही महत्वपूर्ण होते है तथा एक कैंची के दो फलक्रम है। यदि कीमत की साम्यावस्थय एक बार प्राप्त कर भी लो जाए तो इसमें पूर्ति अथवा मॉग में से किसी एक में अथवा दोनों में बदलाव आने से कीमत में बदलाव हो जाता है।

निम्नांकित सारणी में आठ प्रकार के बदलावों को देखा जा सकता है।

	माँग	पूर्ति	कीमत
1.	समान रहती है	बढ़ती है	घटती है।
2.	समान रहती है	गिरती है	बढ़ती है।
3.	बढ़ती है।	समान रहती है।	बढ़ती है
4.	गिरती है।	समान रहती है।	गिरती है।
5.	बढ़ती है (समान अनुपात में)	बढ़ती है।	समान रहती है।
6.	गिरती है।	बढ़ती है।	तेजी से गिरती है।

7.	बढ़ती है	गिरती है।	तेजी से बढ़ती है।
8.	(क) गिरती है।	गिरती है।	कीमत उस कारक
	(यदि दोनों सामन मात्रा में		से प्रभावित होगी
	गिरते हैं तो कोई बदलाब		जो ज्यादा तेजी
	नहीं)		से बदलता है।)
	(ख) बढ़ती है।	बढ़ती है।	
	(अनुपात भिन्न करते हैं)		

1.8 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत निर्धारण : तीन अवस्थाएं

कीमत निर्धारण के लिए—कीमत स्तर एवं इसकी भिन्नता—मॉग में बदलाव के कारण पूर्ति के बदलाव में लिए गये समय पर निर्भर करती है। पूर्ण प्रतियोगिता को स्थिति में कीमत का निर्धारण निम्नांकित तीन अवस्थाओं में ज्ञात किया जा सकता है।

(क) बाजार काल अथवा अतिलधुकालीन (Market Period)

(ख) लघुकालीन (Short run)

(ग) दीर्घ कालीन (Long run)

बाजार काल (Market Period) या अति लघुकाल वह समय होता है जिसमें पूर्ति की गयी मात्रा पूर्णरूप में स्थिर (fixed) होती है अर्थात कीमत के सापेक्ष पूर्ति प्रतिक्रिया नगण्य होती है।

लघु काल वह समय काल होता है जिसमें कुछ लागतों (inputs) उदाहरणार्थ (संयत्र, भवन, मशीन आदि) की पूर्ति स्थिर होती है या अलोचपूर्ण होती है। इस प्रकार लघुकाल में हम किसी वस्तु का उत्पादन केवल परिवर्तनशील लागातों (variable inputs) को बढ़ाकर ही कर सकते है।

दीर्घकाल उस समय को कहते है जिसमें सभी लागतों (inputs) की पूर्ति लोच पूर्ण होती है परन्तु तकनीकी में बदलाव नहीं होती है अर्थात दीर्घ काल में सभी लागतें (inputs) परिवर्तन शील होते है। इस प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन में वृद्धि स्थिर एवं परिवर्तन दोनों ही लागतों (inputs) बढ़ाकर की जा सकती है।

आइए अब तीनों कालों में कीमतों के निर्धारण को समझें।

1.8.1 बाजार काल में कीमत निर्धारण

बाजार काल में कुल उत्पादन (total output) स्थिर होता है। प्रत्येक फर्म के पास बेचने के लिए एक स्टॉक होता है। सभी फर्मों के पास एकत्रित स्टाक (वस्तुओं का भण्डार) कुल पूर्ति का निर्धारण करता है। चूंकि स्टॉक स्थिर होता है। अतः पूर्ति वक्र पूर्णरूप से अलोचपूर्ण होता है। हम निम्नांकित चित्र 3 (क) में देख सकते है। जिसे रेखा SQ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस स्थिति में कीमत का निर्धारण पूर्णरूप से मॉग की स्थिति के द्वारा होता है। पूर्ति एक निष्क्रिय कारक होती है। उदाहरणार्थ यदि हम ये मानें कि विवाह स्थलों की संख्या (अथवा किसी विवाह समारोह में तम्बुओं की संख्या OQ पर दर्शायी गयीं हैं, (चित्र 3 क) तथा पूर्ति वक्र एक सीधी रेखा के रूप में है, SQ हम ये भी मान लेते हैं कि किसी विवाह काल में मॉग वक्र विवाह स्थलों अथवा तम्बुओं के लिए D_1 के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। मॉग वक्र एवं पूर्ति वर्क एक दूसरे को M बिन्दु पर काटते हैं जो कि किराया है, MQ = OP_1 स्थिति पर । यदि किसी विवाह काल में विवाह स्थलों की मॉग (अथवा Tent) की मॉग एकदम से बढ़ जाती है तो मॉग वक्र D_1 उपर की तरफ D_2 तक विस्थापित होत जाता है। साम्यावस्था बिन्दु–मॉग एवं पूर्ति के अन्तर विभाजन बिन्दु M से P तक विस्थापित हो जाती है तथा किराया PQ = OP_2 तक हो जाता है। यह कीमत सभी क्रेताओं के लिए हो जाती है।

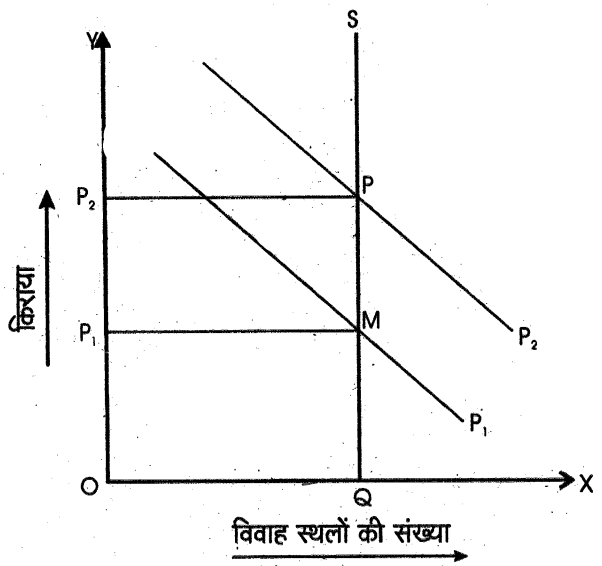

चित्र 3 (क) मॉग द्वारा कीमत निर्धारण (बाजार काल में) इसी प्रकार यदि किसी उत्पाद को मांग दी हो, और किसी कारण से पूर्ति में अचानक गिरावटट आ जाती हो तो जैसे कि सूखा या बाढ़ या अन्य किसी प्राकृतिक

RIL-082

आपदा के कारण (विशेषतः कृषि उत्पादों मे) तथा एक दम अचानक से निर्यात में वृद्धि के कारण उत्पाद के मूल्य में वृद्धि हो जाए। उदाहरणार्थ सन् 1998 में ब्याज के निर्यात के कारण एक दम से ब्याज के कीमते 10–12 रूपये प्रति किलो से 50–60 रूपये प्रति किलो तक बढ़ गयी थी यदि पूर्ति के द्वारा कीमतों का निर्धारण होता है तो पूर्ति वक्र बॉयी ओर विस्थापित हो जाता है तथा कम पूर्ति होने वाली वस्तुओं का कीमतों में वृद्धि का कारण होता है। इसका प्रदर्शन चित्र 3(ख) में किया गया है। यदि मांग वक्र (D) तथा पूर्ति वक्र (S_2) है तथा कीमत का निर्धारण OP_1 पर किया जाता है यदि मांग वक्र समान है तो पूर्ति में गिरावट, पूर्ति वक्र को बॉयी ओर S_1 पर विस्थापित करती है। इस कारण कीमत OP_1 से OP_2तक बढ़ जाती है।

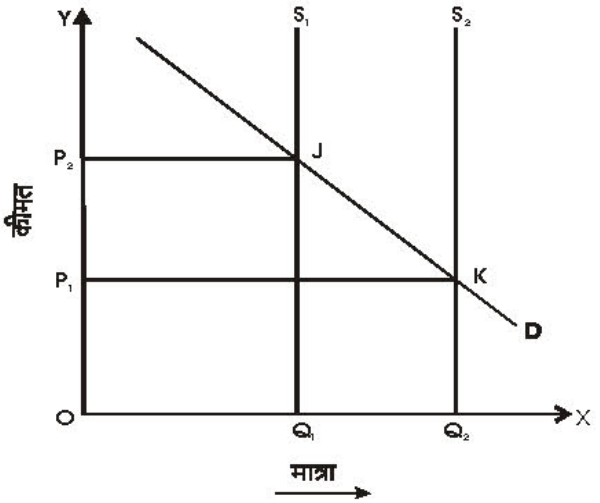

चित्र 3 (ख) बाजार काल में पूर्ति द्वारा कीमत निर्धारण बाजार काल अथवा अतिलघु काल के अन्य उदाहरणों में मछली बाजार, स्टॉक बाजार प्रतिदिन दुग्ध बाजार आपदाओं अथवा महामारी के समय आवश्यक दवाएँ आदि हो सकते है।

1.8.2 लघुकाल में कीमत निर्धारण

लघुकाल, परिभाषा के अनुसार, वह काल होता है जिसमें कोई भीफर्म न तो अपना आफार बदल सकती है और न ही नई फर्मे उयोग में प्रवेश कर सकती है। जबकि बाजार काल में पूर्ति पूर्णरूप से स्थिर होती है, लघुकाल में पूर्ति की वृद्धि अथवा कमी परिवर्तनशील लागतों (Variable inputs) की संख्या में वृद्धि अथवा कमी करके किया जा सकता है। इस प्रकार से लघुकाल में पूर्ति वक्र लोचपूर्ण होती है।

बाजार के मूल्य को लघु काल में निम्नांकित दिये गये 4 (क) चित्र में

प्रदर्शित किया गया है तथा बाजार कीमत एवं फर्म की साम्यवस्था के सापेक्ष फर्म के उत्पादन में समायोजान को चित्र 4 (ख) में प्रदर्शित किया गया है।

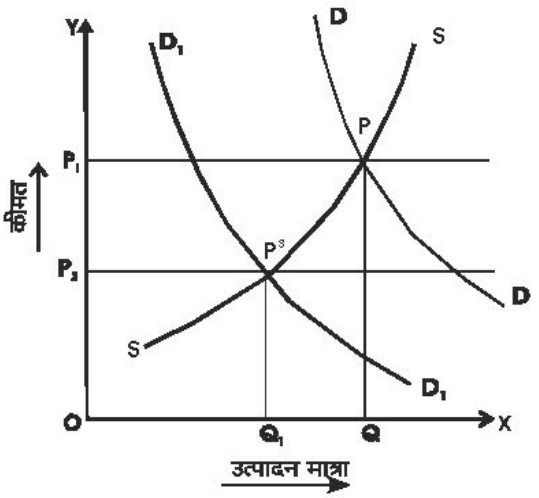

चित्र 4 (क) उद्योग के लिए लघुपाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

चित्र 4(क) किसी उघोग के लिए मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS के द्वारा OP_1 या PQ पर कीमत निर्धारण को दर्शाया गया है। यह कीमत उघोग में सभी फर्मे को लिए स्थिर होती है। दिये गये मूल्य (कीमत) PQ (OP_1) पर, एक फर्म कितनी भी संख्या में वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय कर सकती है। परन्तु कोई भी मात्रा अधिकतम लाभ को नही देगी। यदि इनको उत्पादन लागत वक्र दिये हुए हो, तो फर्मो को कीमत PQ के अनुसार अपने मात्राओं को समायोजित करना होगा ताकि वे अधिक लाभ अर्जित कर सकें।

किसी फर्म के उत्पादन निर्धारण एवं इसकी साम्यावस्था को चित्र 4 (ख) में प्रदर्शित किया गया है। किसी भी फर्म का लाभ अधिकतम तब होती है जब सीमान्त आगम (Marginal Revenue), सीमान्त लागत (Marginal Cost) के सामने है। चूंकि कीमत बिन्दु PQ पर स्थिर है जहॉ फर्म का औसत आगम (AR), PQ के समान है। यदि AR दिया हुआ हो, MR = AR फर्म का MR, AR = MR रेखा के द्वारा प्रदर्शित है। फर्म का उपर को तरह बढ़ता MC वक्र AR = MR को बिन्दु E पर अन्तरविभाजित करता है। E बिन्दु पर MR = MC है अतः बिन्दु E फर्म की साम्यावस्था है। यदि बिन्दु E से EM लम्ब क्षैतिज रेखा पर खींचा जाता है तो यह OM पर लाभ वृद्धि को निर्धारित करता है। इस उत्पादन पर MR = MC है । जो कि अधिकतम लाभ के लिए आवश्यकता को सन्तुष्ट करता है। कुल अधिकतम लाभ को क्षेत्र P,TNE के द्वारा दर्शाया गया है।

$$\text{लाभ} = (AR - AC)\, Q$$

चित्र (4ख) में $AR = EM$
$AC = NM$
$Q = OM$

इन मूल्यों को लाभ समीकरण में विस्थापित करने पर हमें निम्न ताप्त होगा।

लाभ = $(EM - NM)\ OM = P_1TNE$

चूंकि $EM - NM = EN$,

लाभ = $EN \times OM = P_1TNE$ जो कि अधिकतम लाभ है जबकि कीमत एवं लागत के वक्र लघुकाल में दिये गये है।

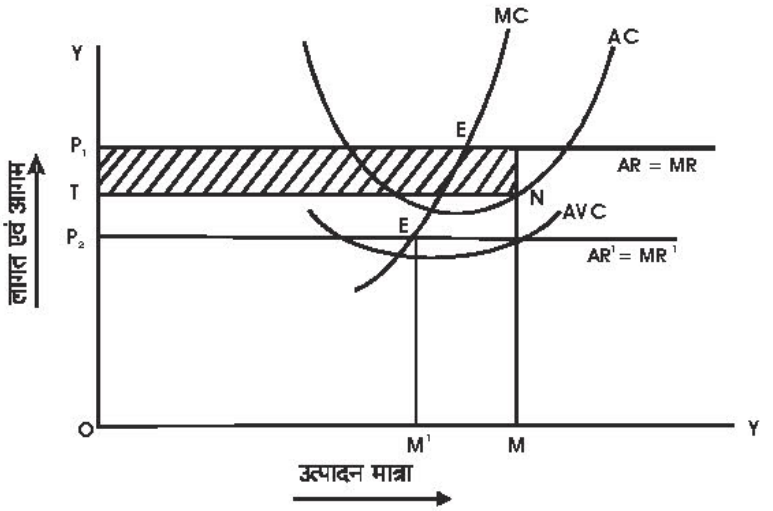

उत्पादन मात्रा

चित्र 4 (ख) फर्म के लिए लघुकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

लघुकाल में फर्म हानि प्राप्त कर सकती है यद्यपि लघुकाल में फर्म अत्यधिक लाभ अर्जित कर सकती है, इनको हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। उदाहरणार्थ यदि बाजार के कीमत P_1Q_1 तक घट जाती है चूंकि मॉग वक्र D_1D_1 तक आ जाता है। चित्र 4(ख)। यह एक ऐसी प्रक्रिया को बल देगा जो उत्पादन मात्रा को तब तक समायोजित करेगी जब कि नयी साम्यावस्था E^1 न आ जाए यहॉ पुनः $AR^1 = R^1 = MC$ परन्तु चुंकि अतः फर्म को हानि होगी। चुंकि यह एक लघु काल की अवस्था है तो उत्पादन को बन्द करना सही नहीं होगा। फर्म अपनो हानि को न्यूनतम कर सकती है। चित्र के अनुसार उत्पादन मात्रा को नीचे की ओर OM^1 तक समायोजन किया गया है जहॉ से इसकी MC को कवर करता है अर्थात E^1M^1 को कवर करता है। जब तक MC कवर होगी रहेगी फर्म लघुकाल में जीवित रहेगी। यहॉ पर यह कहना अति आवश्यक होगा कि लघु काल में, एक फर्म पूर्ण प्रतियोगी बाजार में आर्थिक लाभ अर्जित करने की स्थिति में होती है। कभी कभी यह हानि की स्थिति में भी आ सकती है । यदि एक बार उद्योग में बाजार की कीमत

निर्धारित हो जाती है तो सभी फर्मे इसे स्वीकार कर लेती है। कोई भी फर्म इतनी विशाल एवं प्रभावी नहीं होती कि कीमत को प्रभावित कर सकें । यदि कोई फर्म अपने उत्पादों का मूल्य बाजार उद्योग की कीमत से कम रखना चाहेगी तो उसको कुल लाभ में कमी होगी और कभी कभी तो वह हानि की स्थिति में भी आ सकती है। यदि कोई फर्म अपने उत्पाद की कीमत बाजार की कीमत से अधिक रखना चाहेगी तो वह अपने उत्पादों को बेच नहीं पाएगी और पुनः यह हानि का कारण होगा। अर्थात कोई भी फर्म लघुकाल में बने रहने के लिए किसी दिये गये मूल्य (कीमत) पर केवल उतना ही उत्पादन करें जितना कि वह बेच सकती हो।

1.8.3 दीर्घ काल में कीमत निर्धारण :–

लघुकाल की तुलना में फर्म अपने आकार अथवा आयतन को पूर्णरूप से समायोजित सकते है तथा कुछ फर्में बाजार को छोड़ भी सकती हैं तथा कुछ नयी फर्में बाजार में आ भी सकती हैं।

यदि बाजार का मूल्य इस प्रकार है कि AR>AC, तब फर्म एक आर्थिक लाभ आर्जित करेगी जो कि असाधारण लाभ होगा। इस प्रकार से बाजार में नयी-नयी फर्में आकर्षित होंगी तथा पूर्ति वक्र दाहिनी ओर विस्थापित हो जाएगा। इसी प्रकार यदि AR<AC है तो फर्म हानि का सामना करेंगी। अतः सीमान्त फर्में उद्योग/बाजार को छोड़ देंगी जिससे कि पूर्ति वक्र पुनः बाँयी ओर विस्तापित हो जाएगा। यदि पूर्ति वक्र दाँयी ओर विस्थापित हैं तो कीमतों को नीचे खींचता है तथा बाँयी ओर विस्थापन कीमतों को ऊपर की ओर बल देता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि कीमत इस प्रकार निर्धारित न हो जाए कि AR,AC के समान हो जाए (AR=AC) तथा फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर सकें।

दीर्घकाल में कीमत निर्धारण एवं उत्पादन मात्रा अथवा आकार का समायोजन, एक व्यक्तिगत कर्म के परिपेक्ष में चित्र ५(क) एवं ५ (ख) में दिया गया है।

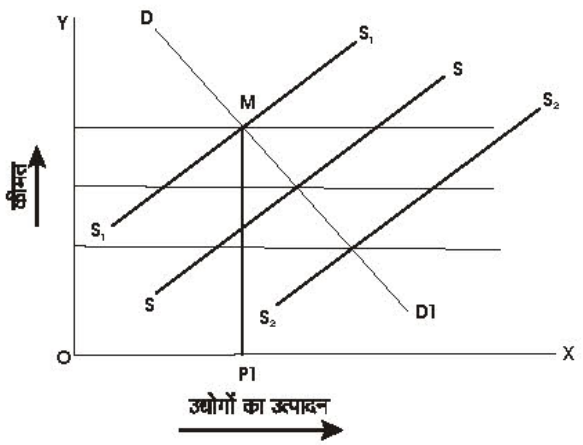

चित्र 5 (क) उद्योग के लिए दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

यदि हम मान लें कि दीर्घकाल में मांग वक्र DD^1 है, लघुकाल की पूर्ति SS_1 है तथा कीमत का निर्धारण OP_1 पर हैं। इस कीमत पर फर्म अपने उत्पादन को M बिन्दु तक समायोजित करती हैं। साम्यवस्था, जहाँ $OP^1 = AR^1 = MR^1 = LMC$ है। फर्म MS प्रति इकाई का आर्थिक लाभ अर्जित करती हैं। असाधारण लाभ के कारण अन्य फर्म उद्योग में आकर्षित होती हैं। इस कारण पूर्ति वक्र दाहिनी ओर SS_2 तक विस्थापित होता है जो कि कीमत के OP_2 तक गिरने में सहायक होता है। इस कीमत पर फर्म एक ऐसी स्थिति में होती है। जो केवल (LMC (= NQ_2) को OQ_2 उत्पादन मात्रा तक कवर कर पाती हैं। तथा हानि की स्थिति में है। चूंकि AR<LAC है। जो फर्म की स्थिति में होती है वे ज्यादा समय तक व्यापार में जीवित न रह पाती हैं। इस प्रकार की फर्म बाजार छोड़ देती है तथा यह उद्योग में कुल उत्पादन में कमी का कारण बनती है जिसके कारण पूर्ति वक्र बॉयी ओर चला जाता है जो कि SS के द्वारा प्रदर्शित है। यहाँ कीमत PO के द्वारा प्रदर्शित है।

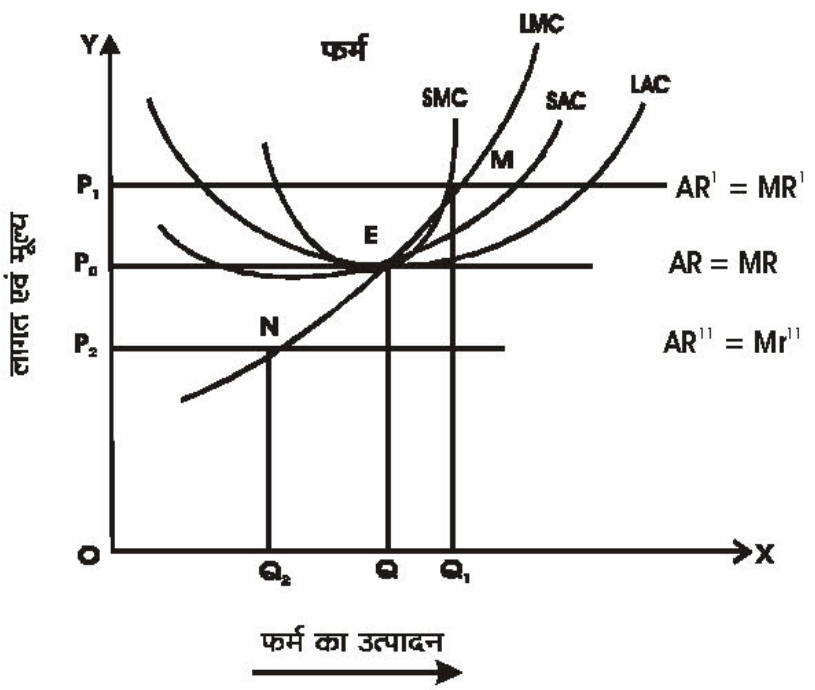

चित्र 5(ख) फर्म के लिए दीर्घ काल में पूर्ण प्रतियोगी में कीमत निर्धारण

वर्तमान फर्म अपने उत्पादन (Output) को नये बाजार कीमत पर समायोजित करने का प्रयास (OQ) पर करती है। OQ उत्पादन पर फर्म एक साधारण लाभ अर्जित करने की स्थिति में होती है तथा यहाँ $OPo = AR = MR = LMC - LAC$ (=EQ) पर होता है। इस स्थिति में न तो कोई फर्म आर्थिक लाभ ही अर्जित करने की स्थिति में होते हैं और न ही हानि की स्थिति में होती हैं। इस कारण नई फर्में इस उद्योग में प्रवेश नहीं करती हैं और ना ही वर्तमान फर्म बाजार छोड़ कर जाती हैं। इस कीमत एवं उत्पादन पर व्यक्तिगत फर्म एवं उद्योग दोनों ही दीर्घकालीन साम्यवस्था में होते

हैं।

1.9 सारांश

इस प्रकार से हमने देखा कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में यदि हम लघु काल में कीमत निर्धारण करना चाहते हैं तो किसी फर्म का लाभ अधिकतम तब होता है जब सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के समान होता है। लघुकाल में उत्पादन को बन्द नहीं करते हैं तथा फर्म अपनी हानि को कम कर सकती है।

दीर्घ काल में न तो कोई फर्म अधिक लाभ ही अर्जित करने की स्थिति में होती है और न ही हानि की स्थिति में होती है। इस कारण नई फर्में उद्योग में प्रवेश नहीं करती हैं और ना ही वर्तमान फर्में बाजार छोड़कर जाती हैं। इस कीमत एवं उत्पादन पर व्यक्तिगत फर्म एवं उद्योग दोनों ही दीर्घकालीन साम्यावस्था में होते हैं।

1.10 महत्वपूर्ण शब्द

एकाधिकार बाजार, द्विअधिकार बाजार, ओलीगोपोली बाजार, पूर्ण प्रतियोगिता बाजार, उत्पादन का लागत सिद्धान्त, साम्यावस्था, उपयोगिता सिद्धान्त, पूर्ति, पूर्ति प्रक्रिया, शून्य पूर्ति, अनन्त पूर्ति, लघुकालीन बाजार, दीर्घकालीन बाजार।

1.11 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकोनोमिक्स - बोएस
3. टेक्स्ट बुक ऑफ इकोनोमिक्स थ्योरी - स्टोनियर
4. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - डीन

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - मोटे, पौल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - एच० एल० आहूजा
3. मैनेजीरियल इकोनोमिक्स - थॉमस मौरिस

1.13 स्व परख प्रश्न

प्रश्न 1. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा को परिभाषित कीजिए एवं इसके अन्तर्गत फर्म

संतुलन की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म द्वारा वस्तु की कीमत तथा उत्पादन किस प्रकार निर्धारित होते हैं।

प्रश्न 3. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण के कौन से दो सिद्धान्त हैं। विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 4. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की क्या सीमाएं हैं ?

प्रश्न 5. उत्पादन की लागत सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 6. उपयोगिता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 7. फर्म की साम्यवास्था को परिभाषित करें। चित्र एवं उदाहरण द्वारा अपने उत्तर को स्पष्ट करें।

प्रश्न 8. साम्यावस्था में बदलाव के आठ प्रकार कौन - कौन से हैं?

प्रश्न 9. पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में कीमत निर्धारण की तीन अवस्था को चित्र द्वारा विस्तार से समझायें।

प्रश्न 10. पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत निर्धारण कैसे किया जाता है?

इकाई 2 अपूर्ण एंव एकाधिकार प्रतियोगिता में कीमत निर्णय

इकाई संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 अपूर्ण प्रतियोगिता के विशेष लक्षण

2.4 अपूर्ण प्रतियोगिता मे कीमत निर्धारण

2.4.1 लघुकाल में कीमत एंव उत्पादन निर्णय

2.4.2 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय

2.5 चैम्बरलिन सिद्धान्त का आलोचनत्मक विश्लेषण

2.6 एकाधिकार मे कीमत निर्धारण

2.6.1 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार

2.6.2 लघुकाल मे कीमत एवं उत्पादन निर्णय (एकाधिकार)

2.6.3 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय (एकाधिकार)

2.7 एकाधिकार एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

2.8 सारांश

2.9 महत्वपूर्ण शब्द

2.10 अन्य चयनित पाठन

2.11 सन्दर्भ पाठ्य पुस्तके

2.12 स्व परख पश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थियो को निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति होगी।

- एकाधिकार बाजार की विशेषताओ को समझने में।
- एकधिकृत बाजार में लागत वक्रो के विश्लेषण में।
- लघु एवं दीर्घकाल में उत्पादन निर्णयो को लेने में।

➢ एकाधिकार एवं एकाधिकृत बाजारो में विभेद करने में।

2.1 प्रस्तावना

पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार की स्थितियो को छोड़कर बाजार की सभी स्थितियॉ अपूर्ण पतियोगिता बाजार की स्थितियॉ होती है।

इनको हम निम्न तीन समूहो में पढ सकते है।

(1) द्विधिकार (Dunopoly) अर्थात सैद्वान्तिक रूप से उत्पादक उत्पादन विभेदीकरण नहीं करते है परन्तु वास्तविक रूप में उत्पादन विभेद किया जाता है।

(2) अल्पाधिकार (olygopoly) अर्थात बाजार में कुछ ही उत्पादक होते है जो कि एक अच्छे स्तर तक उत्पादो का विभेदीकरण करते है यहॉ कुछ का तात्पर्य सख्या में 10 से कम उत्पादको का होना होता है। परन्तु सख्या का यह तर्क बाजार के आकार पर निर्भर करता है।

(3) एकाधिकृत प्रतियोगिता (Mnopolistic) अर्थात जहॉ अधिक सख्या में प्रतियोगी हो तथा पूर्ण एवं अपूर्ण या एकाधिकृत प्रतियोगिता में विभेद उत्पाद विभेदन अथवा ब्राण्डो के बल पर ही किया जाता है।

प्रायः हम दैनिक अपयोग की जितनी भी वस्तुऐं देखे वे सामान्यतः एकाधिकृत अथवा अपूर्ण पतियोगिता के अर्न्तगत ही आती है उदाहरणर्थ कारें, साबुन, टूथपेस्ट, इत्यादि।

अर्थात हम कह सकते है कि प्रतियोगिता के सीमित होने को हम अपूर्ण प्रतियोगिता कहते है । यदि क्रेता एवं विक्रेताओ की सख्या अधिक हो परन्तु वस्तु एकस्वरूप नही है एवं उनमें विभिन्नता है अथवा क्रेताओ एवं विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही है तो प्रत्येक दशा में अपूर्ण प्रतियोगिता कहा जाएगा। तकनीकी शब्दों में अपूर्ण प्रतियोगिता के होने के लिये एक फर्म की मॉग पूर्णतया लोचदार नही होती है।

2.2 अपूर्ण प्रतियोगिता के विशेष लक्षण

प्रायः निम्नाकित दिये दस लक्षणो के द्वारा हम अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार को समझ सकते है ।

2.2.1 विभेदित उत्पाद

अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न विक्रेताओ द्वारा निर्मित वस्तुऐं बिल्कुल

एक जैसी नहीं होती है बल्कि उनमें कुछ अन्तर होता है। वह अन्तर आकार, रंग, रूप, पैकेजिंग, ब्राण्ड, ट्रेडमार्क इत्यादि के कारण हो सकता है। इस अन्तर के कारण विभिन्न विक्रेताओ की वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न तो नहीं होती परन्तु निकट स्थानापन्न होती है। इस प्रकार का उत्पाद विभेदन वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। इस प्रकार के उत्पादो के अच्छी या कम अच्छी गुणवत्ता को विज्ञापन के द्वारा अथवा अन्य संवर्धन के द्वारा दर्शाया जाता है।

2.2.2 उत्पादो से उपभोक्ताओ का लगाव

विभिन्न उत्पाद श्रेणियो का लगाव विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओ के द्वारा उनकी आय, जीवन शैली इत्यादि अन्य कारको के कारण हो सकता है। प्रायः उपभोक्ता वस्तु के ब्राण्ड नाम को उसकी कीमत से ज्यादा बल देते है उदाहरणार्थ कुछ उपभोक्ता अन्य सस्ते साबुनो के उपलब्ध होने के बावजूद भी मेडिमिक्स या हिमालय साबुन को प्रयोग करते है क्योकि उनकी जगह में साबुन की गुणवत्ता का होना अधिक आवश्यक है।

2.2.3 मॉग की कीमत लोच का एक से कम होना

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उत्पादको को अपने उत्पादो को अधिक मात्रा मे बेचने के लिए कीमतो में कमी करनी पड़ती है अर्थात यहॉ औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) वक्र का झुकाव सीधी तरफ एवं नीचे की ओर होता है एकाधिकार की तुलना में लोच की मात्रा कम होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की भॉति AR एवं MR वक्र क्षैतिज नही होते है यदि अल्पाधिकार बाजार की स्थिति में विक्रेता विलासपूर्ण अथवा महगीं वस्तुएं बेचता है तो AR एवं MR वक्रो की तीव्रता कम होगी वे समतल तो होगे परन्तु उनका झुकाव नीचे की तरफ गिरता हुआ होगा।

2.2.4 कभी कभी विक्रेता के प्रति भी लगाव होना

यह सेवा बाजार मे अपूर्णता को लाते है। लोग अपने हिसाब से सजर्न, वकीलो , डाक्टरो, दर्जियो, नाईयो, इत्यादि को प्राथमिकता देते है तथा उपयोग हेतु उनसे लगाव रखते है। इस प्रकार व्यक्तिगत सेवाओ के लिए ये विक्रेता अपने भिन्न भिन्न उपभोक्ताओ से भिन्न कीमते वसूल करते है। उदाहरण के तौर पर कुछ सुन्दर एवं अच्छी शारीरिक बनावट वाले उपभोक्ता

एक ऐसे सैलून मे जाना पसन्द करते है जहॉ के वर्कर्स देखने में अच्छी छवि रखते है।

2.2.5 मॉग की आडी लोच का होना एवं परन्तु बहुत अधिक न होना

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार मे मॉग की गाढी लोच अन्त तक होती है। एकाधिकार बाजार में यह शून्य होती है यह जितना ब्राण्ड एवं उत्पादक से सम्बन्ध होती है उतना कीमत से नही ।

2.2.6 अपूर्ण प्रतियोगिता में अधिक अविभाज्यता का होना

अल्पधिकार फर्म में पूर्ण पतियोगिता बाजार के आर्थिक आकार के साधार पर फर्मे नही होती है जैसा कि हम जानते है कि बढते हुए आगम या घटती हुई लागत में अविभाज्यता एकमुश्त निवेश होती है। जिसे कि टुकड़ो मे निदेशित नही किया जा सकता। या तो पूर्ण निवेश होगा या बिल्कुल नही होगा। अल्पाधिकार कि शक्ति अविभज्यताओ को दूर करने की शक्ति के सीधे अनुपातिक सम्बन्ध मे होता है अर्थात उच्च मॉग के निदेश को एकमुश्त करने देना। स्केल पर गैर उदासीन आगम अपूर्णता को जन्म देते है। अपूर्णता क्षयकारी स्थितियो को जन्म दे सकती है उदाहरणार्थ विजय सुपर अथवा लैम्बरेटा स्कूटर अब बाजार में नही है। इसी प्रकार हीरो मजिस्टिक,लूना, बजाज M-80 आदि मोपेड तथा फियेट जैसी कारें भी बाजार से गायब हो चुकी है । यदि स्केल पर गैर उदासीन आगम बढते हुए आगम को जन्म देते है तो मोटर्स अल्पाधिकार स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ मारूति हुण्डई एवं टाटा मोटर्स बाजार में अच्छा प्रदर्शन कर रहे है। आज भारत में जनरल मोटर्स, फोर्ड आदि सरीखी कम्पनियॉ सघर्ष करती नजर आ रही है जो कि विश्व स्तर पर अत्यधिक सफल है। मारूति एवं हुण्डई मोटर्स ने आज की बढती हुई जनसख्या तथा घटती जमीन के कारण कम हो रही जगह को दृष्टिगत रखते हुए छोटी कारो का उत्पादन किया और इसमें वे सफल रहे। सुसंगठन नवीनीकरण तुलनात्मक सस्ता बनाना एवं तुलनात्मक आसान करना अल्पाधिकार प्रतियोगियो को आगे बढने के लिये मार्ग प्रशस्त करते है।

अविभाज्यताओ को दूर करने के लिए एक अतिरिक्त सामर्थ्य की भी आवश्यकता होती है वो है ब्रेक इवन बिन्दू से पूर्ण स्वयं को बचा के रखने की। इस प्रयत्न मे आने वाली लागते ब्रेक इवन बिन्दु से पूर्व आने वाले आगम से सदैव ज्यादा होती है। प्रायः हानि की स्थिति देखने को मिलती है परन्तु आगे

आने वाले समय में निश्चित लाभो की प्रबल सम्भावनाएं रहती है केवल वे ही फर्म अल्पाधिकार मे आते है जो कि आगे बढने की चाहत रखती है ।

2.2.7 फर्मो का प्रवेश मुफ्त होता है परन्तु अक्सर न होना

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्मो के प्रवेश एवं निकास पर कोई प्रतिबन्ध नही होता है अकुशल फर्म बाजार मे जीवित नही रह पाते है। अल्पाधिकार बाजार में यदि कार निर्माता कम्पनी का उदाहरण दे तो इस क्षेत्र मे कोई भी नई कम्पनी प्रवेश नही कर रही है । क्योंकि इस प्रकार की स्थिति में अत्यधिक धन तथा उत्पाद विभेदन के लिए के लिये अत्यन्त कुशलता की आवश्यकता होती है।

2.2.8 उत्पादको का आत्मनिर्भर एवं सतर्क होना

अल्पाधिकार बाजार मे फर्मो के लिए यह अति अवश्यक है कि प्रतियोगियो पर पूर्ण रूप से दृष्टि रखे कि वे किस प्रकार के प्रतियोगी कदम उठाते है यदि कोई कम्पनी कीमतो में कमी करती है तो और दूसरी कम्पनियो को भी कीमतो में कमी करनी पड़ती है नियन्त्रण। साधारणतया इसके बाजार में एक समूह नेता फर्म होती है जब कभी एक निमार्ता कोई बदलाव लाता है तो बाकी की फर्म भी उसी परिवर्तन को लाती हैं। यदि पुनः हम कार बाजार का उदाहरण ले तो यदि पॉचा कार निर्माता कार में पावर स्टेरिंग तथा पावर विण्डो देते है तो छठे निर्माता को भी ये सुविधाए देगी ही। बाजार के अन्य प्रतियोगियो को टक्कर देने के लिए उत्पादो मे नवीनीकरण तथा खोज होती रहती है। कहने को तो व्यक्तिगत कीमत नीति होती है परन्तु वास्तविक रूप में यह केवल नाम मात्र के लिए ही होती है।

2.2.9 उपभोक्ताओ का न तो तर्क संगत और न ही पूर्ण गतिशील होना

इस प्रकार की सिथिति में उपभोक्ता सदैव ही कीमत विभेद के बारे में पूर्ण रूप से जानकार नहीं होते है। इसके अतिरिक्त ये भी आवश्यक है कि कोई उपभोक्ता सभी सम्भावित स्थानो से आवश्यक सूचना कितने प्रयास तथा समय में प्राप्त कर सकता है। कार की खरीदरी के लिए भी उपभोक्ता अपने निकटतम डीलर के पास ही जाते है। अर्थात ये संभव है कि उपभोक्ता अक्रियाशील तथा आलसी हो।

2.2.10 लागत वक्रो का V आकार का होना तथा आगम वक्रो का नीचे की तरफ दाहिनी ओर झुका होना

V आकार के वक्रो का आकार इस प्रकार का नही हो सकता है कि दो फर्मो के सीमान्त लागत एवं औसत लागत वक्र एक दूसरे पर अभिमुख हो। इनके झुकाव विभिन्न समयो एवं विभिन्न उत्पादन मॉगो में अलग अलग होगे। औसत एवं सीमान्त वक्र जहॉ एक स्थिति मे धीरे धीरे नीचे झुकते हुए प्रतीत हो सकते है। वही दूसरी ओर वे तीव्रता से नीचे की ओर झुकते प्रतीत हो सकते है

2.2.11 अपूर्ण प्रतियोगिता के बेकार शेष (wastes)

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में पूरक अथवा अतिरिक्त लागते एवं आड़ी परिवहन (cross-transport) के बेकार शेष होते है दिल्ली में निर्मित कारो को हैदराबाद में खरीदा जाता है जबकि हैदराबाद में निर्मित कार को दिल्ली में खरीदा जाता है। भाड़े परिवहन की लागते विक्रय लागतो को बढाती है तथा उपभोक्ताओ की पसन्द के कारण दनको उपभोक्ताओ के द्वारा ही वहन करना पड़ता है। किसी बाजार में जितनी ज्यादा प्रतियोगिता होती है उतना ही प्रचार प्रसार विक्रेतओ के द्वारा किया जाता है तथा उतनी ही अधिक कीमत उपभोक्ताओ के द्वारा वहन की जाती है इसके अतिरिक्त विक्रय कि पूरक लागतो (supplimentary costs) को भी उपभोक्ताओ से ही वसूला जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए परिवहन लागते रूकावट भी हो सकती है तथा नही भी हो सकती है। ये लागते आवश्यक रूप से अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में होती है ।

2.3 अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

एकाधिकृत बाजार में कीमत एवं उत्पादन का माडल सन 1930 में एडवर्ड चैम्बरलिन के द्वारा दिया गया था। आज के युग में उनके दिये गये इस माडल की प्रासंगिकता काफी घट गयी है परन्तु फिर भी सैद्वान्तिक रूप से इसको आज भी माना जाता है। चैम्बरलिन के माडल के अनुसार एकाधिकृत प्रतियोगिता एक इस प्रकार की बाजार व्यवस्था है जिसमें अधिसख्य विक्रेता होते है जो विभेदित उत्पादो को बेचते है तथा इसके लक्षणो को हम पूर्व में ही पढ चुके है।

2.3.1 लघुकाल में कीमत एवं उत्पाद निर्धारण

एकाधिकृत एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के लक्षण पूर्व प्रतियोगिता के काफी समरूप होते है परन्तु इसके अन्तर्गत कीमत एवं उतपादन निर्णय एकाधिकार स्थिति के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्णय के लगभग समान होते है। इसका कारण यह है कि एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म एक एकाधिकारी की ही भॉति नीचे झुकता हुआ वक्र महसूस करती है इस प्रकार के मॉग वक्र के कारण निम्न है।

1– एक वर्ग विशेष के उपभोक्ताओ के लिए अधिक प्राथमिकता।

2– पूर्ति के उपर विक्रेताओ का एकाधिकार होना। चूकि उपभोक्ताओ की किसी बाण्ड के लिए स्वमिभक्ति या अधिक लगाव होता है तो ऐसी स्थिति में विक्रेता के पास कीमत बढाने का अवसर होता है तथा इस पर भी वह अपने उपभोक्ताओ को बनाए रखने में सक्षम होता है और चूँकि उत्पादो में स्थानापन्न की प्रकृति होती है तो विक्रेता अपने उत्पादो की कीमते कम करके अन्य उपभोक्ताओ को भी अपने उत्पाद के लिए आकर्षित कर सकता है।

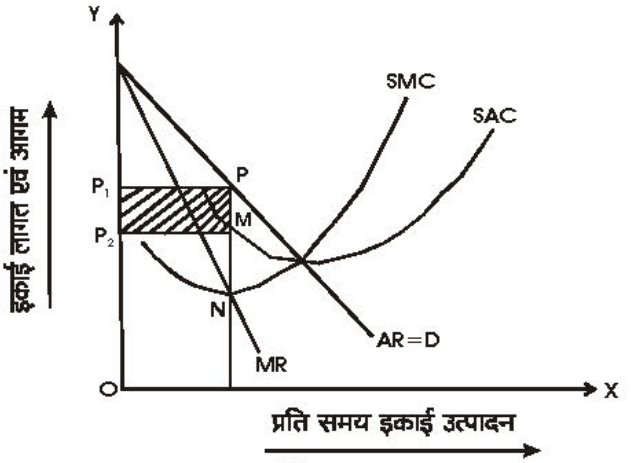

चित्र न0 1

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

लघुकाल में कीम एवं एत्पादन निर्णय उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है इसमें फर्म की लघुकाल आगम एवं लागतो को एकाधिकृत प्रतियोगिता में दिखाया गया है।

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है चित्र की सीमान्त आगम MR इसकी सीमान्त लागत (MC) को N बिन्दू से काटते है। यह बिन्दू उत्पादन OQ पर आधिकतम लाभ की आवश्यकता स्थिति को पूर्ण करता है मॉग वक्र दिये होने पर इस उत्पादन को PQ कीमत पर बेचा जा सकता है। अर्थात

कीमत का निर्धारण PQ पर होगा। इस उत्पादन एवं कीमत पर कोई फर्म अधिकतम एकाधिकार या आर्थिक लाभ PM प्रति इकाई उत्पादन पर प्राप्त करती है तथा कुल एकाधिकार लाभ को आयत P1 PM P2 के द्वारा प्रदर्शित किय जाता है आर्थिक लाभ PM (प्रति इकाई) केवल दीर्घकाल में ही रहता है क्योकि उद्योग में कोई भी नयी फर्म नही प्रवेश करती है। परन्तु एकाधिकृत पतियोगिता की स्थिति में सभी फर्मो के लाभ की स्थिति समान नही होगी क्योंकि उनके उत्पादो की मॉग की लोच भिन्न होगी। यदि कुछ फर्मो कीउत्पादन लागत दूसरी फर्मो की तुलना में अधिक हो तो केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी। इसी प्रकार कुछ फर्मो को हानि का भी सामना करना पड़ता सकता है जो उसकी औसत स्थिर लागतो पर निर्भर करेगी।

2.3.2 दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय :–

दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन के निर्णय को चित्र सं0 2 मे दर्शाया गया है विश्लेषण को जानने के लिये माना कि दीर्घकाल में किसी बिन्दू पर फर्म के आगम वक्रो को AR तथ MR के द्वारा एवं दीर्घकालीन लागतो को LACतथा LMC के द्वारा प्रदर्शित किया है जहॉ LAC का तात्पर्य दीर्घकालीन औसत लागत एवं LMC का तात्पर्य दीर्घकालीन सीमान्त लागत होता है जैसा कि चित्र में प्रदशित है कि MR, एवं LMC एक दूसरे को M बिन्दु पर काटती है जो कि साम्य उत्पादन को OQ पर तथा कीमत P_2Q_2 कीमत निर्धारित करते हैं। P_2Q_2 कीमत पर फर्म असाधारण या आर्थिक लाभ P2T प्रति उत्पादन इकाई अर्जित करती है। यह स्थिति लघुकाल में साम्यावस्था के समान है। आइये अब देखते है कि दीर्घकाल में क्या होता है। दीर्घकाल में असाधारण लाभ (Super normal profit) एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार में दो बदलावो को दर्शाता है।

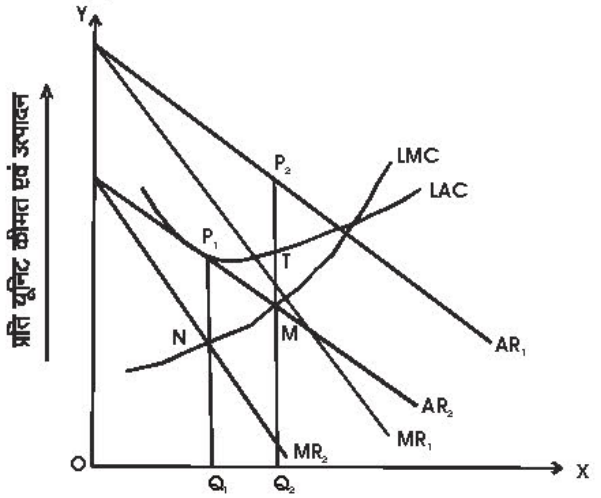

चित्र सं02

प्रथमः— असाधारण लाभ को देखते हुए नयी फर्म भी बाजार में प्रवेश करेगी। इस कारण वर्तमान फर्मो का बाजार के उपभोक्ताओ का कुछ भाग इन नयी फर्मो के द्वारा ले लिया जाता है। परिणाम स्वरूप इनका मॉग वक्र नीचे की ओर वायी ओर झुक जाता है जब तक कि AR, LAC के स्पर्श रेखा रहता है। इस प्रकार के मॉग वक्र को उपयुक्त चित्र 2 में दर्शाया गया है जहॉ ARवक्र AR1 से AR2 तक विस्थापित हो रहा है तथा MR वक्र MR1 से MR2 तक विस्थापित होता है।

द्वितीयः— जब फर्मो की सख्या बाजार मे बहुत अधिक बढ जाती है तो फर्मों के बीच कीमतो मे प्रतिस्पर्धा बहुत बढ जाती है इसका कारण यह है कि जिन फर्मों का बाजार भाग दूसरी फर्मो के द्वारा ले लिया जाता है वे कीमत कम करके अपने बाजार अंश/भाग को स्थापित रखने का प्रयत्न करती है इस प्रकार कीमतो में अधिक प्रतिस्पर्धा फर्म की मॉग वक्र के लोाच/झुकाव को कम और बढा देती है अर्थात मॉग वक्र की लोच और अधिक बढ जाती है।

चित्र में देखने पर पता चलता है कि AR2 का झुकाव AR1 से अधिक है तथा MR2 वक्र AR2 वक्र सापेक्ष MR वक्र है।

एकाधिकृत पतियोगिता में कीमत एवं उत्पादन के निर्धारण की एक आदर्श स्थिति को बिन्दु P1 पर दर्शाया गया है जैसा कि चित्र में विदित है कि LMC,MR2 को बिन्दु N पर काटती है जहॉ फर्म के दीर्घकालीन साम्यावस्था उत्पादन को P1Q1 कीमत पर OQ1 मात्रा पर पाया जाता है। देखे कि कीमत P1Q1LAC के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकाल में एकाधिकृत प्रतियोगिता के अर्न्तगत फर्म केवल सामान्य लाभ को ही प्रदर्शित करती है। जैसे ही सभी फर्म इस अवस्था में पहुॅच जाती है तो बाजार में कोई भी आकर्षण नही रहता है। अर्थात बाहरी किसी भी फर्म को असाधारण लाभ की स्थिति का लालच नजर नहीं आता है। और न ही वर्तमान फर्मो को बाजार से बाहर जाने का कोई कारण नजर आता है जोकि दीर्घकाल में उद्योग की साम्यावस्था को प्रदर्शित करता है।

2.4 चैम्बरलिन के सिद्वान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण

चैम्बरलिन के एकाअधिकृत प्रतिस्पर्धा सिद्वान्त की सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक दोनो स्तरो पर आलोचना की गई है आइये पहले सैद्वान्तिक रूप पर इसकी कमजोरी का अध्ययन करते है।

प्रथमः— चैम्बरलिन की परिकल्पना के अनुसार एकाधिकृत प्रतियोगिता स्वतंत्र रूप से कार्य करते है तथा उनके कीमत की रणनीतियॉ उनकी प्रति स्पर्धी फर्मो के द्वारा ज्ञात नही हो पाती है । इस बात पर यह पश्न उठता है कि जब फर्मो को उत्पादो में गहन प्रतिस्पर्धा होती है तथा ये एक दूसरे के स्थानापन्न होते है तो एक फर्म के द्वारा कीमतो में बदलाव से दूसरे फर्मो के उत्पाद विक्रय पर अन्तर अवश्य पड़ेगा तथा उस बात को नजर अंदाज नही किया जा सकता है।

द्वितीयः— चैम्बरलिन के मॉडल में अप्रत्यक्ष रूप से यह माना जाता है कि एकाधिकृत प्रतिस्पर्धा में फर्म अपने भूतकालीन अनुभवो से कुछ नही सीखती है। यद्यपि लगातार कीमत में कमी के कारण उनको हानि होती है तब भी वे कीमत कम करने की गल्तियॉ करती है। यह एक असम्भव सी परिकल्पना लगती है।

तृतीयः— चैम्बरलिन के द्वारा उद्योगो को एक समूह बताना नितान्त ही संदिग्ध नजर आता है यह उत्पाद विभेदन के लिए भी असाम्जस्य की स्थिति पैदा करेगा वास्तविकता में तो प्रत्येक फर्म अपने विशिष्ठ एवं एकमात्र उत्पादन के कारण एक उद्योग की ही भॉति कार्य करती है । उनके एक महत्वपूर्ण परिकल्पनानुसार समान लागते एवं आगम वक्र प्रश्नवाचक है चुँकि प्रत्येक फर्म एक उद्योग की भाति ही होती है तो विभिन्न फर्मो की लागत एवं आगम वक्रो की दिशाये भिन्न होगी न कि एक समान ।

पंचमः— उत्पाद विभेदन की दृष्टि से चैम्बरलिन का बाजार मे मुक्त प्रवेश भी एक तरह से सामंजस्य को नही दर्शाता है यद्यपि कानुनी बात करे तो इस विश्व में रोज कोई भी उदाहरण नही है जो एकाधिकृत प्रतिस्पर्धा की स्थिति को दर्शाता हो आज के युग में अधिकांश बाजारो को पूर्ण पतियोगिता अल्पाधिकार प्रतियोगिता या एकधिकार प्रतियोगिता के ही द्वारा समझाया जा सकता है इस प्रकार यह कहा गया है कि चैम्बरलिन के माडल के द्वारा एकाधिकृत प्रतियोगिता का विश्लेषण अत्यन्त ही अवास्तविक बाजार को प्रदर्शित करता है कुछ अर्थशास्त्रियो जैसे कि कोहेन एवं सायर्त का ऐसा मत है कि एकाधिकृत पतियोगिता का माडल आर्थिक सिद्वान्त के द्वारा योग में बहुत उपयोगी नही प्रतीत होता है। इसका कारण इस मॉडल के उपयुक्त आलोचना के बावजूद भी चैम्बरलिन के द्वारा दिये गये कीमत के सिद्वान्त को हम नजर अंदाज नही कर सकते है चैम्बरलिन ऐसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होने विभेदीकरण उत्पाद एवं विक्रय लागतो का सिद्वान्त दिया जिसका प्रयोग एक निर्णय कारक के रूप मे किया गया। इसके अतिरिक्त चैम्बरलिन

के द्वारा मॉग वक्र का सिद्वान्त दिया गया जो फर्मो के व्यवहार को बाजार अंश के द्वारा समझने मे सहायक है बाद में यही किक्ड मॉग वक्र के विश्लेषण मे महत्वपूर्ण सिद्व हुआ।

2.5 शुद्व एकाधिकार में कीमत निर्धारण

एकाधिकार पतियोगिता मे कीमत निर्धारण से पूर्व आइये एकाधिकार की विशेषताओ के बारे में जान लें।

(1) एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादक अथवा विक्रेता इकलौता होता है तथा अन्य उत्पादको एवं विक्रेताओ का अभाव पाया जाता है एक एकधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

(2) एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म ऐसी वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करती है जिसके निकट स्थानापन्न बाजार मे उपलब्ध नही होते है।

(3) एकाधिकार मे उद्योग और फर्म मे कोई अन्तर नही होता है फर्म ही उद्योग का पर्यायवाची होता है अतः फर्म के साम्य और उद्योग के साम्य मे कोई अन्तर नही होता है।

(4) एकाधिकार की स्थिति में अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनो में ही नयी फर्मो के प्रवेश पा प्रभावी पतिबन्ध लगाये जाते है एकाधिकार बाजार तक बने रह सकते है जब तक कि बाजार में अन्य फर्म प्रवेश नही करती है।

(5) एकाधिकारी फर्म कीमत निर्धारण होती है।

(6) एकाधिकारी फर्म का औसत आगम वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र नीचे दिये गये चित्र की भॉति नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। चुँकि कम कीमत पर वस्तुओ का विक्रय होता है एवं अधिक कीमतो पर वस्तुओ का विक्रय घट जाएगा सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र के नीचे की ओर झुका होता है।

चित्र नं03

(7) एकाधिकार बाजार में यद्यपि विक्रेता तो केवल एक ही होता है परन्तु उपभोक्ता अधिसंख्य होते है परन्तु उपभोक्ताओ की सख्या पूर्ण प्रतियोगिता से कम ही होती है।

(8) दीर्घकाल मे एक एकाधिकारी असामान्य लाभ अर्जित कर सकता है ।

(9) एकधिकारी विभिन्न स्थानो पर विभिन्न उपभोक्तओ को भिन्न कीमतो पर उत्पाद बेच सकता है।

2.5.1 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार

एकाधिकार प्रतियोगिता की उत्पत्ति तथा रहने का कारण वे कारक है जो बाजार में अन्य प्रतियोगियों के प्रवेश को रोकते है तथा वर्तमान फर्मो को बाहर निकालने में सहायक होते है। अतः प्रवेश के लिए प्रतिबन्ध, एकाधिकार बाजार को रखने में एक महत्वपूर्ण कारक होते है। बाजार में प्रवेश को प्रतिबन्धित करने वाले कारक निम्न रूप में हो सकते है।

2.5.1.1 कानूनी प्रबिन्ध

कुछ प्रकार के एकाधिकारो को जनहित में ध्यान रखकर कानूनी प्रतिबन्धों के द्वारा बनाया जाता है। भारत में बहुत से क्षेत्र ऐसे है जिनमें सरकारी नियन्त्रण उदाहरणार्थ डाक विभाग, विद्युत विवरण, भारतीय रेल आदि। इस प्रकार को क्षेत्रों में प्रवेश के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न ऐसे कानूनी पहलू डाले गये है। जो बाजार में नये प्रतियोगियों को प्रवेश से वंचित करते है । जब कि राज्य या केन्द्र सरकार निजी क्षेत्रों में भी लाइसेन्स या पेटेण्ट के द्वारा एकाधिकार स्थापित कर सकते है तथा सरकार के द्वारा जनहित में ऐसे भी नियम बनाए जा सकते है कि निजी कम्पनियॉ कीमतों में कमी करें तथा नये नये अभिष्कारों के द्वारा उपभोक्ताओं को सुविधांए दे तथा कीमतों को कम रखें। उदाहरणार्थ टेलीफोन सेवाओं में सरकार के हस्तक्षेप के द्वारा ही आज एस0टी0डी0 काल रेट एक रूपया तथा लोकल कॉल 50 पैसे में सम्भव हुयी है। कभी कभी सरकार, निजी क्षेत्रों को भी एकाधिकार में साझेदारी को प्रोत्साहन देती है तथा इसे हम फ्रेचाइर्जी एकाधिकार कहते है।

2.5.1.2 महत्वपूर्ण कच्चे माल पर नियन्त्रण

कुछ फर्म इसलिए एकाधिकार शक्ति को ग्रहण करती है क्योंकि उनके द्वारा महत्वपूर्ण कच्चेमाल (जो कि कुछ उत्पादों को उत्पादन में आवश्यक होते है जैसे कि वॉक्साइट, ग्रेफाइट, हीरा आदि) पर नियन्त्रण होता है। उदाहरण

के तौर अमेरिका में द्वितीय विश्वयुद्ध के दैरान अमेरिका की एल्युमिनियम कम्पनी ने इस प्रकार के एकाधिकार को कच्चेमाल का एकाधिकार कहते है। इस प्रकार के एकाधिकार का एक मुख्य कारण यह भी होता है। कि कुछ उत्पादों के उत्पादन के लिए विशेष तकनीकी जानकारी होना भी आवश्यक होता है।

2.5.1.3 कुशलता:

एकाधिकार का एक मुख्य कारण स्केल की मित्त्ययिता (Scale of Economiex) भी होता है। यदि किसी फर्म की दीर्घकालीन न्यूनतम लागत या उत्पादन की मात्रा उसके बाजार के आयतन के समान हो तो बड़ी फर्मे इसको दीर्घकाल लाभकारी हो पाती है। तथा लघुकाल में कीमतें प्रतिस्पर्धा को कम करती है। एक बार इन फर्मो का एकाधिकार स्थापित हो जाता है। तो नयी फर्मो का बाजार में आना तथा बने रहना, असम्भव हो जाता है। इस आधार पर उत्पन्न हुए एकाधिकारों को 'प्राकृतिक एकाधिकार' कहते है। एक प्राकृतिक एकाधिकार का जन्म कुशलता के तकनीकी कारणों से या कुशलता के आधार भूत नियमों के द्वारा हो सकता है।

2.5.2 लघुकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता की ही नीति, एकाधिकार के अन्तर्गत भी कीमत का निर्धारण आगम एवं लागतों की स्थिति के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। यद्यपि लागत स्थितियॉ जैसे की AC एवं MC वक्र एक प्रतियोगी एवं एकाधिकार बाजार साधारणतः समान ही होते है परन्तु आगम स्थितियॉ भिन्न रहती है। आगम स्थितियॉ जैसे कि ARएवं MR वक्र एकाधिकार के अन्तर्गत भिन्न होती है क्योंकि प्रतिस्पर्धी फर्मो के विपरीत, एकाधिकार बाजार का मांग वक्र नीचे की तरफ झुकता हुआ प्रतीत होता है । एक एकाधिकारी अपने कीमतों को कम करके विक्रय बढ़ा भी सकता है तथा कीमत अधिक करके भी अपने कुछ उपभोक्ताओं को बनाए रह सकता है। चूंकि एकाधिकारी फर्म एवं उद्योग लगभग समान ही होते है अतः एक एकाधिकारी फर्म एवं उद्योग के मांग वक्र भी समान होते है जोकि नीचे की तरफ झुकतः प्रतीत होता है।

जब मांग वक्र नीचे की तरफ झुकता है तो सीमान्त आगन MR वक्र AR वक्र के नीचे आ जाता है तथा MR का झुकाव AR को झुकाव का दो गुना होता है। निम्नांकित चित्र संख्या 4 में एक एकाधिकारी फर्म के

लघुकालीन आगम एवं लागत स्थितियों को दर्शाया गया है। फर्म के औसत एवं सीमान्त वक्रो MR एवं AR वक्रों के द्वारा क्रमशः दिखाया गया है एवं इसके लघुकालीन औसल लागत को SAC एवं लघुकालीन सीमान्त लागत को SMC वक्रों के द्वारा दिखाया गया है।

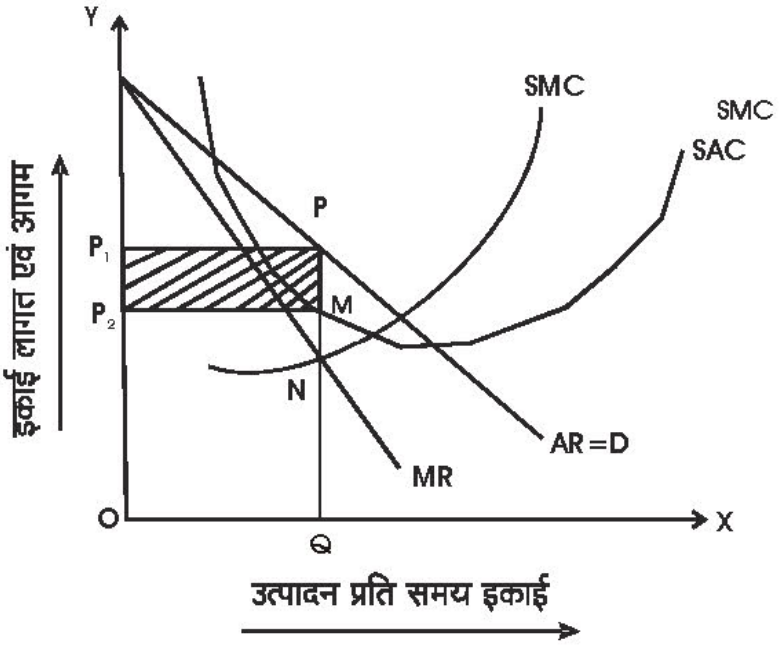

लाभ को अधिकतम करने वाली एकाधिकारी प्रतिस्पधी के कीमत एवं उत्पादन के निर्णय नियम एक प्रतिस्पार्धात्मक उद्योग के समान ही होते है। एक अधिकतम लाभ अर्जित करने वाली एकाधिकारी फर्म एक ऐसे कीमत एवं उत्पादन के संयोजन को पंसद करती है जहॉ MR,SMC के समान होता है MR = SMC चित्रानुसार फर्म के लागत एवं आगम वक्र के दिये होने पर MRएवं SMC एक दूसरे को N बिन्दु पर काटते है।

यदि N बिन्दु से X अक्ष पर एक लम्ब डाला जाए तो फर्म के अधिकतम लाभ के लिए उत्पादन बिन्दु OQ पर प्राप्त होता है। इस उत्पादन पर फर्म का MR, SMC के संमान है (MR = SMC) यदि मांग वक्र D, AR के समान है तो OQ उत्पादन को प्रति समय इकाई पर केवल PQ कीमत पर बेचा जा सकता है और $PQ = OP_1$ अतः उत्पादन के निर्धारण के साथ ही एकाधिकार फर्म की उत्पादन मॉग की कीमत का निर्धारण हो जाता है एक बार कीमत के निर्धारण होने पर फर्म का कुल लाभ भी निर्धारित हो जाता है अतः एकाधिकार फर्म एक साम्यावस्था में है।

उत्पादन के बिन्दु OQ एवं कीमत PQ पर एकाधिकारी फर्म अपनी उत्पाद इकाइयो को एवं लाभ को अधिकतम करती है इस प्रति इकाई

एकाधिकार या आर्थिक लाभ (अर्थात् AR-SAC), (प्रति PQ - MQ) = PM के समान होता है।

इसका कुल लाभ, $\pi = OQ \times PM$ है।

चूकि $OQ = P_2M$, π $P_2M \times PM = P_1PMP_2$ का क्षेत्रफल

जो कि छाया क्षेत्रफल के द्वारा प्रदर्शित है। चुंकि लघुकाल में लागत एंव आगम की स्थितियॉ बदलती नही है अतः एकाधिकारी फर्म की साम्यावस्था बनी रहती है।

2.5.3 दीर्घकाल में एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन

दीर्घकाल में एकाधिकार के उत्पादन एंव कीमत के लिए निर्णय नियम लघुकाल में एकाधिकार के समान ही होते है। दीर्घकाल में एक एकाधिकारी अपने उत्पादन के आयतन को बढ़ा सकता है जिससे कि वह दीर्घ काल में अपने लाभ को बढ़ा सके। उत्पादन संयत्र के आकार में वृद्धि (i) बाजार के आकार (ii) प्रत्याशित आर्थिक लाभ, एवं (iii) कानूनी प्रतिबन्ध के कारण जोखिम पर निर्भर करेगा ।यदि हम परिकल्पना करें कि इनमें से कोई कारक एकाधिकार के वृद्धि या फैलाव को सीमित नही करेगा और इस पर हम दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन को निर्धारित करने का प्रयास करें। दीर्घ काल में एकाधिकार कीमत एवं उत्पादन निर्धारण की साम्यावस्था को निम्नांकित चित्र संख्या 5 में दर्शाया गया है।

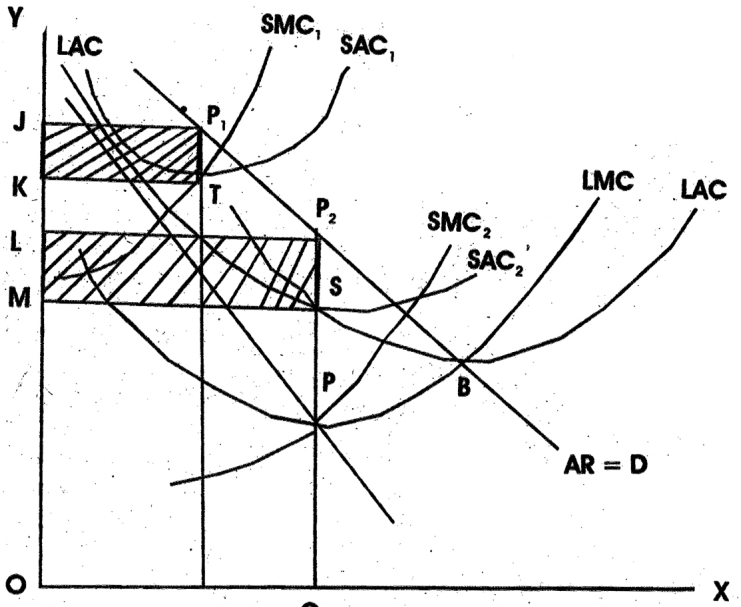

चित्र – 5

दीर्घकाल में एकाधिकार की साम्यावस्था

AR एवं MR वक्र एकाधिकारी फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रो को दर्शाते है जो कि बाजार की मांग एंव सीमान्त आगम स्थिति को प्रदर्शित करते है। LAC एवं LMC दीर्घकालीन लागत को दर्शाते है। चित्र में हम देख सकते है कि एकाधिकार के LMC एवं MR, P बिन्दु पर अन्तर विभाजित करते है जहॉ उत्पादन OQ है। इसलिए यह अधिकतम लाभ के लिए उत्पादन है। AR वक्र के दिये होने पर P_2Q कीमत पर कुल उत्पादन AR वक्र के दिये होने पर P_2Q कीमत पर कुल उत्पादन OQ को बेचा जा सकता है। इस प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन OQ होगा तथा कीमत P_2Q होगी। कीमत एवं उत्पादन का यह संयोग एकाधिकारी के दीर्घकाली लाभ को अधिकतम कर देगा। एकाधिकार के कुल लाभ को $LMSP_2$ क्षेत्रफल के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

लघुकालीन साम्यावस्था के तुलना में एकाधिकारी दीर्घकाल में अधिक मात्रा में उत्पादन करते है तथा कम कीमत पर सामान बेचते है और इस प्रकार ज्यादा एकाधिकार लाभ को अर्जित करते हैं। लघुकाल में फर्म की साम्यावस्था OQ_1 उत्पादन पर है जोकि दीर्घ काल के उत्पादन OQ_2 से कम है। परन्तु लघुकाल की साम्यावस्था की कीमत P_1O_1 दीर्घकाल की साम्यावस्था कीमत P_2O_2 से अधिक है। कुल लघुकालीन एकाधिकार लाभ को क्षेत्रफल JP_1TK के द्वारा दिखाया गया है जो कि दीर्घकालीन लाभ क्षेत्रफल LP_2SM से काफी कम है। ये सब लघु एवं दीर्घकाल को लागत एवं आगम स्थितियों पर निर्भर करता है।

यहॉ पर यह भी देखने वाली बात है कि यदि फर्मो के अनुकूलतम उत्पादन स्तर OQ_2 तक नही पहुंच सकती है। और ना ही ये अपनी पूर्ण निर्माण क्षमता पर उपयोग कर पाएगी। किसी फर्म की क्षमता में वृद्धि एवं क्षमता को पूर्ण उपयोग बाजार की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। यदि दीर्घ कालीन बाजार की स्थितियॉ उदाहरणार्थ आगम एवं लागत स्थितियॉ तथा प्रतिस्पधी की अनुपस्थिति आदि स्वीकार करें तो फर्म अपने अनुकूलतम उत्पादन स्तर पर पहुंच सकती है।

2.6 एकाधिकारी एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

एकाधिकृत प्रतियोगिता भी सीमित रूप में एकाधिकारी के रूप में काम करता है। दोनों का मांग वक्र अर्थात औसत आगम वक्र बाये से दांये की ओर झुकता हुआ होता है और सीमान्त आगम से उपर स्थिति होता है दोनों इच्छानुसार कीमत का निर्धारण एवं परिवर्तन कर सकते है। फिर भी दोनों में निम्नांकित अन्तर होते है।

1. एकाधिकार में उत्पादों का अकेला विक्रेता होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अधिसंख्य विक्रेता होते है।

2. एकाधिकार में फर्म एवं उद्योग में कोई अन्तर नही होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अनेक फर्म मिलकर एक उद्योग का निर्माण करती है।

3. एकाधिकारी वस्तु का कोई भी स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध नही होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु का निकट स्थानापन्न उपलब्ध होता है।

4 एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मो के प्रवेश एवं बहिर्गमन में खासी रूकाबटें होती है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में प्रवेश एवं बहिर्गमन पर कोई रोक नही होती है।

5. एकाधिकार में विक्रय लागतें नही होती है क्योंकि विज्ञापन आदि संवर्धन की आवश्यकता प्रायः नही होती है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में गैर मूल्य प्रतियोगिता के कारण विक्रय लागतों पर व्यय करना आवश्यक होता है।

6. एकाधिकारी अपने समान उत्पादों की भिन्न भिनन कीमतें, भिन्न भिन्न के उत्पादों से वसूल सकता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अधिसंख्या विक्रेता होने के कारण कीमत विभेदन प्रायः सम्भव नहीं हो पाता है।

7. एकाधिकार मं मांग वक्र कम लोचदार होता है तथा औसत आगम वक्र का ढाल अधिक होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में मांग वक्र अधिक लोचदार तथा औसत आगम वक्र अपेक्षाकृत चपटा होता है।

8. एकाधिकार प्रतियोगिता में दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ अर्जित किया जाता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में शून्य लाभ कमाया जा सकता है।

2.8 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि लघुकाल में एकाधिकृत तथा एकाधिकार बाजार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण आगम एवं लागतों की स्थिति के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है जो कि लाभ को अधिकतम करने वाली एकाधिकारी प्रतिस्पर्धा के कीमत एवं उत्पादन के निर्णय नियम एक प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग के समान होते हैं तथा एक ऐसे कीमत एवं उत्पादन को संयोजन को पसंद करती हैं जहां सीमान्त आगम (MR), लघुकालीन सीमान्त लागत (SMC) के समान हो। दीर्घकाल में एकाधिकार के उत्पादन एवं कीमत के लिए निर्णय नियम लघुकाल में एकाधिकार के समान होते हैं। दीर्घकाल में एक एकाधिकारी अपने उत्पादन के आयतन को बढ़ा देता है जिससे कि

वह दीर्घकाल में अपने लाभ को बढ़ा सके।

2.9 महत्वपूर्ण शब्द

एकाधिकार बाजार, एकाधिकृत बाजार, सीमान्त आगम वक्र, औसत आगम वक्र, किन्क्ड (kinked) वक्र।

2.10 अन्य चयनित पाठन

(1) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - माहेश्वरी

(2) टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स - बोएस

(3) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - डीन

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन - ए० के० अग्रवाल

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

(1) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - मोटे पॉल एण्ड गुप्ता

(2) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - एच. एल. गुप्ता

(3) मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स - थॉमस मॉरिस

2.12 स्व परख प्रश्न

प्रश्नः–1 एकाधिकार प्रतियोगिता क्या है? यह पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्नः–2 अपूर्ण प्रतियोगिता से आप कया समझते है? इसके विशेष लक्षणों की समझायें ।

प्रश्नः–3 अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्नः–4 अपूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय कैसे होता है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

प्रश्नः–5 चैम्बरीलन के सिद्धान्त का अलोचनात्मक विश्लेषण करें।

प्रश्न–6 एकाधिकार के कारण एवं प्रकार समझाते हुए इसमें कीमत निर्धारण को समझाये

प्रश्नः–7 एकाधिकार बाजार की अवस्था मे लघु एवं दीर्घकाल में कीमत निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्नः–8 एकाधिकार एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर स्पष्ट करें।

प्रश्न–9 एकाधिकार में दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्णय कैसे लिया जाता है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

इकाई 3– अल्पाधिकार

इकाई संरचाना

3.1 उददेश्य

3.2 प्रस्तापना

3.3 अल्पाधिकार की विशेषताएं

3.4 अल्पाधिकार में कीमत एंव उत्पादन निर्धारण

3.5 कीमत में तत्व

3.5 कीमत नेतृत्व

3.5.1 कीमत नेतृत्व की कठिनाइयॉ

3.6 कपट– सन्धायी अल्पाधिकार

3.7 कार्तेल में कीमत तथा उत्पादन माना का निर्धारण

3.8 विकुचित मॉग वक्र

3.9 विकुचिंत मॉग वक्र एंव अल्पाधिकारी की साम्यावस्था

3.10 सांराश

3.11 महत्वपूर्ण शब्द

3:12 अन्य चयनित पाठन

3.13 सन्दर्भ पुस्तकें

3.14 स्वंपररव प्रश्न

3.1 उददेश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात

- हम अल्पाधिकार प्रतियोगिता को समझेगे
- अल्पाधिकारी बाजार में कीमत निर्धारण को समझेंगे
- अल्पाधिकारी अनिश्चितता को जानेंगे
- अल्पाधिकार प्रतियोगिता में कीमत ने तत्व को जानेगे

3.2 प्रस्तावना

अल्पाधिकार का शाब्दिक अर्थ कुछ विक्रेताओ के बीच प्रतिस्पर्धा से होता है। अर्थात बाजार में बने अल्पाधिकार की स्थिति उस समय

कही जाती है जब उघोग मे समरूप उत्पादों का उत्पादों का उत्पादन करने वाली या स्थानापन्न वस्तुओ का उत्पादन करने वाली फार्मे की संख्या की संख्या कम होती है। अथवा दो से अधिक परन्तु बहुत अधिक नही होते है।

यद्यपि कुछ फार्मे या अधिक फार्मे के मध्य कोई निश्चिय सीमा निर्धारण करना कठिन है परन्तु यादि एक पदार्थ के उत्पादकों अथवा बिक्रेताओ को पदार्थ समान हो तो उसे बिना उत्पाद विभेदीकरण को अल्पाधिकार सा शुद्ध अल्पाधिकार कहा जाता है जब विभिन्न विक्रेताओ या फार्मे के उत्पाद विभदीकृत परन्तु एक दूसरे के निकट स्थानापन्न हो तो इसे उत्पाद विभेदीकृत अल्पाधिकार कहते है।

3.3 अल्पाधिकार की विशेषताए

अल्पाधिकार की निम्नकिंत मुख्य विशेषताएं होती है।

(क) **विक्रेताओ की संख्या का कम होना** : अल्पाधिकार प्रतियोगिता में विक्रेताओ की संख्या कम होती है। बाजार में थोड़े विक्रेता होने के कारण प्रत्येक विक्रेता का पूर्ति के एक बडे भाग पर नियन्त्रण होता हैं तथा फलतः वह बाजार में वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में होता है। एक विक्रेता की उत्पादन नीति व कीमत नीति का प्रभाव दूसरे प्रतियोगी विक्रेताओं की नीतियो पर भी पडता है।

(2) **समूह व्यवहार** : पूर्ण प्रतियोगिता, एकधिकार तथा एकधिकृत प्रातेयोगिता तीनो व्यक्तिगत व्यवहार के सिद्धान्त पर आधारित है जिनमें व्यक्तिगत फर्मे इस प्रकार व्यवहार करती है कि उनके लाभ अधिकतम हों। इसके विपरीत अल्पाधिकार "समूह व्यवहार" का सिद्धान्त हैं समूह की थोडी सी फर्मे। (जिसमे परस्पर निर्भरता होती है।) सामान्य हितों की रक्षा के लिए कभी कभी सहयोग करती है तो कभी कभी व्यक्तिगत हितो को प्राप्त करने के लिए आपस में संघर्ष पर उतारू हो उठती हैं

(3) **परस्पर निर्भरता** : अल्पाधिकार की प्रमुख्य विशेषता विक्रेताओ मे स्पष्ट रूप से पारस्परिक निर्भरता का पाया जाना है। यही कारण होता है। कि व्यक्तिगत विक्रेता को अपनी नीतियो के, अपने प्रतियोगियो पर पड़ने वाले प्रभावो और उनकी प्रतिकियाओ पर सदैव ध्यान देना पड़ता है।

(4) **मॉग वक्र की अनिश्चितता** : अल्पाधिकार की मुख्य विशेषता यह होती है कि अल्पाधिकारी फर्मों का मांग वक्र आय वक्र (AR) अनिश्चित

RIL-082

होता है। माग वक्र यह बताता है कि विभिन्न कीमतों पर एक फर्म अपनी वस्तु भी कितनी मात्रा का विक्रय कर सकती है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक व्यक्तिगत फर्म का वक्र निश्चित माँग तथा दिया हुआ होता है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म समान पदार्थ का अत्पादन करने वाली बहुत फर्मे में एक होती है तथा यह अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो द्वारा उत्पाद की कीमत को प्रभावित नही कर सकती है। इसी कारण पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म जिस माँग वक्र का सामना करती हैं वह दी हुयी कीमत स्तर पूर्ण लोचदार होती है। परन्तु अल्पाधिकार के अर्न्तगत फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण स्थिति भिन्न होती है। अल्पाधिकार में एक फर्म के द्वारा यह जान लेना बड़ा कठिन होता है कि उसके द्वारा कीमत नीति में परिवर्तन करने पर उसके प्रतिद्वन्दी अपनी कीमतो में परिवर्तन करेगे या नही और यदि करेगे तो कितना? चूकि एक फर्म के लिए मॉग वक्र का निर्माण तभी किया जा सकता है जब कि वह निश्चित रूप से पता हो कि प्रतियोगी फर्म की कीमतो में कोई पारिवर्तन होगा। अथवा नही या फिर यह पता हो कि उनकी कीमतो में कितना पारिवर्तन होगा चूकि अल्पाधिकार में अन्य प्रतियोगी फर्मो के व्यवहार के बारे में कोई निश्चित जान कारी नही तो पाती इसलिए एक अल्पाधिकारी फार्मे का मांग वक्र अनिश्चितता लिए होता है।

5. **विज्ञापन तथा विक्रय लागतो का महत्व** : अल्पाधिकारी फार्मो की परस्पर निर्भरता था एक प्रत्यक्षा प्रभाव यह होता कि उघोग की सभी फार्मो का बाजार पर अपना प्रभुत्व जमाये रखने के लिए विज्ञापन तथा विक्रय संवर्धन के रूप में बडी मात्रा में विक्रय लागते खर्च करनी पडती है। वास्तविक रूप में अल्पाधिकार के अन्तर्गत फर्म का अस्तित्व उसके द्वारा किये गये प्रचार तथा विज्ञापन पर निर्भर करता है।

6. **कीमत स्थिरता** : अल्पाधिकार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि कीमत में स्थिरता होती हैं अर्थात अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत एक ही स्तर पर बनी रहती है। चाहे मॉग तथा पूर्ति की दशाओ में कितना ही परिवर्तन क्यो न हो जाए

7. **असंगति** : अल्पाधिकार के अन्तर्गत कार्यरत फर्में एक रूप नहीं होती बल्कि आकार की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होती हैं। कुछ फर्में आकार में बहुत बड़ी तो कुछ बहुत छोटी हो सकती हैं।

8. **उघोग मे फर्मो के प्रवेश तथा बहिर्गमन में कठिनाई** :

अल्पाधिकारी उघोग में नयी फर्मों का प्रवेश कर पाना कठिन होता है। जिसके कारण (1) फर्मो की संख्या परन्तु आधार में बडा होना है, जिसके कारण नयी फार्मे के प्रवेश करने के लिए अत्याधिक पूँजी की आवश्यकता है जो कठिन होता है। 2 अन्पाधिकारी फर्म कच्चे माल की पूर्ति पर प्रायः पूर्णत स्वामित्व प्राप्त कर लेती है तथा वर्तमान फर्मे भारी पूँजीगत विनियोजन के कारण उघोग को आसानी से छोड देती है।

(9) **एक रूप या विभेदित उत्पादन** : अल्पाधिकारी फर्मे एक रूप या विभेदित उत्पादों का निर्माण कर सकती है।

3.4 अल्पाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

अल्पाधिकार में फर्मो की परस्पर निर्भरता तथा प्रतिद्वन्दियो के अनिश्चित व्यवहार ढॉचे के कारण अल्पाधिकार समस्या का समाधान सरल एंव निश्चिता नही है। अल्पाधिकार में कीमत एंव उत्पादन निर्धारण का विश्लेषण अल्पाधिकारी समूह से व्यवहार तथा फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन के कारण प्रतिद्वदियो के प्रतिक्रिया के द्वारा किया जाता है ।

प्रतिद्वन्दी आपस में मिलजुलकर अपने उददेश्यो को प्राप्त करने का निर्माण कर सकते है कम से कम वहॉ तक जहॉ तक वे ऐसा कर सकते है। या फिर वे सदैव एक दूसरे से लडते रहे। यदि आपस में समझौता भी करते है तो वह शीघ्र ही दूर जाता है।

प्रो बोमोल क अनुसार, "जब कि व्यापारी यह सोचता है कि उसकी क्रियाओं का फलस्वरूप उसके प्रतिद्वन्दियों की प्रतिक्रिया क्या होगी, तो उसे यह स्वीकार करना होगा कि उसके प्रतिद्वन्दी भी इस परस्पर निर्भरता को ध्यान में रखते है। फर्मो द्वारा एक दूसरे की प्रतिक्रियाओ को पहले से सोचने के कारण अनुमति प्रविधियों तथा प्रतिप्रविधियों की अन्तक्रिया का जन्म होगा जो इतनी उलझी हुयी होती है कि उनका प्रत्यक्ष विश्लेषण नही किया जा सकता।"

इस प्रकार अल्पाधिकार में कार्यरत फर्म को मिश्रित परिकल्पनाओ की असीमित श्रृंखलाओ को सोचना होता है जैसे कि यदि मैने X क्रिया की तब वह Y क्रिया करने की सोच सकता है परन्तु वह तब यह सोच सकता है कि मैं C क्रिया करूंगा उस दशा में और इस प्रकार के सोचने की कोई सीमा नही है।

प्रो0 रॉशचाइल्ड के अनुसार अल्पाधिकारी का उददेश्य तो अपनी सुरक्षा को अधिकतम करना है अर्थात अधिकत लाभों के स्थान पर दीर्घकाल में उचित मात्रा में स्थायी लाभो को प्राप्ता करना। दूसरी ओर प्रो0 बामोल के

अनुसार अल्पाधिकारी स्थितियो में फर्मो द्वारा बिक्री को अधिकतम करने का उददेश्य पूर्णया उचित होगा। अल्पाधिकारी के वास्ताविक उददेश्य के सम्बन्ध में वाद विवाद के कारण इसमें कीमत और उत्पादन निधारण मे और भी अधिक अनिश्चितता आ जाती हैं अतः उपर्युक्त बातो को ध्यान में रखकर अल्पाधिकारी का कोई एक निश्चित समाधान नही है बल्कि बहुत से सम्भावित समाधान है और प्रत्येक समाधान भिन्न भिन्न मान्यताओ पर आधारित होते है। अर्धशास्त्रियो की दृष्टि में जब एक समस्या का कोई एक समाधान सम्भवन नही हो तो सामान्यता इस समस्या का कोई एक समाधान सम्भव नही होंता है। प्रो0 फ्रीटज मेक्लॅप ने अनिश्चितता की व्याख्या निम्न प्रकार से की है।" यदि अर्थशास्त्रियो के सम्मुख जो प्रश्न है उसका वे पर्याप्त सूचना के अभाव के कारण निश्चित तथा स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाते है तो वे अनिश्चितता की बात करते है। यांदे वे समस्या का समाधान करना चाहते है उदाहरणार्थ कुछ दी हुयी दशाओ में निश्चित वस्तु की कीमत में किस प्रकार परिवर्तन होगें और आते है तो जिन बातो को उन्होने दिया हुआ मान लिया था उनसे दो या अधिक (सम्भवत': असीमित) उत्तर मिल सकते है तो वे यह कहे में कि समस्या को कोई निश्चित समाधान नहो है। उपर्युक्त अर्थो में ही अल्पाधिकारी स्थिति में कीमत उत्पादन निर्धारण का निश्चित समाधान नही मिलता। जैसे कि ऊपर बताया गया अर्थशास्त्रियो ने अल्पाधिकार समूह के व्यवहार (उदाहरण वे आपस मे सहायोग करेगे या प्रतिस्पर्धा करॅगे) उनके उददेश्यो के सम्बन्ध मे वे जिनको प्राप्त करना चाहते है (उदाहरणार्थ वे व्यक्तिगत अथवा संयुक्त लाभो को अधिकतम करना चाहते है या सुरक्षा या बिक्री को अधिकतम करना चाहते है।) तथा एवं फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से उसकी प्रतियोगी फर्मो के प्रतिक्रिया ढ़ाचे के सम्बन्ध मे बहुत सी अनेक मान्यताओ के आधार पर बहुत से मॉडलो का विकास किया है। इस इकाई में इस निम्नांकित माडलो की व्याख्या करेंगे

(i) कीमत नेतृत्व (Price Leadership)

(ii) कपट सन्धायी अल्पाधिकार (Collusive Oligoboly)

(iii) विकुंचन माँग वक्र (kinked Demand Curve)

(iv) कार्टेल में कीमत तथा उत्पादन मात्रा का निर्धारण

3.5 कीमत नेतृत्व (Price Leadership)

कीमत अल्पाधिकारी उघोग की फर्मो के बीच हुए अनौपचारिक समझौते का एक रूप है । कीमत नेतृत्व कीमत निर्धारण की वह रीति है जिसमें कोई एक फर्म जो कि प्रायः बड़ी फार्म होती है, कीमत निर्धारित करती है और बाकी फर्मे इस कीमत का अनुसरण करती है। कीमत निर्धारण की यह रीति

मुख्यतः 'सत्ता शक्तिशाली के हाथ में' "(Survival of the fittest) के सिद्धान्त आधारित है।

3.5.1 कीमत नेतृत्व के प्रकारः

(क) प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग के कुल उत्पादन अधिकांश भाग केवल एक ही फर्म द्वारा उत्पादित किया जाता है तथा शेष भाग छोटी– छोटी फर्मो के द्वारा पूर्ण किया जाता है। फलस्वरूप यह प्रधान फर्म बाजार पर प्रभुत्व जमा लेती है और उसके द्वारा जो भी कीमत निर्धारित की जाती है अन्य छोटी फर्मे कीमत पर व्यक्तिगत प्रभाव न डाल सकने के कारण उसी कीमत को स्वीकार कर लेती है।

(ख) बैरोमीट्रिक कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग की सबसे पुराना, अनुभवी तथा कार्यकुशल फर्म अल्पाधिकार बाजार की अन्य सभी फर्मो के लिए संरक्षण का कार्य करती है। इस अनुभवी फर्म के द्वारा बाजार की दशाओं के अध्ययन के उपरान्त जो भी कीमत निर्धारित की जाती है वह सभी फर्मों के लिए अनुकूलतम होती है तथा मान्य होती है।

(ग) आक्रामक कीमत नेतृत्व : इसके अन्तर्गत उद्योग की कोई बड़ी फर्म जबरदस्ती से अर्थात आक्रामक कीमत नीति के माध्यम से अपना नेतृत्व स्थापित कर लेती है और उद्योग की अन्य फर्मो को अपनी कीमत नीति के पालन के लिए बाध्य कर देती है।

3.5.2 कीमत नेतृत्व के द्वारा कीमत निर्धारण

कीमत नेतृत्व की प्रमुख विशेषता यह है कि कीमत नेता फर्म द्वारा जो कीमत निश्चित की जाती है वह उद्योग की अन्य फर्मो के लिए आधार कीमत का कार्य करती है और वे उसी के अनुसार अपनी कीमतें निश्चित कर लेती है। कीमत नेता कीमत निर्धारित करते समय निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखता है।

(i) उसकी कीमत नीति पर प्रतियोगी फर्मो की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है।

(ii) उसके और उसके प्रतियोगियों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापना की लोच कितनी है, तथा

(iii) उसे अपने प्रतियोगियों की कीमत नीति के बारे में कितना ज्ञान है।

कीमत निर्धारण का कीमत नेतृत्व के अन्तर्गत प्रदर्शन निम्नांकित चित्र संख्या (1) में किया गया है।

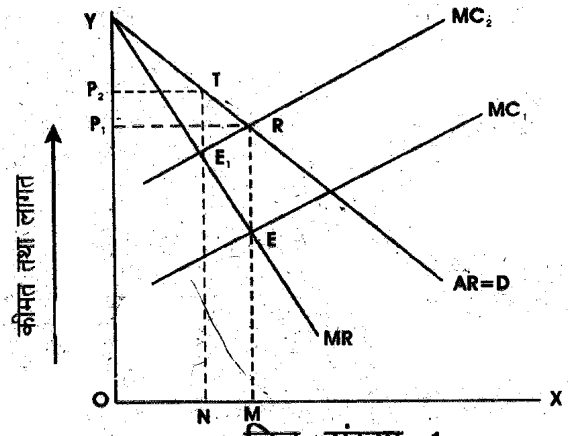

चित्र संख्या 1

उत्पादन की मात्रा

इस सम्बन्ध में हमारी मान्यता यह है कि केवल दो फर्मे A तथा B है और A फर्म को उत्पादन लागत B फर्म से कम है । दूसरी मान्यता यह है कि दोनों फर्मे एक रूप उत्पादों का उत्पादन करती है अतः उपभोक्ताओं को उनमें से किसी एक के लिए कोई विशेष अधिमान या पसन्द नही है।

चित्रानुसार AR औसत आय वक्र या मांग वक्र तथा MR सीमान्त आय वक्र है जो दोनों फर्मो के लिए समान है क्योंकि दोनों एकरूप वस्तुओं का निर्माण करती है।

MC_1 फर्म A का सीमान्त लागत वक्र है जबकि MC_2 फर्म B का सीमान्त लागत वक्र है। MC_1 वक्र MC_2 के नीचे स्थित है क्योंकि हमारी मान्यता के अनुसार फर्म B को तुलना में फर्म A का उत्पादन कम है। फर्म A का साम्य बिन्दु E है। जहाँ $MC_1 = MR$ अतः यह फार्म OM मात्रा का उत्पादन करेगी तथा OP_1 या MR कीमत निर्धारित करेगी दूसरी फार्म का साम्य बिन्दु E_1 जो $MC_2 = MR$ से प्राप्त हुआ है तथा इसके अनुसार कीमत OP_2 होगी। चूंकि फर्म A की कीमत OP_1 फर्म B की कीमत से कम है अतः फर्म A कीमत नेता (price leader) होगी तथा फर्म B कीमत अनुकर्ता (price follower) मानी जाएगी अर्थात A फर्म के द्वारा निर्धारित कीमत ही बाजार में मान्य होगी।

स्मरणीय तत्व यह है कि फर्म B को भी OP_1 कीमत स्वीकार करते हुए OM मात्रा का ही उत्पादन करना होगा क्योंकि OP_1 से अधिक कीमत अर्थात OP_2 कीमत वह रख नही सकती है और OM मात्रा से कम उत्पादन करने पर उसे हानि होगी। अतः स्पष्ट है कि कीमत नेतृत्व की स्थिति में दोनों फर्मे एक समान कीमत OP निश्चित करेगी तथा एक समान उत्पादन (OM) करेंगी। परन्तु इस समानता के बावजूद दोनों में एक अन्तर है और वह यह

RIL-082

है कि फर्म A उत्पादन की OM मात्रा पर अधिकतम लाभ अर्जित करेगी जबकि फर्म B उसी कीमत उत्पादन संयोग पर अधिकतम लाभ प्राप्त नही कर सकेगी क्योंकि उसका लाभ तो ON उत्पादन मात्रा को OP_2 कीमत बेचने पर अधिकतम हो सकता है। इस प्रकार फर्म B को अपनी उॅची उत्पादन लागत के कारण कम लाभ पर ही सन्तोष करना पड़ेगा यदि फर्म B की न्यूनतम लागत फर्म A द्वारा निर्धारित कीमत से भी अधिक है तो ऐसी स्थिति में फर्म B के लिए उस कीमत पर उत्पादन जारी रखना हानिप्रद होगा जिससे वह उद्योग से बाहर हो जाएगी और फलस्वरूप फर्म का एकाधिकार स्थापित हो जाएगा।

3.5.3 कीमत नेतृत्व की कठिनाइयॉ

व्यवहारिक रूप से कीमत नेतृत्व के सम्बन्ध में निम्नांकित कठिनाइयॉ आ सकती है।

(i) कीमत नेता फर्म की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह कहॉ तक अपनी प्रतिस्पर्धी फर्मो की प्रतिक्रियाओं का सही अनुमान लगा सकता है क्योंकि उसके गलत आकंलन से उसका कीमत नेतृत्व खतरे में आ जाएगा।

(ii) दूसरे कठिनाई प्रतियोगी फर्मो द्वारा गैर कीमत प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न होगी। अर्थात प्रतियोगी फर्मे कीमत नेता के द्वारा निर्धारित कीमत पर ही माल बेचने पर, गैर कीमत प्रतियोगिता के द्वारा (उदाहरणार्थ विज्ञापन, विक्रय संबर्धन आदि) अधिक उत्पाद बेचने का प्रयास करेंगी । इस प्रकार कीमत नेता को भी समान गति–विधियों को अपनाना पड़ता है या कीमत घटनी पड़ती है। और हम देख सकते है कि ऐसे में कीमत नेता अपने नेतृत्व को अधिक समय नक नही रख सकता है।

(iii) कभी कभी कीमत नेता के द्वारा निर्धारित कीमत इतनी अधिक होती है कि उसकी प्रतियोगी फर्मो को गुप्त कटौतियॉ काटने के लिए बाध्य होना पड़ता है जिसका असर कीमत नेताओं की विक्री पर भी पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त उॅची कीमत से आकर्षित होकर नयी फर्मे उद्योग में प्रदेश कर सकती है जो सम्भवतः उनके नेतृत्व को स्वीकार ही न करें।

(iv) कभी लागतों में अन्तर होने के कारण भी कीमत नेतृत्व असफल सिद्ध हो सकता है। यदि कीमत नेता की उत्पादन लागत उँची है तो उसके द्वारा निर्धारित उँची कीमत प्रतियोगी फर्मो को गुप्त कटौती के लिए प्रेरित करेगी अथवा इससे उद्योग में नयी फर्मो का प्रवेश हो सकता है जो कीमत नेतृत्व को प्रभावित करेगा।

3.6 कपटसंधायी या गुटबन्दी कीमत निर्धारण (Collusive Oligopoly Price Determination)

स्वतन्त्र कीमत निर्धारण नीति की अनिश्चितताओं एवं हानियों से बचने के लिए कभी कभी अल्पाधिकारी फर्मे आपस में कीमत तथा उत्पादन मात्रा के सम्बन्ध में गुटबन्दी या एक गुप्त समझौती कर लेती है। इस कपट संन्धि का एक मात्र उद्देश्य परस्पर मिलकर अपने हितों की सुरक्षा करना है। जब विभिन्न फर्मे आपस में मिलकर एक औपचारिक समझौता कर लेती है तो उसे कार्टेल (Cartel) या उत्पादक संघ कहते है। यह समझौता अथवा कपट सन्धि पूर्ण हो सकती है या अपूर्ण । पूर्ण गुटबन्दी सम्पूर्ण कार्तेल के अन्तर्गत एक केन्द्रीय संस्था का निर्माण किया जाता है और उसके सभी सदस्य कीमत या उत्पादन सम्बन्धी अपने समस्त अधिकार इस संस्था को सौंप देते है। इसके विपरीत अपूर्ण गुटबन्दी या अपूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत किसी प्रकार की कोई केन्द्रीय संस्था नही होती बल्कि फर्मो के बीच भले आदमियों के रूप में समझौता हो जाता है और प्रत्येक फर्म को कुछ सीमा तक कीमत तथा उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करने का अधिकार बना रहता है।

पूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत यह निर्णय केन्द्रीय संस्था को लेना हाता है कि विभिन्न सदस्य कितना कितना उत्पादन करेगें तथा किस कीमत पर अपने उत्पादों को बेंचेगें। पूर्ण कार्टेल के अन्तर्गत कीमत निर्धारण प्रायः एकाधिकार का जितना कोटा निश्चित करती है उसका निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि कुल उत्पादन की कुल लागत न्यूनतम बनी रहे। लेकिन यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि विभिन्न फर्मो को आबंटित कोटे की मात्रा कितनी हो जिससे कुल लागत न्यूनतम हो सकें। कुल लागत उस स्थिति में न्यूनतम होती है जब कार्टेल की सभी सदस्य फर्मे इन विभिन्न मात्राओं का उत्पादन करें कि जिससे उनकी सीमान्त लागते एक दूसरे की समान बनी रहे। इसका कारण यह है कि सभी फर्मो की सीमान्त लागते समान नही होती है तो कम लागत वाली फर्मे अधिक लागत वाली फर्मो की तुलना में वस्तु का कम लागत पर पैदा कर सकने के कारण विद्रोह कर सकती है और फलस्वरूप

RU-082

कार्टेल या सन्धि के भंग होने की संभावना बढ़ जाती है।

3.7 पूर्ण कार्तेल के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

आइए अब हम केन्द्रीय संस्था या कार्टेल के द्वारा कीमत निर्धारण की चर्चा करेगें। माना तीन फर्म आपस में एक कार्टेल का निर्माण करती है जिसका उद्देश्य अधिकतम संयुक्त लाभ को प्राप्त करना है। उत्पादन की उस मात्रा पर उद्योग का लाभ अधिकतम होगा जहाँ पर उद्योग की कुल सीमान्त लागत (TMC) उसकी कुल सीमान्त आय (TMC) के समान ही जाती है।

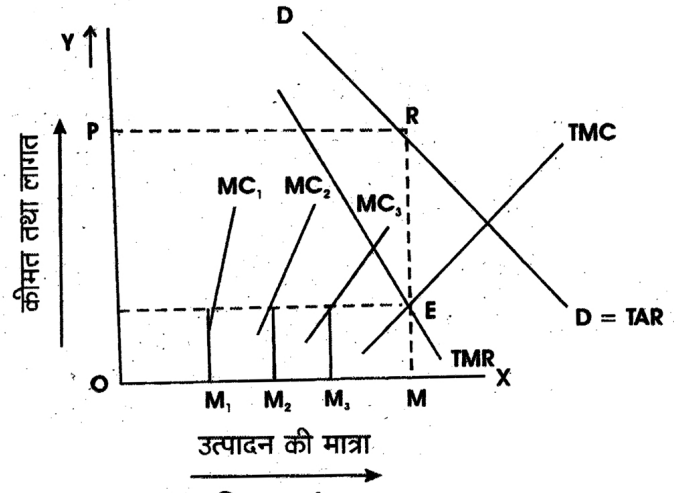

चित्र संख्या 2

उपर्युक्त चित्र संख्या (2) में उद्योग का मांग वक्र DD या कुल औसत आय वक्र (TAR) है जिसे बायी ओर नीचे गिरता हुआ दिखाया गया है। कुल सीमान्त आय वक्र TMR उसके नीचे स्थित है। MC_1, MC_2 तथा MC_3 तीनों फर्मो के क्रमशः सीमान्त लागत वक्र है जो तीनों फर्मो समान सीमान्त लागत को दर्शाते है। इन तीनों वक्रों को क्षैतिज रूप से जोड़कर सम्पूर्ण उद्योग की कुल सीमान्त लागत TMC वक्र तैयार किया गया है।

TMC तथा TMR वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं जो E साम्यावस्था है। उद्योग की उत्पादन मात्रा OM है तथा कीमत OP या MR हैं तीनो फ़र्मो का उत्पादन का कोटा OM_1, OM_2 तथा OM_3 उघोग के कुल उत्पादन OM के समान है। अर्थात $OM = OM_1 + OM_2 + OM_3$

अतः स्पष्ट हैं कि कार्टेल के द्वारा OM माना का उत्पादन करने तथा OP कीमत निश्चित करने पर फर्मो के संयुक्टा लाभ अधिकतम योगे इस संयुक्ता लाभ का वितरण तथा के बीच उनकी उत्पादन मात्राओ के अनुपात में किया जा सकता हैं या उनकी सापेक्षिक सौदा करने की शक्ति के आधार पर किया जा सकता है या लाभ वितरण उस समझौतो के अनुसार

किया जा सकता है जो कार्टेल तैयर करते समय किया गया था। एक बात निश्चित हैं। कि इस संयुक्त लाभ मे से प्रत्येक फर्म को मिलने वाला मान उसने लाभ राशि से अधिक होगा जो गुटबंदी या कार्टेल के अभाव में उन्हे प्राप्त होता

वास्तविकता में पूर्ण कार्टेल एक काल्पनिक स्थिति है तथा इसका होना अत्यना ही दुर्लभ है। सभी फर्मे इस प्रकार की केन्द्रीय संस्था को स्वीकार नही कर सकती है और फिर इस प्रकार की सन्धि करना प्रायः गैर कानूनीं होता है। केन्दीय संस्था के गठन पर यह माना जाता है कि कोई अन्य फर्म प्रवेश नहीं करेगी परन्तु दीर्घकाल मे यह संभव नही हैं लाभ के वितरण के प्रश्न पर कोई सर्वमान्य सूत्र तैयार नही हो पाता जिससे प्रायः ऐसी सान्धि भंग हो जाती है।

3.8 विकुचित मांग वक्र

विकुचत मांग वक्र सिद्धान्त अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण की व्याख्या नही करता, यह केवल इतना बताता है कि जब एक बार अल्पाधिकार में कीमत निर्धारित हो जाती है तो यह अपरिवर्तित या स्थित क्यो रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अल्पाधिकारी जिस मांग वक्र का सामना करता है। उसमे वर्तमान कीमत के स्तर पर विकुचन (Kink) होता है।

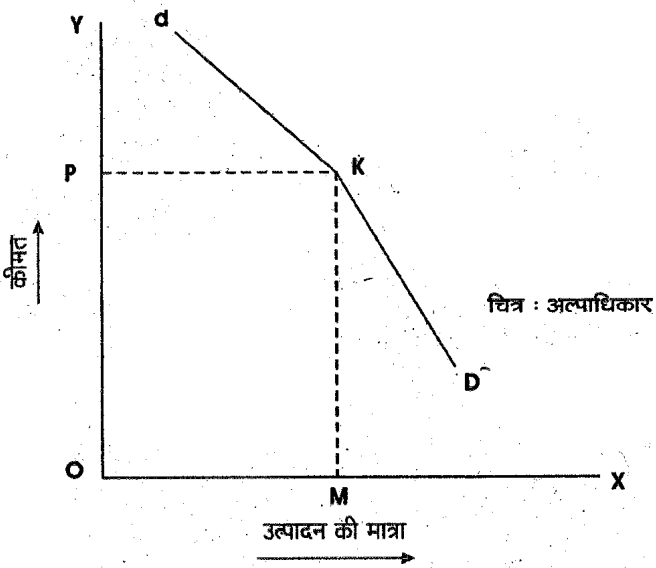

चित्र : अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र

विकुंचन वर्तमान कीमत स्तर पर इसलिए होता है क्योकि माग वक्र का नीचे का भाग जो वर्तमान कीमत से उपर है अत्यन्त लोचदार होता है। तथा वर्तमान कीमत से मांग वक्र का नीचे का भाग वे लोचदार ऊपर दिये चित्र में dD एक विकुचित मांग वक्र है जिसमे K बिन्दु पर विकुंचन है। वर्तमान कीमत स्तर OP है तथा फर्म OM मात्रा का उत्पादन व बिक्री कर

रही है। dD मांग वक्र का ऊपर वाला भाग dD अपेक्षाकृत लोचदार है, तथा निचला भाग KD अपेक्षाकृत बेलोचदार है। लोचो मे अन्तर उस विशेष प्रतियोगी प्रतिक्रिया ढॉचे के कारण होता है जिसकी परिकल्पना विकुंचन माग वक सिद्धान्त मे की गयी है। विकुंचन माग वक सिद्धान के अनुसार प्रतियोगी प्रतिक्रिया को हम इस तरह समझने का प्रत्यत्न करेगे, प्रत्येक अल्पाधिकार यह विश्वास करता है कि यादि वह अपनी कीमत को वर्तमान स्तर से नीचे गिरा देता हैं तो उसके प्रतिद्वन्दी भी ऐसा ही करेगे और अपनी–अपनी कीमतों को गिरा देंगे, परन्तु यदि वह कीमत में वृद्धि कर देता है। (वर्तमान स्तर की कलना में) तो उसके प्रतिद्वन्दी ऐसा नही करेगे अर्थात अपनी अपनी कीमत में वृद्धि नही करेगे। अपने प्रतिद्वन्दियों को दो प्रकार की प्रति– क्रियाओं (कीमत बढ़ने पर एक प्रकार की तथा कीमत कम होने पर दूसरी प्रकार की) के कारण वक का वर्तमान कीमत स्तर से उपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार होता है तथा इससे नीचे का भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार। इसका व्याख्या निम्न प्रकार से की गयी है ।

(क) कीमत में कमी करना: चित्रानुसार यदि अल्याधिकारी अपनी विक्री बढ़ाने के उद्देश्य से अपनी वस्तु की कीमत की वर्तमान कीमत स्तर OP से कम कर देता है। तो उसके प्रतिद्वन्दियों को यह भय होता है कि उनके केता उस अल्पाधिकारी की वस्तु को खरीदना प्रारम्भ कर देगें, जिसने कीमत कम कर दी है। अतः अपने उपभोक्ताओं को अन्य विक्रेताओं के पास जाने से रोकने के लिए उनको भी अपनी कीमतों में उतनी ही कमी करनी पड़ेगी जितनी पहले वाले उत्पादक ने की थी। इस प्रकार एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत कम करने पर उसके प्रतिद्वन्दी द्वारा उसके अनुकरण किए जाने के कारण उसकी बिक्री में कोई विशेष वृद्धि नही होगी। वर्तमान स्तर से नीचे कीमत गिराने से एक एक उत्पादक की बिक्री में थोड़ी से वृद्धि का अभिप्राय यह है कि वर्तमान कीमत से नीचे उसके लिए मॉग बेलोचदार अथवा मूल्य निरपेक्ष है। इस प्रकार दिये गये चित्र में मांग का वक का KD भाग जो कि वर्तमान कीमत OP से नीचे हैं बेलोचदार है जोकि यह दर्शाता है कि कीमत के कम करने पर अल्पाधिकारी की बिक्री में कोई विशेष वृद्धि नही होगी।

(ख) कीमत वृद्धि : अल्पाधिकारी यदि अपनी कीमत को वर्तमान स्तर से बढ़ा देता है तो उसकी विक्री बहुत घट जाएगी। क्योंकि उसकी कीमत में वृद्धि के कारण उसके उपभोक्ता उसकी वस्तु को खरीदने के स्थान पर उसके प्रतियोगियों की वस्तुओं को खरीदने लगेंगें। उसके प्रतियोगी नये केताओं का स्वागत करेंगे और उनकी विक्रियों में वृद्धि हो जाएगी। अतः इन प्रसन्न प्रतियोगियों में कीमत वृद्धि की कोई प्रेरणा नही होगी। जिस

अल्पाधिकारी ने अपनी कीमत में वृद्धि की है वह केवल अधिक अभिमान वाले उपभोक्ताओं को ही रोकने में सक्षम होगी या फिर इन उपभोक्ताओं को रोकने में सक्षम होगें जो उसके प्रतियोगियों से उनकी सीमित उत्पादन क्षमता के कारण पर्याप्त मात्रा में वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते। वर्तमान स्तर से कीमत बढ़ने के कारण अल्पाधिकारी की बिक्री में तीव्र कमी के कारण यह स्पष्ट है कि वर्तमान कीमत से ऊँची कीमतों पर मांग अत्यधिक लोचदार है। इस प्रकार चित्रानुसार मांग वक्र का dK भाग जो वर्तमान स्तर OP से उपर है अधिक लोचदार अथवा मूल्य सापेक्षा है जो इस बात को बताता है कि यदि उत्पादक अपनी कीमत बढ़ा देता है तो उसकी बिक्री में अधिक मात्रा में गिरावट आ जाती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रत्येक अल्पाधिकारी अपने आपको ऐसी स्थिति में पाता है जिसमें उसका अनुमान यह है कि यदि वह कीमत बढ़ाने की सोचता है तो उसके प्रतिद्वन्दी ऐसा नही करेंगे परन्तु उसके द्वारा कीमत गिराते ही अन्य प्रतिद्वन्दी तुरन्त उतनी ही कीमत गिरा देंगे जितनी उसने गिराई है। इस दिये हुए प्रत्याशित प्रतियोगी प्रतिक्रिया ढॉचे की स्थिति में प्रत्येक अल्पाधिकारी की मांग वक्र dD विकुंचित है जिसमें dK उपर वाला भाग अपेक्षाकृत लोचदार है तथा नीचे वाला KD भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार है।

3.9 विकुंचित मांग वक्र तथा अल्पाधिकारी की साम्यावस्था

विकुंचित मांग वक्र की स्थिति में अल्पाधिकारी को वर्तमान कीमत स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले कीमत उत्पादन संयोग को पता लगाने के लिए दिये गये चित्र में विकुंचित मांग वक्र को तदुनुखपी सीमान्त आय वक्र MR बनाया गया है।

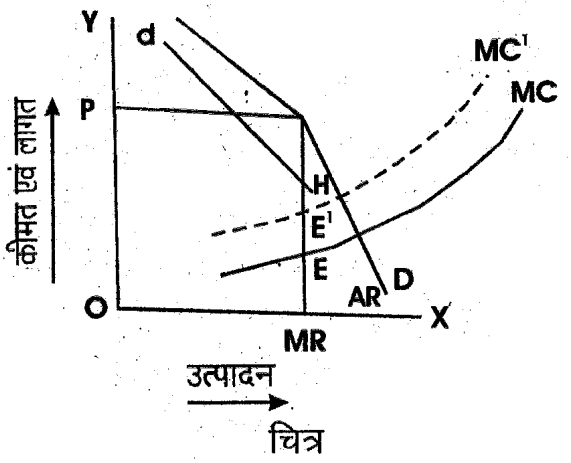

चित्र

विकुंचित मांग वक्र से सम्बन्धित सीमान्त आय वक्र में सान्तरता होती

है या अन्य शब्दों में इसमें उदग्र खण्डित भाग होता है इस सान्तरता की लम्बाई इस बात पर निर्भर करेगी कि मांग वक्र के K बिन्दु पर इस के दो भागों dk तथा KD की लोचों में क्या अन्तर है। दोनों लोचों में अन्तर जितना अधिक होगा, सान्तरता की लम्बाई भी उतनी ही अधिक होगी। दिये गये चित्र में dD विकुंचित मांग वक्र से तदुनुरूप सीमान्त आय वक्र MR बनाया गया है जिसमें HR सान्तर भाग या अन्तराल है। अब यदि अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र इस प्रकार का हूँ कि यदि सीमान्त आय वक्र के सान्तर भाग HR में जो गुजरता है तो अल्पाधिकारी को वर्तमान कीमत स्तर OP पर ही अधिकतम लाभ प्राप्त होगें। अर्थात वह E बिन्दु पर अथवा OP वर्तमान कीमत तथा उत्पाद मात्रा OM पर सन्तुलन में होगा। अल्पाधिकारी चुंकि सन्तुलन में है अथवा अन्य शब्दों में वर्तमान कीमत स्तर पर अपने लाभों को अधिकतम कर रहा है उसके लिए कीमत में परिवर्तन करने के लिए कोई प्रेरणा नही होगी। यदि लागतों में परिवर्तन होता है जब तक सीमांत वक्र सीमान्त आय वक्र के HR अन्तराल से गुजरता है तब तक कीमत स्थिर रहेगी। उपर्युक्त दिये गये चित्र में जब लागतों में वृद्धि के कारण सीमान्त लागत वक्र MC से विवर्तित होकर MC^1 हो जाता है तो सन्तुलन कीमत या साम्यावस्था कीमत तथा उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता क्योंकि नया सीमान्त लागत वक्र MC भी अन्तराल HR में से गुजर रहा है।

इसी प्रकार विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त स्पष्ट करता हूँ कि मांग दशाओं में परिवर्तन की स्थिति में भी कीमत स्थिर रहती है। इसको हम निम्नांकित चित्र की समझने का प्रयास करेंगें । चित्रानुसार जबकि अल्पाधिकारी के पदार्थ की मांग dkD से बढ़कर $d^1k^1D^1$ हो जाती है तो दिया हुआ सीमान्त लागत वक्र MC नये सीमान्त आय वक्र MR^1 के अन्तराल से गुजरता है अर्थात अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत OP प्रचलित रहेगी।

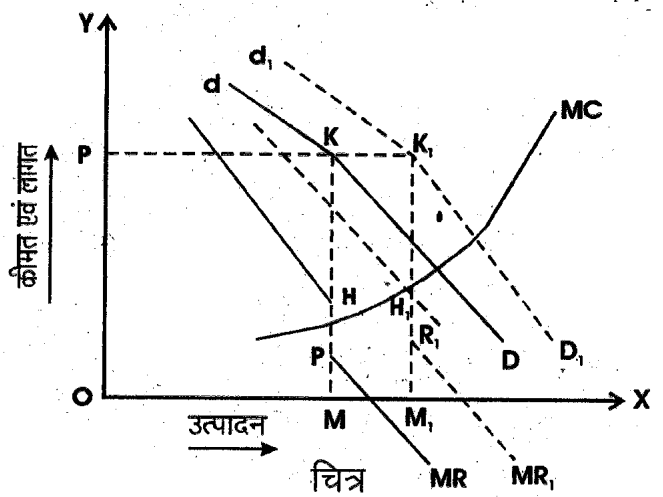

चित्र

विकुंचित मांग वक्र से हम यह नही कह सकते है कि जब भी लागत व मांग दशाओं में परिवर्तन आता है तो कीमत पूर्व की ही भांति रहती है। लागत एवं मांग दशाओं में परिवर्तन होने पर कब काम में परिवर्तन होने की सम्भावना है और कब इसके बदल जाने की, इसकी हम निम्न प्रकार से समझने का प्रयास करते है।

(1) जब उत्पादन लागत में कमी होती है तो कीमत के स्थिर रहने की सम्भावना अधिक होती है। जब उत्पादन लागत गिरती है तो वर्तमान कीमत से मांग वक्र का उपर का भाग अधिक लोचदार बन जाएगा क्योंकि कम लागतों के साथ इस बात की अधिक निश्चित सम्भावना है कि अल्पाधिकारी द्वारा बढ़ाए जाने पर उसके प्रतिद्वन्दी अपनी कीमतों में कमी नही करेंगें और इसके अल्पाधिकारी की विकी बहुत मात्रा में घट जाएगा। दूसरे दृष्टिकोंण से लागतों में कमी होने पर वर्तमान कीमत के नीचे वाला मांग का वक्त का भाग अधिक बेलोचदार बन जाएगा क्योंकि लागतों में गिरावट के कारण इस बात की निश्चित सम्भावना है कि अल्पाधिकारी द्वारा कीमत के कम किये जाने पर उसके प्रतिद्वन्दी भी कीमत के कम कर देगें।

(2) लागत में वृद्धि होने पर कीमत स्थिर या दृढ़ नहीं रहेगी। जब उद्योग की लागत बढ़ जाती है तो एक अल्पाधिकारी यह उचित रूप से सोच सकता है कि उसके द्वारा कीमत में वृद्धि करने पर उद्योग के अन्य उत्पादक भी उसका अनुसरण करेंगे। इसके फलस्वरूप वर्तमान कीमत स्तर से माग के वक्र का उपर वाला भाग कम लोचदार बन जाएगा। अतः dPD कोण अधिकोण बन जाने कारण सीमांत आय वक्र में अन्तराल छोटा होने पर ऊँचा सीमांत लागत वक्र इसको H बिन्दु से ऊपर काटेगा जो बढ़ी हुई साम्यावस्था कीमत तथा साम्यावस्था उत्पादन को दर्शाता है। अतः विंकुचित मांग वक्र से यह ज्ञात होता है कि लागत वृद्धि की दशा में कीमत के स्थिल रहने की संभावना नहीं है।

(3) यदि मांग में कमी आती है तो इसकी सम्भावना अधिक है कि कीमत स्थिर या दृढ़ रहेंगी और इसमें गिरावट नही होगी। जब मांग गिरती है तो यह निश्चित हो जाता है कि यदि कोई अल्पाधिकारी कीमत में कमी की क्रिया की प्रारम्भ करता है तो अन्य उसका अनुसरण करेंगे जिसका परिणाम होगा कि मांग वक्र का निचला भाग अधिक

बेलोचदार होगा। दूसरी ओर मांग के कम होने की स्थिति में यह प्रायः निश्चित है कि एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत में वृद्धि करने की स्थिति में अन्य अल्पाधिकारी उसका अनुसरण नही करेगें। फलतः माग वक्र का ऊपर वाला भाग अधिक लोचदार अर्थात लगभग क्षैतिज बन जाता है। उपरी भाग में लोच वृद्धि एवं नीचे वाले भाग में लोच की कमी के कारण सीमान्त आय वक्र में अन्तराल बढ़ जाएगा अतः मांग वक्र dPD नीचे की ओर विवर्तित होता है। सम्भावना इस बात की अधिक है कि दिया हुआ सीमांत लागत वक्र सीमान्त आय वक्र का अन्तराल के अन्दर ही काटेगा तथा यह स्पष्ट हो जाता है कि मांग में कमी होने पर कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना होती है।

(4) यदि मांग में वृद्धि हो जाए तो कीमत के स्थिर रहने की सम्भावना नहीं होगी जब कि इसके स्थान पर कीमत में वृद्धि की सम्भावना होती है। मांग में वृद्धि की दशा में एक अल्पाधिकारी यह आशा कर सकता है कि वह कीमत में वृद्धि करता तो उसके प्रतियोगी सम्भवतः उसका अनुसरण करेगें। अतः मांग वक्र का उपर वाला भाग dP कम लोचदार बन जाएगा और dPD कोंण अधिक कोंण होना फलतः सीमांत आय वक्र में HR अन्तराल कम हो जाएगा और यदि यह अन्तराल बहुत कत हो जाता है तो इस बात की सम्भावना अधिक है कि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को H बिन्दु के उपर अर्थात अन्तराल के उपर कटेगा। इससे यह पता चलता है कि कीमत OP से अधिक हो जाएगी।

3.9 सारांश

हम यह कह सकते है कि अल्पाधिकारी का विकुंचित मांग वक्र विश्लेषण गिरती लागतों या गिरती मांग की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है जबकि लागतो के बढ़ने या मांग को बढ़ने पर कीमतों में बढ़ने की सम्भावना होती है।

3.10 महत्वपूर्ण शब्द

समूह व्यवहार, परस्पर निर्भरता, कीमत नेतृत्व, कपट संधायी या गुटबन्दी कीमत निर्धारण विकुंचित मांग वक्र

3.11 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स– बोएस
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– डीन
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन– ए0के0अग्रवाल

3.5 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– मोते, पॉल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त– एच0एल0 आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– थॉमस मॉरिस

3.14 स्व परख प्रश्न

प्रश्नः–1–अल्पाधिकार से आप क्या समझते है? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

प्रश्न–2– अल्पाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्न–3– अल्पाधिकार के सम्बन्ध में कीमत नेतृत्व माडॅल को समझाइये। इसके कितने प्रकार है।

प्रश्न–4– कीमत नेतृत्व के द्वारा कीमत निर्धारण कैसे होता है इसकी क्या क्या कठिनाइयॉ है?

प्रश्न–5– अल्पाधिकार के सम्बन्ध में कपटसंधायी कीमत निर्धारण माडल को समझाइये।

प्रश्न–6– पूर्णकार्ते के अन्तर्गत कीमत निर्धारण कैसे होता है। चित्र द्वारा समझाये।

प्रश्न–7– विकुचित मॉग वक्र को समझायें।

प्रश्न–8– विकुचित मॉग वक्र तथा अल्पाधिकार की साम्यवास्था को चित्र द्वारा समझाइये ।

RIL-082

इकाई 4 गैर कीमत प्रतिस्पर्धा (Non price computation)

इकाई संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विक्रय लागत एवं समूह साम्य

2.4 गैर कीमत प्रातेस्पर्धाएं

4.4.1 उत्पादन नवीनीकरण

4.4.2 विज्ञापन

4.5 सारांश

4.6 महत्वपूर्ण शब्द

4.7 अन्य पाठ्य स्त्रोत

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें/स्त्रोत

4.9 स्व–परख प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त छात्र निम्नांकित उददेश्यो को पूर्ण करने में सफल होगें।

> गैर कीमती प्रतिस्पर्धा के अवयवों को पहचानने में

>विक्रय लागत एवं समूह साम्य की अवस्था को समझने में

> गैर कीमत प्रतिस्पर्धा की रणनीतियो को समझने में

> उत्पादो के सफल विक्रय में विज्ञापन के महत्व को समझने मे

4.2 प्रस्तावना

अभी तक की इकाइयो में हमने मूल्य/कीमतो सम्बन्धी प्रतिस्पर्धात्मक कारको का अध्ययन किया तथा इसमें फर्म के उत्पादन एंव लाभ साम्यो पर सीधे रूप से प्रभाव पडता है। चैम्बरलिन के विश्लेषण को यदि हम देखे तो हम कह सकते हैं कि कीमत प्रतिस्पर्धा से सदैव फर्मो को हानि ही होती है। अर्थात सभी फर्मे हानि वहन करती हैं तथा कोई भी फर्म लाभ अर्जित नहीं

करती है। इस कारण फर्म कीमत प्रतिस्पर्धा में अतिरिक्त अन्य गैर कीमती प्रतिस्पर्धाओ को प्रयोग में लाती हैं जिससे कि उनकी हानि कम हो तथा वे लाभ अर्जित कर सके और इस प्रकार अपने बाजार में भागीदारी को भी बढा सकें।

सामान्यतया गैर–कीमत प्रतिस्पर्धात्मक तरीके में विज्ञापन एंव उत्पाद नवीनीकरण मुख्य है। वास्तविकता तो यह हैं कि उत्पाद नवीनीकरण एवं विज्ञापन दोनो साथ–साथ होते हैं। यदि किसी उत्पाद में कोई नवीनीकरण लाया जाता हैं तो उस उत्पाद की सफलता विज्ञापन पर ही निर्भर होगी। यदि विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओ को उत्पाद के नवीनीकरण की उपयोगिता समझ में आती है। तो उपभोक्ताओ मे ऐसे उत्पादो की स्वीकार्यता बढ़ जाती है। एकाधीकृत प्रतिस्पर्धा में विज्ञापन के लागत के अतिरिक्त फर्मे अपने विक्रय को बढाने के लिए अन्य प्रतिस्पर्धात्मक तरीकों पर भीं खर्च करती है। उदाहरणार्थ विक्रयकर्मियो पर डीलरो पर सैम्पल देने में प्रदर्शन करने में उपभोक्ताओ को मुफ्त सैम्पल देने एवं उपहार देने में तथा वस्तुओ की आकर्षक पैकेजिंग इत्यादि में आने वाले खर्च इस प्रकार की सभी लागतें एवं विज्ञापन लगाते एक फर्म की विक्रय लागतो में वृद्धि करती है।

विक्रय हेतु लागतो में वृद्धि से विक्रय मे वृद्धि होती हैं परन्तु इसकी मात्राएँ भिन्न– भिन्न होती हैं। सामान्यतः प्रारम्भ में तो विक्रय वृद्धि बढ़ी हुयी दर पर होती हैं। परन्तु शनैः–शनैः यह घटती हुयी दर पर होती है। इस प्रकार से विक्रय की औसत लागत प्रारम्भ में तो घटती है परन्तु अन्ततः बढ़ ही जाती है। इस कारण औसत विक्रय वक्र U आकार का होता है जो पराम्परागत औसत लागत वक्र के समान ही होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि कुल विक्रय बढ़ती हुयी विक्रय लागत से घटते आगम की विषय वस्तु होती है।

4.2 विक्रय लागत एवं समूह साम्याव्रस्था (Selling Cost & Group Equilibrium)

किसी फर्म के समूह साम्य को विक्रय लागत के साथ विश्लेषण करने के लिए हम यह मानते है कि किसी भी फर्म का मुख्य उददेश्य लाभ अधिकतम करना ही होता हैं। जब फर्म अपनी विक्रय लागतो में वृद्धि करती है। तो इनका मुख्य उद्देश्य अपनी फर्म को लाभांश में वृद्धि करना है। प्रारम्भ की इकाई में लागत एंव आगम सम्बन्धी सभी पूर्व धारणाएँ समान रहेंगी। नीचे दिये गये चित्र में समूह साम्य को प्रदर्शित किया गया है।

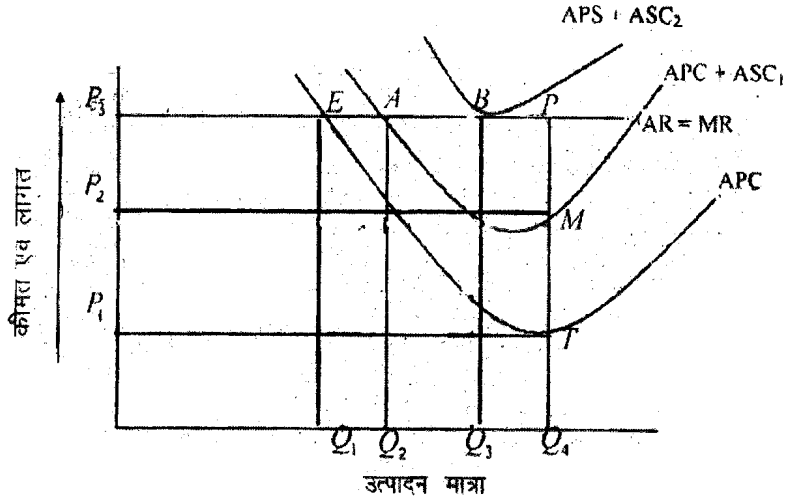

चित्र-1 : विक्रय लागत एवं समूह साम्य

चित्र – 1 : विक्रय लागत एवं समूह साम्य

माना कि APC औसत उत्पादन लागत को दर्शाती है तथा इसकी कीमत QP_3 पर प्रदर्शित हैं। यहाँ पर किसी भी फर्म में कोई विक्रय लागत नही है। माना कि सभी फर्में E बिन्दु पर साम्यावस्था में हैं जहाँ वे अपना साधारण लाभांश अर्जित करती है। माना कि अब एक फर्म अपनी विक्रय लागत को बढाती है तथा इस कारण औसत उत्पादन लागत APC_3 औसत विक्रय लागत ASC के साथ मिलकर चित्र में वक्र $APC + ASC_1$ तक बढ़ जाती हैं तथा कुल विक्रय OQ_4 तक बढ़ जाता है। उत्पादन मात्रा OQ_4 पर फर्म असाधारण लाभ P_3 PMP_2 अर्जित करती है। यह लाभ तभी तक सम्भव है जब तक कि अन्य फर्में भी अपने उत्पादों के लिए विज्ञापन प्रारम्भ नहीं कर देती हैं। यदि अन्य फर्में भी अपने उत्पादों का विज्ञापन का प्रारम्भ कर देती हैं और उनकी विक्रय लागत भी इसी मात्रा में बढ़ जाती है तो सर्वप्रथम विज्ञापन करने वाली फर्म का लाभ समाप्त हो जाता है तथा उत्पादन OQ_2 तक गिर जाता है। वास्तविकता में सभी फर्में साम्यावस्था के बिन्दु A पर पहुँच जाती हैं तथा OQ_2 इकाइयों का उत्पादन करती हैं। परन्तु इनकी दूरदृष्टि दोष के कारण वे अपनी विक्रय लागत को बढ़ाने के लिए मजबूर हो जाते हैं क्योंकि वे अपनी औसत उत्पादन लागत (APC) को, उत्पादन बढ़ाकर कम करना चाहते हैं। बढ़ी हुयी विक्रय लागत के साथ उनके APC+ASC वक्र पुनः ऊपर की ओर विस्थापित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया APC + ASC के, AR=MR तक स्पर्श रेखा होने तक चलती है। इस स्थिति को B बिन्दु पर प्रदर्शित किया गया है। B बिन्दु के पश्चात् किसी फर्म को विज्ञापन करते हुए नहीं देखा जाता है। साम्यावस्था B बिन्दु पर ज्यादा समय तक स्थिर रहती है जहाँ प्रत्येक फर्म OQ_3 मात्रा उत्पादित करती है तथा सामान्य लाभ अर्जित करती है।

RIL-082

आइए अब हम अन्य गैर कीमत प्रतिस्पर्धात्मक विधियों का संक्षेप में अध्ययन करेंगें।

4.4 गैर कीमत प्रतिस्पर्धाएं (Non-Price Competitions)

जैसा कि हमने पहले के बिन्दुओं में पढ़ा कि गैर कीमत प्रतिस्पर्धाओं में मुख्यतः विज्ञापन एवं उत्पाद नवीनीकरण विधियाँ आती हैं। इस भाग में हम इन विधियों का विस्तृत वर्णन करेंगे।

4.4.1 उत्पाद नवीनीकरण (Product Innovation)

जैसे–जैसे प्रतिस्पर्धा तकनीकि का विकास हुआ है वैसे–वैसे उत्पाद नवीनीकरण एवं नये उत्पादों का सृजन एक आम बात हो गयी है। भरतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है तथा इसमें कुछ शाक्तिशाली उपभोक्ताओं के हाथ में ही अधिकांश उत्पादों की सफलता प्रायः रहती है। जिस प्रकार से विगत दो दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था का सकारात्मक विकास हुआ है उसमें उत्पाद नवीनीकरण की संभावनाएं एवं सफलता की प्रबलताएँ काफी बढ़ गयी हैं। तकनीकि एवं वैश्वीकरण के प्रभाव से उत्पादों की डिजाइन, स्टाइल एवं पैकेजिंग आदि से सम्बन्धित कारक आज के युग में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये हैं तथा उत्पाद लागतों को तो प्रत्येक फर्म ध्यान में रखकर कम करने में लगी है। उत्पाद नवीनीकरण की रणनीतिक आवश्यकता को हम निम्न सारणी की सहायता से समझ सकते हैं।

	वर्तमान उत्पादन (Existing Product)	नवीन उत्पादन (New Product)
वर्तमान बाजार (Existing Market)	बाजार में घुसने की रणनीतियाँ (Market Penetration Strategies) बाजार की साझेदारी में वृद्धि उत्पाद के प्रयोग की आवृत्ति में वृद्धि उत्पाद के प्रयोग की आवृति में वृद्धि उत्पाद की मात्रा में वृद्धि उत्पाद के नये प्रयोग	उत्पादन विकास रणनीतियाँ (Product Development Strategies) उत्पाद सुधारीकरण उत्पाद रेखा विस्तार समान बाजार के लिए नये उत्पाद

उपर्युक्त सारणी में स्पष्ट हैं कि विपणन राणनीति के अन्तर्गत जब हमको वर्तमान बाजार में वर्तमान उत्पाद के साथ ही प्रतिस्पर्धा करनी होती है तो उत्पाद विकास की रणनीतियाँ महत्वपूर्ण होती हैं तथा जब नये बाजार में नये उत्पाद नवीनीकरण एवं नये उत्पाद विकास की आवश्यकता होती है। नये उत्पाद से हमारा तात्पर्य भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न हो सकता है। नये उत्पादों के सिद्धान्त को हम निम्न प्रकार से समझने का प्रयास कर सकते हैं।

(1) विपणन नवीनीकरण (Marketing Innovation)

जब कम्पनी वर्तमन उत्पादों में ही कुछ सुधार करती है तथा इनको बाजार में उतारती है। उदाहरण के लिए पेप्सी एवं कोक पेय पदार्थो को टिन कैन में उतारना, मारूती 800 के वाह्य ढाँचे की बनावट में एवं हेडलाइट तथा बैकलाइट के परिवर्तन करना, साबुनो के आकार में बदलाव करना आदि इस प्रकार किये बदलावों के प्रति उपभोक्ता को स्वयं की उत्पाद आदतों में बहुत बदलाव नहीं करना पड़ता है तथा उनका संतुष्टि स्तर कुछ बढ़ जाता है। जबकि नये उपभोक्ता इस प्रकार के सुधार उत्पादों के प्रति आकर्षित हो जाते है। इस प्रकार के उत्पादो को विपणन नवीनीकरण की श्रेणी में इसलिए रखा गया है क्योंकि सुधार का मुख्य आधार विपणन के अवयवों के द्वारा ही निर्धारित होता है जैसे कि पैकेजिंग में बदलाव, ब्रॉडिंग में बदलाव, आसान उपलब्धता आदि।

2. उत्पाद सुधारीकरण (Product Improvements)

जब उत्पाद तो अपने मूलभूत श्रेणी में उपलब्ध रहता हैं परन्तु तकनीकि तथा डिजाइन रूपी परिवर्तन से वह श्रेणी में नया मालूम प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ 100cc स्ट्रीट दोपहिया वाहन हीरो हॉण्डा के द्वारा एंव स्कूटी का बाजार में उतारा जाना । इस प्रकार के उत्पादो का निर्माण नये उपभोक्ताओ को आकर्षित करने के लिए होता है। उदाहरणार्थ स्ट्रीट एवं स्कूटी उत्पादो को बाजार में मुख्यतः लडकियों/स्त्रियों एवं बुर्जुग उपभोक्ताओ के उपयोग के लिए उतारा गया था। इस प्रकार के उत्पादो की सफलता के लिए विपणनकर्ता को अपने उपभोक्ताओ को यह समझना पड़ता है कि उस समय के वातावरण में यह उत्पाद किस प्रकार ज्यादा उपयोगी है। उदाहरणार्थ स्कूटी में गियर

का न होना तथा ब्रेक हाथों में ही होना, वजन कम होना, माइलेज अधिव होना, प्रदूषण न्यूनतम होना, आज के वातावरण में इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है

3. तकनीकी नवीनीकरण (Technological Innovations)

सूचना क्रांति के युग मे कम्प्यूटर्स की मदद से कई नयी तकनीकियों का विकास हुआ है। यदि हम कम्प्यूटर्स की बात करें तो पेण्टियम प्रोसेसर से लेकर P_1, P_2, P_3, P_4 डुअल कोर एवं कोर टू ड्यो माइक्रोप्रोसैसर इसी का एक उदाहरण है। इसी प्रकार नोकिया कम्पनी ने मोबाइल फोन सेट में आध ुनिकतम तकनीकी बदलाव उदाहरणार्थ 3G तकनीकी आदिलाकर एक अच्छी बाजार साझेदारी को प्रदर्शित किया है।

उत्पाद नबीनीकरण/नये उत्पाद विकास के तरीके :–

(क) तकनीकी का स्थानान्तरण (Transfer of Technology)

(ख) नये बाजार में घुस बैठ (Penetration in New Market)

(ग) नये उत्पाद रेखा (New Product Line)

(घ) लागत मे कमी (Cost Reduction

(ड.) उत्पाद रेखा में विस्तार (Extension in Product Line)

(च) उत्पाद की पुनिर्स्थिति अथवा पुनः उतारना (Repositioning or Relaunch of product)

(क) तकनीकि का स्थानान्तरण (Transfer of Technology)

जैसे जैसे नयी–नयी तकनीकियो का विकास हुआ है। वैसे–वैसे नये उत्पादों को बाजार में उतारा गया है। उदाहरणार्थ 3G मोबइल फोन, पेन ड्राइव, वेब कैमरा इत्यादि

(ख) नये बाजार में घुस पैठ (Penetration in New Market)

किसी नये बाजार में भी घुस पैठ बनाने के लिए नसे उत्पादो को उस बाजार में उतारा जाता है। उदाहरणार्थ डाइबिटीज के उपभोक्ताओ को या कैलोरी सजग उपभोक्ताओ के लिए डाइट कोक, महिलाओ के लिए वोदका शराब ग्रामीण क्षेत्रो के बच्चों के लिए छोटे पैक में बिस्कुट, ग्रामीण स्थितियों

के लिए राजदूत मोटर साइकिल आदि उत्पाद विस्तृतीकरण भी इसी का एक उदाहरण है।

(ग) उत्पाद रेखा में विस्तार (Extension in Product Line)

प्राय: यह देखा गया है कि उपभोक्ताओं की बढ़ती माँग को दृष्टिगत करते हुए कम्पनियाँ अपने उत्पाद रेखा (श्रेणी) में कुछ और उत्पादों को जोड़ देती है। उदाहरणार्थ, वीडियोकॉन कम्पनी ने व्हाइट गुड्स श्रेणी में वाशिंग मशीन के साथ–साथ रेफ्रीजरेटर आदि उत्पादों को भी बनाना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार गोदरेज ने भी नॉन ड्यूरेबल्स उत्पादों के साथ–साथ व्हाइट गुड्स जैसे कि रेफ्रिजरेटेर आदि को उत्पाद श्रेणी को बनाना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त ऑफिस फर्नीचर आदि भी इसकी उत्पाद रेखा (श्रेणी) में शामिल है।

(घ) वर्तमान उत्पादों में सुधारीकरण (Improvements in Existing Products)

बढ़ती हुयी प्रतिस्पर्धा में अच्छी गुणवत्ता एवं अलग लक्षणों के लिए कम्पनी प्राय: अपने वर्तमान उत्पाद रेखा के उत्पादों में सुधार करती है या नयी रेंज उतारती है। उदाहरणार्थ लाइफबॉय साबुन के अतिरिक्त लाइफबॉय प्लस, लाइफबॉय इण्टरनेशनल एवं लाइफबॉय गोल्ड ब्राण्डों का उत्पादन। बजाज ऑटो के द्वारा RTZ एवं विण्ड एवं कैलिवर मोटर साइकिलों को बन्द करें डिस्कवर एवं पल्सर मोटरसाइकिलों का उत्पादन भी इसी का एक उदाहरण है।

(ड़) लागत में कमी (Cost Reductions)

बाजार में प्रतिस्पर्धा को जीतने के लिए कम्पनियाँ अपने उत्पादों की लागत में कमी करके अथवा कम लागत से बजे कम कीमत के उत्पादों को बाजार में बेचकर भी अपनी स्थिति को सुदृढ़ करती है। उदाहरणार्थ Ariel Compact के अतिरिक्त पर Ariel Gain मध्यम वर्गीय लोगों के लिए एक तुलनात्मक सस्ता वाशिंग पाउडर था। इसी प्रकार Ariel एवं Surf की तुलना में Tide भी एक तुलानात्मक रूप से सस्ता उत्पाद है।

(च) उत्पाद को पुनः उतारना (Product Relaunch)

कभी–कभी उत्पाद/ब्राण्ड की घटना मॉग को देखते हुए उसे नये

डिजाइन या लक्षण के साथ बाजार में उतारा जाता है। उदाहरणार्थ, मारूती 800 के स्थान पर New Maruti 800 का उत्पादन, स्प्लेण्डर के स्थान पर स्प्लेण्डर प्लस, व्हील के स्थान पर ब्लू या व्हील ग्रीन आदि इसके उदाहरण है।

4.4.2 विज्ञापन (Advertising)

विज्ञापन संप्रेषण का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम सीधे तौर पर अपने उपभोक्ता को प्रभावित करके उत्पाद के विक्रय को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। यदि हम विज्ञापन को परिभाषित करें तो यह सम्प्रेषण का एक ऐसा प्रकार है जिसमें विपणनकर्ता या प्रायोजक किसी उत्पाद के संवर्धन के लिए उपभोक्ता को उत्पाद खरीदने के लिए किसी उचित माध्यम के प्रयोग के द्वारा संदेश के द्वारा प्रेषित करता है तथा यह सम्प्रेषण गैर वैयक्तिक होता है। विज्ञापन के द्वारा किसी ब्राण्ड की एक विशेष पहचान को दर्शाया जाता है तथा निम्न प्रकार से विज्ञापन किसी उत्पाद के लिए एक स्वीकार्य विधि का कार्य करता है। अर्थात निम्न प्रकार से उत्पाद की स्वीकार्यता में विज्ञापन मदद करता है।

उत्पाद/ब्राण्ड की जागरूकता उत्पन्न करना → उत्पाद या ब्राण्ड में रूचि पैदा करना

उत्पाद या ब्राण्ड का मूल्यांकन करना

उत्पादन या ब्राण्ड को प्रयोग करके देखना

उत्पाद या ब्राण्ड के लम्बे समय के लिए स्वीकार करना।

4.4.2.1 विज्ञापन एवं विपणन मिश्रणः–

बजार में प्रतिस्पर्धा को जीतने के लिए विज्ञापन का प्रयोग कोई भी विक्रेता निम्न प्रकार से कर सकता है।

(1) विज्ञापन की मात्रा, जोर तथा समय उत्पाद के जीवन चक्र की अवस्था पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ यदि हम उत्पाद जीवन चक्र के प्रारम्भिक अवस्था में है तो इस उत्पाद के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए हमें अधिकतम विज्ञापन का प्रयोग करना होता है।

(2) विपणन शोध के द्वारा हम यह जान सकते है कि कोई उपभोक्ता किसी उत्पाद के प्रति किन अभिप्रायों को ध्यान में रखकर खरीदता है तथा इन अभिप्रायों को हम विज्ञापन में प्रयोग करके उत्पाद को सफलता से बाजार में बेंच सकते है।

(3) किसी विज्ञापन की प्रति (Ad Copy) अथवा विधि में ब्राण्डिंग अथवा ब्राण्ड नाम की महत्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ नाइकी जूतों के विज्ञापन में (Just do it) का प्रयोग, एक्शन शूज में कार्य करने की क्षमता का प्रयोग आदि।

(4) किसी भी उत्पाद की छवि विज्ञापन के द्वारा ज्यादा निखर के आती है क्योंकि विज्ञापन में हम किसी भी ब्राण्ड अम्बेसडर या सेलिब्रिटी का प्रयोग करते है जो उसके समतुल्य छवि का निर्माण करता है। उदाहारणार्थ यदि ब्राण्ड को सचिन तेन्दुलकर या अभिताभ बच्चन के साथ दिखाया जाए तो भारतीयों में उसकी स्वीकार्यता बढ़ जाती है।

(5) किसी विज्ञापन का निर्माण अर्थात् उसकी पृष्ठभूमि एवं रचनात्मकता उत्पाद के खण्ड के उपभोक्ताओं को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है। अर्थात उपभेक्ता की पृष्ठभूमि, उसकी जीवन शैली, उसकी आय आदि मुख्य कारक होते हैं।

(6) पैकेजिंग की विज्ञापन में अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरणार्थ सॉफ्ट ड्रिंक्स की बोतलों का आकार, साबुन के आकार आदि, साथ ही पैकेजिंग में रंगों का इस्तेमाल भी विज्ञापन को आकर्षक बनाने में मदद करता है।

(7) वितरण बिन्दुओं पर भी विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करके उत्पाद की स्वीकार्यता को बढ़ाया जा सकता है।

(8) विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ता की उत्पादों/ब्राण्ड में रूचि बनायी रखी जा सकती है तथा इसके द्वारा उपभोक्ताओं में स्वामिभक्ति (Loyalty) को भी बनाया रखा जा सकता है।

4.5 सारांश

चूँकि आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में अनन्य उत्पाद (ब्राण्ड) बाजार में

उपस्थित हैं अत: कम्पनी ब्राण्ड के उपभोक्ता को याद रखने के लिए निरन्तर विज्ञापन करती है। ताकि उपभोक्ता उनके ब्राण्ड को भूल न जाए। इस प्रकार से विज्ञापन एवं उत्पाद नवीनीकरण का प्रयोग गैर कीमत रणनीति के तहत किया जाता है कीमत प्रतिस्पर्धा की एक निश्चित सीमा होती है तथा कोई भी कम्पनी एक सीमा के बाद कीमत प्रतिस्पर्धात्मक को बनाए नहीं रख सकती है और यहाँ पर उसे गैर कीमत प्रतिस्पर्धा विधियों को अपनाना पड़ता है। गैर कीमत प्रतिस्पर्धा में एक लाभ यह होता है कि कम्पनी के उत्पाद एवं ब्राण्ड की छवि उपभोक्ता के मस्तिष्क में अधिक समय तक रह सकती है और ज्यादा से ज्यादा स्वामिभक्त उपभोक्ताओं की संख्या कम्पनी के उत्पादों के लिए बनी रह सकती है।

4.6 महत्वपूर्ण शब्द

उत्पाद नवीनीकरण, गैर प्रतिस्पर्धात्मक तरीके, विज्ञापन, उत्पाद नवीनीकरण, वृद्धि रणनीति, विपणन नवीनीकरण, उत्पाद सुधारीकरण, तकनीकी सुधारीकरण, उत्पाद विस्तार।

4.7 अन्य पाठ्य स्त्रोत

- मैनेजीरियल इकॉनामिक्स – महेश्वरी
- टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स – बोएस
- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – डीन
- भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन – ए.के.अग्रवाल

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें/स्रोत

- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – मोते पॉल एण्ड गुप्ता
- उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त – एच. एल. आहूजा
- मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स – थॉमस मॉरिस

4.9 स्व–परख प्रश्न

प्र.1 गैरकीमत प्रतिस्पर्धा से आप क्या समझते हैं? विक्रय लागत एवं समूह साम्यावस्था की व्याख्या कीजिए।

प्र.2 गैर कीमती प्रतिस्पर्धाओं की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई 5 कीमत विभेद

इकाई संरचना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 लोच कारक : स्थानिक कारक

5.4 स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग

5.5 कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

5.6 सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद

5.7 सारांश

5.8 महत्वपूर्ण शब्द

5ण्9 बोध प्रश्न

5.10 अन्य पाठ्य स्त्रोत

5.11 सन्दर्भ पुस्तकें

5.1 उद्देश्यः

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल होंगे।

- विभिन्न उत्पादों को विभिन्न कीमतों पर बेचने पर के कारणों का विश्लेषण करने में
- कीमत विभेद में लोचकारक को समझने में
- माँग एवं पूर्ति के अनुसार वक्रों के निर्माण में
- सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद को परखने में

5.2 प्रस्तावना

कीमत विभेद का तात्पर्य समान अथवा लगभग समान वस्तुयें को उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में भिन्न भिन्न कीमतों पर बेचने से होता है। उस प्रकार का कीमत विभेद, लागत के विभेद के कारण नहीं होता है। उपभोक्ताओं का वर्गीकरण हम उनकी आय, खरीदने की क्षमता, भौगोलिक

परिस्थिति, उम्र, लिंग भेद, रंगभेद, वैवाहिक अवस्था, खरीदने की मात्रा या खरीदने के समय इत्यादि के आधार पर कर सकते है। जब इस प्रकार से विभेद किये गये उपभोक्ताओं को भिन्न–भिन्न कीमतों पर समान वस्तुएँ या सेवाएँ प्रदान की जाती है तो इसे कीमत विभेद कहते है। दूसरे प्रकार का कीमत विभेद इस प्रकार से हो सकता है कि विक्रेता भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के बाजारों में यहाँ कि उत्पादन लागत भिन्न हो, समान कीमत वसूलते हैं। एक एकाधिकारी विक्रेता के द्वारा कीमत विभेद के उदाहरणों में हम, चिकित्सक एवं अस्पताल, वकील परामर्शक इत्यादि के द्वारा अपने भिन्न वर्गों के उपभोक्ताओं से भिन्न–भिन्न शुल्क निर्धारण के द्वारा समझ सकते है। इसके अन्य उदाहरणों में हम रेलयात्रा, हवाई जहाज यात्रा, सिनेमा तथा अन्य संगीत शो इत्यादि को भी ले सकते है।

5.3 लोच कारकः स्थानिक कारक (Elasticity factors : Spatial factors)

कीमत विभेद को हम किसी समान उत्पाद के लिए दो अथवा अधिक कीमत के निर्धारण के द्वारा परिभाषित कर सकते है। कीमत विभेद के अन्तर्गत हम एक ही उत्पाद के लिए भिन्न–भिन्न कीमत निर्धारित करते है। अथवा भिन्न–भिन्न उत्पादों के लिए एक ही कीमत निर्धारित करते है श्रीमती जान रॉबिन्सन की भाषा में हम कीमत विभेद् को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते है कि, यह विक्रय की एक क्रिया है जिसके अन्तर्गत एक ही नियन्त्रण में उत्पादित समान उत्पादों को भिन्न–भिन्न ग्राहकों को भिन्न –भिन्न कीमतों पर बेचा जाता है। यदि हम हवाई यात्रा का उदाहरण ले तो इकॉनामी क्लास एवं एक्जीक्यूटिब क्लास टिकट के लिए भिन्न–भिन्न कीमतों का निर्धारण कीमत विभेद का एक उदाहरण नहीं होता है क्योंकि दोनों ही क्लास के यात्रियों को भिन्न–भिन्न कीमतों पर भिन्न–भिन्न सुविधाएं मिलती है। कीमत विभेद के अन्तर्गत वस्तु का समान होना आवश्यक है तथा एक आवश्यक शर्त यह होती है कि माँग की लोच में अन्तर होना चाहिए अर्थात समान उत्पाद/वस्तु की माँग की लोच में भिन्नता होनी चाहिए। यदि हम जॉन रॉबिन्सन के अनुसार इस शर्त को समझने का प्रयास करें तो, उपबाजारों को उनकी लोच के आरोहरण के क्रम में व्यवस्थित करते हैं जब कि उच्चतम कीमत का निर्धारण सबसे कम लोच वाले बाजार में करते है तथा निम्नतम कीमत का निर्धारण सबसे अधिक लोच वाले बाजार में करते है।

RIL-082

इस प्रकार का पदानुक्रम का अपनी प्रवृति में स्थानिक होना आवश्यक नहीं है। एक ही शहर में हम इसे देख सकते है। मित्रों, हम इसको एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। प्रतिदिन हम लोग अपने सुबह के नाश्तें में ब्रेड का सेवन करते है। प्रायः आपने दुकानों पर देखा होगा कि कुछ ब्राण्ड का मूल्य अन्य ब्राण्ड की तुलना में अधिक होता है क्योंकि धनाड्य वर्ग मँहगी वस्तुओं को खरीदकर कर ही अधिक सन्तुष्टि अनुभूति करते हैं। इसी प्रकार यदि कुछ ऐसे रेस्टॉरेन्ट में गये हों जहॉ A C एवं Non A C केबिन होते है तो समान खाद्य पदार्थो की कीमतें भिन्न होती हैं अन्तर केवल वातावरण का होता है न कि सुविधाओं का। कीमत विभेद परिवहन कीमत से अधिक नहीं होना चाहिए अर्थात यदि एक स्थान A पर कीमत X हो जो कि कम हैं तो X तथा Y का अन्तर इतना नही होना चाहिए कि उपभोक्ता B स्थान से उत्पाद को लेकर A स्थान पर बेंचे तथा उससे लाभ अर्जित कर सकें कीमत विभेद प्रायः भिन्न आर्थिक बाज़ारों में प्रयोग किया जाता है न कि स्थानिक बाजारों के अलग होने की स्थिति में, जब तक कि स्थानिक अलगाव स्वयं न हो तथा आर्थिक विभेद पैदा न कर दे। यदि कुछ स्थानों पर प्राकृतिक रूप से भिन्नता के होने के कारण अधिक लोग अधिक आय अर्जित करते हैं तो इस स्थिति में एकाकी विक्रेता इस स्थान के ग्राहकों से अधिक कीमत वसूल सकता है। जिसकी सीमा इस ग्राहक की क्षमता के अनुसार मापी जा सकती है यदि किसी एकाकी निर्माता/विक्रेता के पांच स्थानों पर उत्पादन इकाइयाँ हैं तथा उत्पादन की लागत में भिन्नता के कारण कीमतों का निर्धारण भिन्न होता है तो इस प्रकार से कीमत में आयी भिन्नता को हम कीमत विभेद की श्रेणी में नही रख सकते है। इसी प्रकार यदि हम वस्तुओं के परिवाहन में आने वाले अतिरिक्त खर्च या लागत को सन्तुलित करने के लिए कीमत में विभेद करते है तो इसे भी कीमत विभेद का उदाहरण नही मान सकते है यदि हम उपभोक्ताओं के भिन्न उपयोग को दृष्टि में रखते हुये कीमतों में भेद करते है तो यह कीमत विभेद का एक उदाहरण होगा। यदि बिजली की आपूर्ति एक ही क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्र में सस्ते दर पर तथा शहरी क्षेत्र में मंहगी दर पर की जाये तो यह कीमत विभेद का ही एक उदाहरण होगा यहॉ पर क्योंकि कीमत विभेद में स्थान एक आवश्यक कारक नहीं है तथा स्थानों के भिन्न होने के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में भिन्न कीमत पर बिजली का वितरण नही होता है। दो भिन्न आर्थिक बाजारों में, जो कि स्थानिक रूप से अलग नही

RIL-082

होते है, कीमत विभेद को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

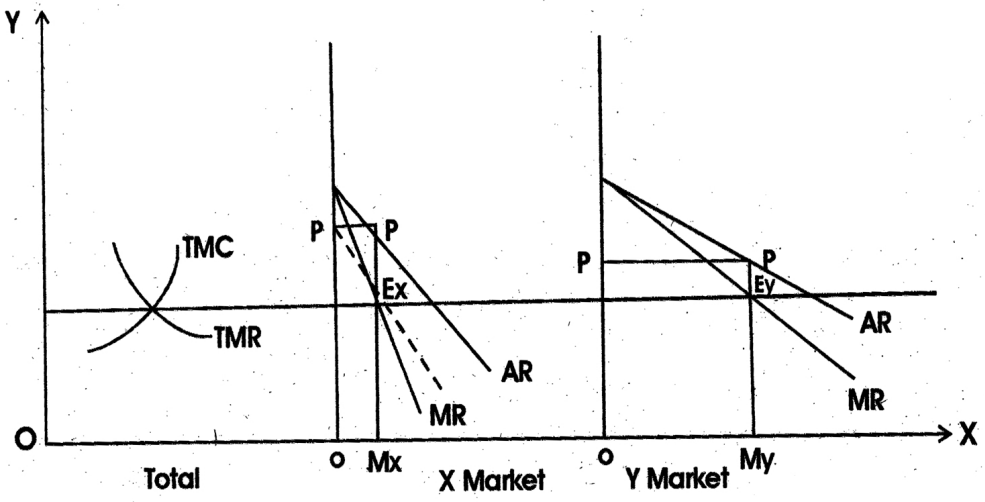

चित्र– क

चूंकि सभी विभिन्न बाजारों में बेचे जाने वाले उत्पादों का उत्पादन एक ही संयंत्र में किया जाता है। अतः इन सभी वस्तुओं की लागत विभिन्न बाजारों में समान ही रहेगी। इन उत्पादों की मात्राओं को इस प्रकार बेचा जाएगा कि सीमान्त लागते एवं सीमान्त प्रतिफल (Marginal Revenue) विभिन्न बाजारों में सामान होगी। चित्र 'क' के प्रथम भाग में निर्धारित साम्यावस्था उत्पादन (Equillibrium out put) को दो बाजारों के बीच बाजारों की मूल्य देने की क्षमता के अनुसार वितरित किया जाना है। अर्थात दोनों बाजारों की मूल्य देने की क्षमतांए (Paying capacities) भिन्न होगी X बाजार में मांग अलोचपूर्ण (Elastic) है अतः (AR\MR) वक्र खड़े रूप में हैं, अर्थात कम अंश के कोण बनाते हुए प्रतीत होते है जबकि y बाजार में चूँकि माँग कुछ लोचपूर्ण है (Elastic) है अतः (AR\MR) वक्र कुछ क्षैतिज प्रतीत होते है अर्थात समानान्तर रूप में प्रतीत होते हैं। इस प्रकार से हम देखते है कि X बाजार में उसी वस्तु को अधिक तथा Y बाजार में उसी वस्तु की कम कीमत निर्धारित की गयी है। दोनों बाजारों में साम्यावस्था उत्पादन (Equillibrium out put) उस विन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ MC (Total), व्यक्तिगत बाजार के MR के समान होता है जो कि क्रमशः बिन्दु Ex एवं Ey पर मिलते है। प्रायः यह देखा गया है कि 'विभेद' विपरीत या विरोधाभास को प्रकट करता है। जबकि एकाधिकारी Monipolists के द्वारा कीमत विभेद का सीधा फायदा गरीबों को मिलता है। चूंकि गरीबों वाले बाजारों में मांग लोचपूर्ण है अतः इस बाजार में कम कीमत वसूल की जाती है तथा अमीरों के बाजार में माँग

RL-082

अलोचपूर्ण होती है तो उनसे अधिक कीमत वसूल की जाती है। एकाधिकारी के द्वारा कीमत विभेद का प्रयोग सामाजिक विषयों के अनुसार भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ सिंचाई के लिए दी जाने वाली बिजली के लिए कम कीमत वसूलना आदि ।

इसी प्रकार सरकारी क्षेत्र के एकाधिकार के द्वारा एकाधिकार कीमत में विभेद को केवल लाभ को वृद्धि के लिए ही नही वरन सामाजिक एवं आर्थिक उपयोगिता एवं कल्याण के दृष्टिकोण से भी उपयोग किया जा सकता है।

5.4 स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग (Dumping in Spatially)

डम्पिंग (Dumping) अपने प्रतियोगी को बाजार से बाहर करने के लिए वह रणनीति है जिसमें उत्पादक अपने उत्पाद को, प्रतियोगी के उत्पाद के मूल्य से कम में बेचते है या फिर कभी कभी उत्पादन लागत से भी कम मूल्य पर बेच देते है। कभी कभी इस खेल में हानि भी हो जाती है जो कि दूसरे बाजारों से क्षतिपूर्ण की जाती हैं या फिर प्रतियोगी के भागने के पश्चात उस बाजार से की जाती है। डम्पिंग एक प्रकार का द्वेशपूर्ण विभेद है। विभेदित कीमतें आगम की अधिवकता के लिए उपभोक्ता से लिए जाते है : इसमें उत्पादन output इतना अधिक हो भी सकता है तथा नहीं भी। यदि घरेलू बाजार में एकाधिकार है तथा विदेशी बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो, तो प्रतियोगी बाजार में प्रतियोगी कीमत वसूली जाती है। घरेलू बाजार में निर्धारित कीमत एकाधिकार कीमत Monopoly price होगी तथा यह AC से अधिक होगी, परन्तु विदेशी बाजार में कीमत घरेलू बाजार में कीमत से कम होगी तथा परन्तु दोंनो ही बाजारों में MR को समान करने के लिए प्रयास करने होगें। यदि यह प्रतियोगियों के लिए एक अच्छी स्थिति है तो एकाधिकारी Monopolists बिना किसी नुकसान के डम्प करेगें, यदि AC कवर कर ली गयी है परन्तु इस फर्म की AC अन्य फर्मो की AC से कम है। अन्य परिस्थितियों में AC घरेलू बाजारों में AR से कम हो सकता है परन्तु विदेशी बाजार में AR से अधिक हो सकती है जबकि AR स्वंय में अन्य प्रतियोगियों के द्वारा वसूली जा रही कीमतों से कम हो।

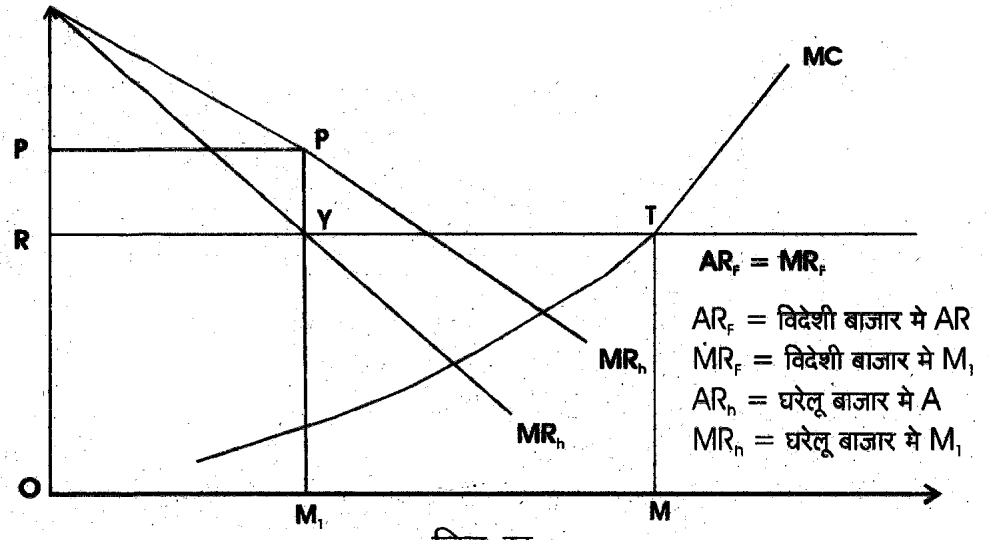

चित्र ख :

उपर्युक्त चित्र में क्षैतिज रेखा से $AR_f \backslash MR_f$ को दर्शाती है। तथा औसत एवं सीमान्त आगम को विदेशी बाजार में दर्शाते है। चुंकि बाजार प्रतियोगी है अतः कीमतें सभी के लिए समान होगी। उत्पादन घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समान है। अतः कीमतें सभी के लिए समान होंगी। उत्पादन घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समान है अतः MC वक सामान है साम्यावस्था उत्पादन वहॉ होगा जहॉ MR_f, कुल उत्पादन के MC के समान है। इस उत्पादन (Output) को घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में समान रूप से वितरित करते है। AR_h तथा MR_h जैसे घरेलू बाजार के सापेक्ष होते है तो गिर रहे है। Y बिन्दु पर MR_f तथा MR_h समान है तथा दोनों सीमान्त लागत MC के बराबर है जैसे T बिन्दु क्षैतिज रेखा पर Y के ही समान है।

कुल उत्पादन OM का OM' घरेलू बाजार में उच्चतर कीमत OP पर बेचा जाता है जो कि डम्पिंग कीमत OR से अधिक है। डम्प बाजार में निपटाया गया उत्पादन (Output) MM' है। यदि डम्पिंग के लिए दो से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार होते है तो कीमत निर्धारा के लिए दो से अधिक घरेलू (राष्ट्रीय) उप बाजारों के लिए, उत्पादन मात्रा का बँटवारा तथा कीमत निर्धारण उपर्युक्त के अनुसार ही होगा।

4.5 कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

प्रथम, विभेदीकृत कीमतों को बिकेता के द्वारा अभ्यास में लाने के लिए विभिन्न बाजार अलग अलग होने चाहिए। उपभोक्ताओं के स्तर को भिन्न भिन्न बाजारों को अलग होना चाहिए ताकि एक स्तर के उपभोक्ता दूसरे स्तर के उपभोक्ताओं के बाजार में जाकर समान को बेचकर लाभ न अर्जित कर

सकें। बाजारों का अलगाव (क) भौगोलिक दूरी के अनुसार कर सकते है, जिसमें परिवहन की लागत अधिक हो जैसे कि घरेलू एवं विदेशी बाजार: (ख) वस्तुओं एवं सेवाओं के भिन्न उपयोगों के द्वारा उदाहरणार्थ डॉक्टर की सेवाएँ :(ग) वितरण मार्ग की कमी होने पर उदाहरणार्थ घरेलू इस्तेमाल में कम दर पर विद्युत आपूर्ति तथा औद्योगिक इस्तेमाल में अधिक दर पर विद्युत आपूर्ति।

द्वितीय, माँग की लोच भिन्न भिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न होनी चाहिए। कीमत विभेद का उद्देश्य, भिन्न कीमत लोच वालें बाजारों को उपयोग करके लाभ को अधिकतम करना है। यह लोच में एक अन्तर ही होता है जो कीमत विभेद के लिए अवसर प्रदान करता है। यदि मांग की कीमत लोच (Price elosticitites of demond) विभिन्न बाजारों में समान होती है तो कीमत में विभेदी करण, उच्च कीमतों वाले बाजारों में मांग करके लाभ को कम कर देगा।

तृतीय, बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता अवश्य होनी चाहिए। एक फार्म विभिन्न वर्गो के उपभोक्ताओं को विभेद करने वाले उत्पादों की पूर्ति पर एकाधिकार होना चाहिए तथा भिन्न भिन्न कीमतें वसूल करनी चाहिए।

चतुर्थ, लाभ को अधिकतक करने वाला उत्पादन एक अकेले बाजार या उपभोक्ता वर्ग में मांग की मात्रा से बहुत अधिक होता है।

4.6 सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद (Price Discrimination by degrees)

कीमत विभेद की सीमा का तात्पर्य उस क्षेत्र तक है जिसमें एक विकेता एक बाजार को या उपभोक्ता को विभाजित करने तथा अतिरिक्त उपभोक्ताओं से अधिक लाभ अर्जित कर सकें। आर्थिक दृष्टि से कीमत विभेद की तीन सीमाएं हो सकती है।

प्रथम सीमा, कीमत विभेद की प्रथम सीमा, कीमत के विभेदी करण की अन्तिम सीमा होती है। यदि एक विकेता को यह ज्ञात होता है कि उसका उपभोक्ता या उपभोक्ता समूह कितनी कीमत देने की इच्छा रखता है (अर्थात वह जनता है कि उसके उत्पाद के लिए उपभोक्ता का मॉग वक क्या है) तो, वह उसके ही अनुसार कीमत का निर्धारण करता है तथा अतिरिक्त उपभोक्ताओं से लाभ अर्जित करता है। इसके अन्तर्गत एक विकेता सर्वप्रथम अपने उत्पाद की कीमत सर्वोच्च स्तर पर निर्धारित करता है और यह वह इस प्रकार से

RIL-082

करता है कि इस वर्ग का प्रत्येक उपभोक्ता कम से कम एक इकाई अवश्य खरीद ले तथा पुनः दूसर वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए वह पुनः दूसरी कीमत निर्धारित करता है जो प्रथम वर्ग से कम होती है और वह इस वर्ग के भी अतिरिक्त उपभोक्ताओं से लाभ अर्जित करता है इसी प्रकार इस प्रक्रिया को वह तब तक चालू रखता है जब तक पूर्ण अतिरिक्त उपभोक्ता एक ऐसी कीमत पर प्राप्त होते रहे जहॉ (MC=MR) हो जाती है। यहॉ इस चिकित्सीय सेवाओं का उल्लेख कर सकते है जहॉ एक चिकित्सक को पता होता है कि उसके मरीज की कीमत देने की क्षमता क्या है और वह धनाड्य वर्ग से अधिकतम तथा गरीब वर्ग से निम्नतम कीमत वसूलता है।

द्वितीय सीमा, जहॉ बाजार का आकार बहुत बड़ा होता है, पूर्ण विभेद न तो सम्भव होता है और न ही आवश्यक होता है। इस स्थिति में एक एकाधिकारी द्वितीय डिग्री का विभेदन या ब्लॉक कीमत निर्धारण विधि अपनाता है।

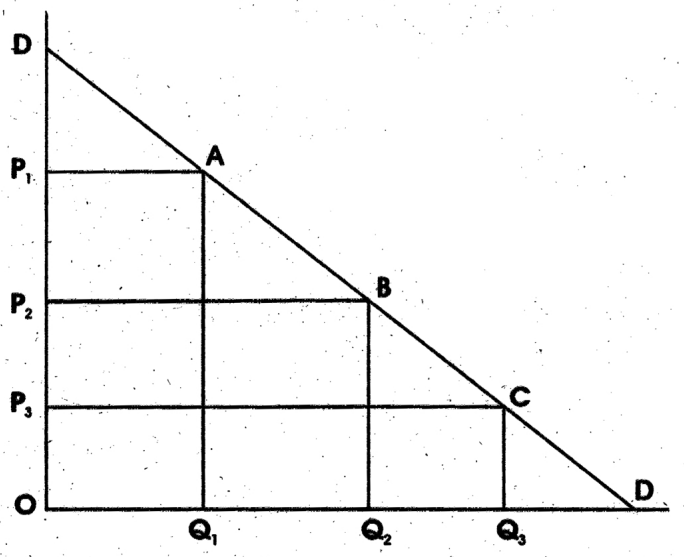

चित्र गः– द्वितीय डिग्री कीमत विभेदन (Second degree price discrimination)

एक एकाधिकारी जो द्वितीय डिग्री के कीमत विभेदीकरण को अपनाता है वह अतिरिक्त उपभोक्ताओं के केवल मुख्य भाग को ही लाभ अर्जन के लिए चुनता है तथा सारे उपभोक्ता वर्ग को नहीं । इस स्थिति में एक एकाधिकारी उपभोक्ताओं को विभिन्न ब्लाकों में विभाजित कर लेता है जैसे कि अमीर, मध्यम वर्ग तथा निम्न या गरीब वर्ग। अब वह अपनी वस्तुओं या सेवाओं को इन वर्गो में उदाहरणार्थ पहले अमीरों को अधिकतम मूल्य पर फिर मध्यम को मध्यम कीमत पर तथा फिर निम्नतक वर्ग को सबसे कम कीमत पर बेचता है।

द्वितीय डिग्री का कीमत विभेदन तभी सम्भव है जबकि (i) उपभोक्ताओं की संख्या अधिक हो तथा कीमतो की राशन व्यवस्था की जा सके उदाहरणार्थ उपयोगी सेवाओं जैसे टेलीफोन, पानी के गैलन इत्यादि में (ii) सभी उपभोक्ताओं के मांग वक्र समान हो : (iii) बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं पर एक ही दर लागू हों। जैसा कि चित्र ग में दिखाया गया है कि एक एकाधिकारी विक्रेता द्वितीय स्तर के कीमत विभेद को अपनाते हुए, QP_1 कीमत OQ_1 इकाइयों के लिए तथा कुछ कम कीमत OP_2 इकाइयों के लिए तथा निम्नतम कीमत Q_1Q_2 इकाइयों के लिए तथा निम्नतम कीमत OP_3,Q_2Q_3 इकाइयों के लिए लागू करता है। इस प्रकार एक एकाधिकारी विक्रेता ब्लाक कीमत विधि को अपनाते हुए अपने अगाम को अधिकतम करेगा। $TR=(OQ_1\text{-}AQ_1) +(Q_2Q_3.CQ_3)$

तृतीय सीमा (Third Degree) जब कोई लाभ अधिकतम करने वाला एकाधिकारी विभिन्न लोच वाले मांग वक्रों के विभिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न कीमतो का निर्धारण करता है तो उसे तृतीय डिग्री का कीमत निर्धारण कहते है। प्रायः ऐसा होता है कि एक विक्रेता को अपना सामान दो से अधिक बाजारों में बेचना पड़ता है जबकि एक दूसरे बिल्कुल प्रथक होते है तथा उनकी मांग वक्र की लोच भी अलग अलग होती है। लाभों को कम होने से बचने के लिए इन सभी बाजारों में समान मूल्य — का निर्धारण नही किया जा सकता है। इस प्रकार एक एकाधिकारी को विभिन्न कीमत मात्रा के संयोजन बनाने पड़ते है जो प्रत्येक बाजारों में इनके लाभ को बढ़ा सकें। इसके लिए वह MC(सीमान्त लागत) तथा MR (सीमान्त आगम) को प्रत्येक बाजार में समान करता है तथा इसके अनुसार ही कीमत का निर्धारण करता है।

उदाहरण के लिए माना किसी एकाधिकारी विक्रेता के केवल दो बाजार A तथा B है। मांग वक्र DA तथा सीमान्त आगम वक्र (MRA)चित्र नं0 (छ) के अनुसार दर्शित है तथा औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र A बाजार में है जबकि चित्र (च) में D_a तथा D_b का क्षैतिज योग दोनों बाजार A तथा B के लिए मांग वक्र देते है जैसा कि चित्र घ में दर्शित है।

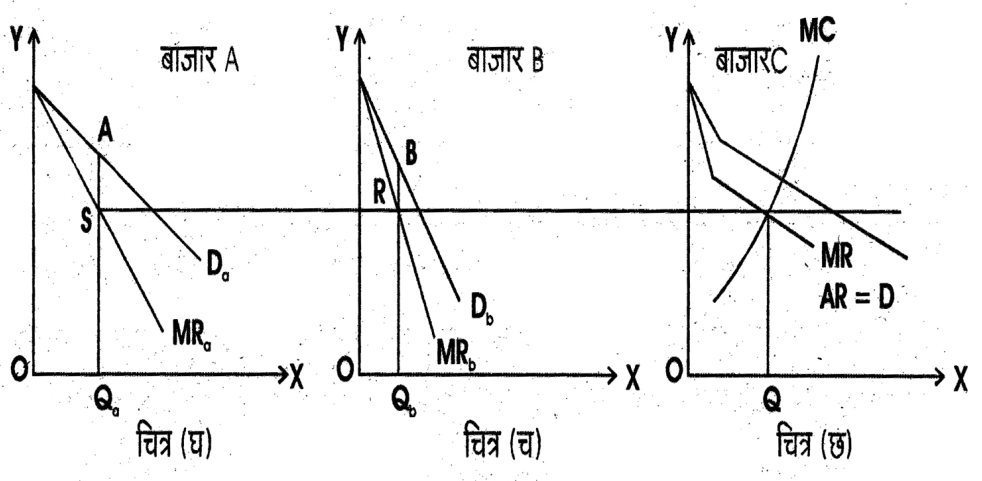

चित्र (घ) चित्र (च) चित्र (छ)

चित्र घः–

प्रति यूनिट समय पर मात्रा की मांग

MR_a तथा MR_b का क्षैतिज योग संकलित सीमान्त आगम (MR)को दर्शाता है। फर्म की सीमान्त लागत को MC के द्वारा दर्शाया गया है जो MR के T बिन्दु पर काटती है । दिये गये MR एवं MC वक्रों के लिए, फर्म के अनुकूलतम उत्पादन का निर्धारण QO पर होता है। उत्पादन के इस स्तर पर MR, MC के समान होता है। एकाधिकारी विक्रेता की समस्या यह होती है कि वह सारी का सारी उत्पादन मात्रा QO को एक ही बाजार में बेंचकर अधिकतम लाभकारी मूल्य का निर्धारण नही कर सकता है इसलिए एकाधिकारी को अपने उत्पादन मात्रा को दोनों बाजारों में इस प्रकार से बॉटना होगा कि लाभ की वृद्धि को स्थिति दोनों ही बाजारों में सन्तुष्ट हो सकें।

अर्थात MC(=TQ) को MR के समान दोनों ही बाजारों में होना पड़ेगा। इसको अर्जित करने के लिए T बिन्दु से X अक्ष के समानान्तर एक रेखा को MR_b एवं MR_a से होते हुए खींचते है। MR_a तथा MR_b पर कटान बिन्दु क्रमशः S एवं R बाजार में अनुकूलतम हिस्सो को निर्धारित करते है।

चित्र के अनुसार एकाधिकारी बाजार A में अपने लाभ को OQ_a यूनिट AQ_a कीमत पर बेच कर तथा बाजार B में OQ_b यूनिट OQ_b पर पर बेचकर लाभ अर्जित करता है तथा OQ_a+OQb=OQ है। तृतीय डिग्री के कीमत निर्धारण को किसी भी दो या दो से अधिक प्रथक बाजारों में जो कि भौगोलिक दूरी के द्वारा या परिवहन बन्धन के द्वारा या परिवहन की लागत के द्वारा या विधिक बन्धन जो कि वस्तुओं के अन्तर्राष्टीय परिवहन के लिए

प्रतिबन्धित होते है के द्वारा पृथक होते है की स्थिति में सही रूप में लागू कर सकते है।

7.7 सारांशः

इस प्रकार हमने एक इकाई में यह पढ़ा कि कीमत विभेद को जानने के लिए उपभोक्ता के वर्गीकरण के साथ साथ लोचकार स्थानिक कारक, स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग के फलस्वरूप कीमत में विभेद, परिस्थितियों के आधार उदाहरणार्थ भौगोलिक परिस्थितियों के कारण, वितरण मार्ग की सुगमता या दुर्गमता के कारण आदि, सीमाओं के द्वारा कीमत विभेदन हो सकता है।

5.8 महत्वपूर्ण शब्दः

लोच कारक, कीमत विभेदन, स्थानिक कारण, डम्पिंग।

5.9 स्व परख प्रश्न

प्रश्न–1- कीमत विभेद से आप क्या समझते है?

प्रश्न–2– कीमत विभेद के अन्तर्गत लोच कारक का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण दीजिए।

प्रश्न–3– स्थानिक विभाजित बाजारों में डम्पिंग का क्या तात्पर्य है ? चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–4– कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियों को स्पष्ट करें।

प्रश्न–5– सीमाओं के द्वारा कीमत विभेद कैसे होता है?

प्रश्न–6– द्वितीय डिग्री कीमत विभेदन से आप क्या समझते है? चित्र द्वारा स्पष्ट करें।

प्रश्न–7– **टिप्पणी लिखिए–**

1. स्थानिक कारक
2. कीमत विभेद
3. कीमत विभेद के लिए आवश्यक परिस्थितियॉ
4. सीमाओं द्वारा कीमत विभेद

5.10 अन्य पाठ्य स्त्रोत :–

1. मैनेसीरियल इकॉनोमिक्स– माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स– बोएस
3. मैनेसीरियल इकॉनोमिक्स– डीन
4. भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं आयोजन– ए0के0अग्रवाल

5.11 सन्दर्भ पुस्तकेः–

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स–मोते पॉल गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त– एच0एल0आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– थॉमस मॉरिस

इकाई–6 उत्पाद विभेदन (Product Differentiation)

इकाई संरचना

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 बाजार वृद्धि की उत्पाद द्वारा सम्भावनाएं
6.4 उत्पाद विभेदन रणनीतियॉं
6.4.1 उत्पाद का स्वरूपः एक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.2 गुणवत्ता एवं कार्यक्षमताः एक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.3 विशेषीकरण एवं स्टाइलःएक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.4 उत्पाद डिजाइनःएक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.5 उत्पादो की रेन्ज एवं विविधताःएक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.6 सेवा गुणवत्ताःएक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.4.7 पैकेजिंगःएक उत्पाद विभेदन रणनीति
6.5 उत्पाद विभेदन रणनीति एवं पोजिशनिंग रणनीति
6.6 सारांश
6.7 बोध प्रश्न
6.8 अन्य चयनित पाठन
6.9 सन्दर्भ पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात छात्रों को

- बाजार में उत्पाद विभेदन के द्वारा विभिन्न उपभोक्ता वर्गों की सन्तुष्टि की जानकारी होगी।
- उत्पाद विभेदन की विभिन्न सम्भावित रणनीतियॉं समझने में मदद मिलेगी।
- उत्पाद विभेदन की आवश्यकता को समझने में समझने में सहायता मिलेगी।
- उत्पाद विभेदन एवं बाजार पोजीशनिंग में महत्व समझने को मिलेगा।

6.2 प्रस्तावना

विगत इकाई में हमने पढ़ा कि कैसे कीमत विभेदन के द्वारा विभिन्न बाजारों में भिन्न भिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं को भिन्न भिन्न कीमतों पर उत्पाद एंव सेवाओं की मुहैया करा के कम्पनी लाभ को अर्जित करती है। इसी प्रकार से उत्पाद विभेदन के द्वारा भी हम विभिन्न वर्गो के उपभोक्ताओं को उत्पाद अथवा सेवा के द्वारा उपयोगिता के साथ साथ मानसिक संतुष्टि देते है। भारत वर्ष में जन संख्या को विभिन्न कारकों के आधार पर विभिन्न वर्गो में बॉट सकते है जैसे की आय, लिंग, जीवन शैली, शिक्षा, आयु, भौगिलिक परिस्थिति, कार्य क्षेत्र इत्यादि । यह एक मानव प्रवृत्ति है कि वह अपने अपने वर्गो में स्वंय को दूसरे से कुछ भिन्न बनाये यदि हम विपणन की परिभाषा को दृष्टिगत करें तो विपणन को एक सामाजिक किया कहा गया है। ऐसा इसलिए कहा गया है कि किसी भी विक्रेता उत्पाद को समाज में उपस्थित वर्ग विशेष की आवश्यकताओं एवं सन्तुष्टि कारकों को ध्यान में रखकर ही उत्पादों एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण करना होगा। यदि हम एक उदाहरण के रूप में उत्पाद विभेदन के महत्व को समझना चाहें तो जब 1990 के आस पास मारूति की मारूति 1000 ब्राण्ड को टक्कर देने के लिए डेबू मोटर्स ने सीयलो ब्राण्ड कार बाजार में उतारी थी तो उसकी पोजीशनिंग उस समय में निम्न उच्च आय वर्ग Lower income Group के लिए की गयी थी। कम्पनी इस के बेहतर रूप को उपभोक्ताओं ने महत्व दिया तथा उस समय इसे 5 लाख की कीमत पर बाजार में उतारा गया था। कार की सफलता को देखते हुए कम्पनी ने अधिक लाभांश के लिए कार की कीमत 4 लाख रूपये कर दी ताकि निचले वर्ग के लोग भी इस कार को खरीद पाते। परन्तु कम्पनी की यह रणनीति इसके लिए घातक सिद्ध हुयी क्योंकि यदि उसे निम्न वर्ग के ग्राहकों को सन्तुष्ट करना था तो वह एक नया ब्राण्ड बाजार में उतार सकती थी परन्तु ऐसा न करने से उच्च वर्ग के सम्मान को कही न कहीं यह ठेस लगी कि निम्न वर्ग का व्यक्ति भी उसको प्रयोग करके उनके स्टेटस को घटा रहा है तथा एक यह धारणा भी लोगों के मन में आई कि कम्पनी हमसे एक लाख रूपये ज्यादा वसूल करके धोखा कर रही थी जबकि शायद कम्पनी अपने इस घटी कीमत को अधिक संख्या में बेचकर क्षतिपूर्ति करती और इस उत्पाद विभेदन रणनीति को नजर अन्दाज करने का फल यह हुआ

कि प्रारम्भिक सफलता मिलने के बाद भी यह ब्राण्ड बाजार से गायब हो गया। निश्चित ही इस ब्राण्ड की असफलता के कुछ अन्य कारण भी होगें परन्तु कीमत कम करने के बाद से ही उत्पाद के विक्रय में आई अचानक गिरावट को उपर्युक्त व्याख्यानुसार समझा जा सकता है। उत्पाद विभेदन की रणनीति मुख्य रूप से अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत आती है क्योंकि विक्रेता एवं क्रेता दोनों ही अधिसंख्य होते है और ऐसे में प्रतियोगिता का स्तर बहुत बढ़ जाता है तथा उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि के लिए उत्पादों में विभेद करके इनको बाजार में सफलता प्रदान कराई जा सकती है।

6.3 बाजार वृद्धि की उत्पाद के द्वारा सम्भावनाएं

बाजार की वृद्धि में उत्पादों का कितना महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है इसे हम निम्नांकित चित्र की सहायता से समझने का प्रयास करेंगें।

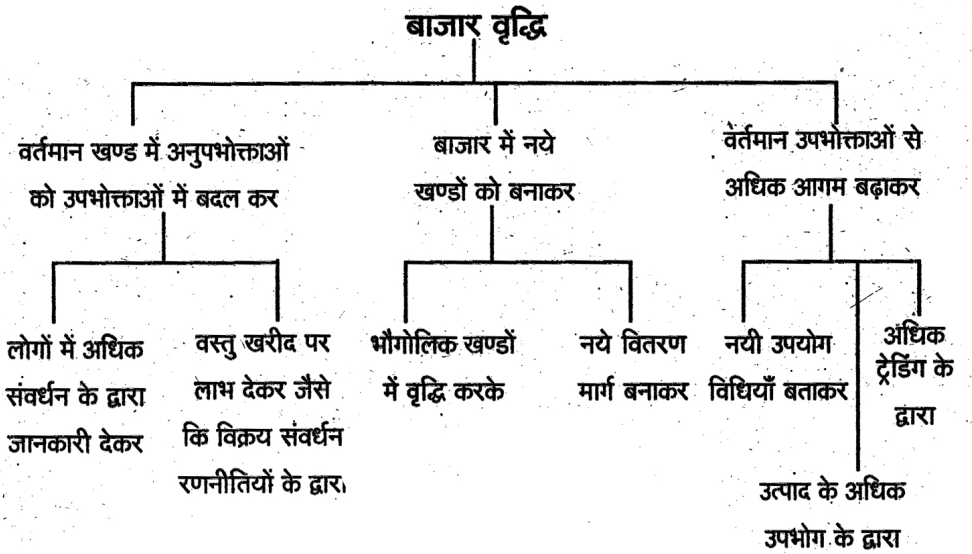

चित्र 1 उत्पाद रणनीतियॉ एवं बाजार वृद्धिः—

उपर्युक्त चित्र के अनुसार जब किसी भी बाजार में उत्पाद के विक्रय आयतन में कमी होती है या विक्रेता बाजार में छिपी हुयी सम्भावनाओं को दृष्टिगत करते हुए अपने लाभांश की बढ़ाना चाहतता है तो उत्पाद विभेदन रणनीतियों के द्वारा वह अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होता है। वैसे भी बाजार की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि बाजार में उपस्थित उपभोक्ताओं को उनके विभिन्न गुणों एवं प्रकृतिक आधार पर चिन्हित करके खण्डों (Segmants) में बॉटा जाए तथा उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के

अनुरूप एवं सेवाओं को विभेदित किया जाए। चित्रानुसार बाजार की वृद्धि के मुख्य 3 मार्ग है । पहले चरण में कोई भी विक्रेता अपने वर्तमान बाजार खण्ड में उपस्थित गैर उपभोक्ताओं को उपभोक्ताओं में बदलने का प्रयास करता है। जैसे कि मारूति 800 ने जब एस0बी0आइ0 बैंक के साथ मिलकर रूपये 2599/ प्रतिमाह की किश्त पर मारूति 800 को खरीदने का ऑफर दिया थां इस का मुख्य उद्देश्य संभावित उपभोक्ताओं को ऐसी सुविधा देना था जिसके अन्तर्गत वे उसी कीमत की कार को ऋण अदायगी की आसान सुविधा के मिलने पर इसका प्रयोग कर सकते थे।

दूसरे प्रकार के नंये खण्डों को पहचानता तथा इनमें अपने उत्पादों को बेचना आता है । उसका एक आसान सा उदाहरण फेयर एण्ड लवली क्रीम के द्वारा फेयर एण्ड हैण्डसम नामक ब्राण्ड को लड़कों के लिए ऑफर करना थां। इसी प्रकार से भौगोलिक परिदृश्य में बहुत सी कम्पनियॉ अब ग्रामीण क्षेत्रों को अपने बाजार का खण्ड बना रही है। तीसरे प्रकट के मार्ग में हम अपने वर्तमान उपभोक्ताओं से ही अपना आगम (Revenue) बढ़ाते है उदाहरणार्थ यदि उत्पाद के नये नये उपयोग हम उपभोक्ता का बताते है तो यह वर्तमान उपभोक्ता से ही अपना आगम बढ़ाने की बात होगी। जैसे कि डिटौल एन्टीसेप्टिक लोशन के विक्रय को बढ़ाने के लिए उसके बहुतिकल्पीय उपयोग को विज्ञापनों के द्वारा दर्शाया गया । जिसमें छोटे बच्चे के कपड़े धोने में, शेंविंग करने के पानी में, चोट की सफाई करने में, नहाने आदि में डिटॉल का प्रयोग उपभोक्ता को समझाया गया।

इस प्रकार उपर्युक्त चित्र में बाजार की वृद्धि के विभिन्न स्रोत था मार्ग दिये गये है जिनको हमने उपर्युक्त व्याख्या में समझने का प्रयास किया।

6.4 उत्पाद विभेदन की रणनीतियॉ : (Steretgies ForProduct Differentiation)

एक कम्पनी जो कि विविधरूपीय (heterogenous) बाजार में विपणन का कार्य करती है वह यह महसूस करती है कि किसी बाजार खण्ड में उपस्थित सभी उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट नही किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता अधिसंख्य होते है साथ ही साथ ये उपभोक्ता इधर उधर फले हुए होते है और इनकी खरीदने की आवश्यकताएं भी भिन्न होती है। इस प्रकार के अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कोई भी विक्रेता सभी उपभोक्ताओं की वस्तुएं

अथवा सेवाएं ने बेचकर ऐसे बाजार खण्डों को चिन्हित करता है जिनकी आवश्यकता एवं क्रयशान्ति के अनुरूप उत्पादों को बनाकर बाजार में सफलतापूर्वक बेचा जा सके। जैसे कि आय के आधार पर अमीर वर्ग या उच्च आय समूह (High Incomegoup) विक्रेताओ को सबसे ज्यादा आकर्षित करता है। यहाँ पर यह कहना अति आवश्यक होगा कि केवल बाजार खण्ड का आकर्षक होना ही काफी नही वरन उपभोक्ता के पास इस बाजार खण्ड की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उत्पाद निर्माण में उपयुक्त होने वाली तकनीक मानव संसधन, पूंजी निदेश आदि का होना भी आवश्यक होता है। जिस प्रीमियम/बाजार खण्ड की हम बात कर रहे है उसकी विशेषता यह है कि उपभोक्ता प्रायः धनाड्य होते है किसी भी उत्पाद अथवा सेवा के लिए अधिक धन खर्च करने के लिए तैयार रहते है तथा कीमती वस्तुओं के उपयोग के द्वारा ही वे अपने स्टेटस को समाज के अन्य व्यक्तियों की तुलना में उँचा रखना चाहते है। जैसे कि कार्य क्षमता, गुणवत्ता, अच्छी डिजाइन अथवा पूर्ण रूप से एक अच्छे उत्पाद की आकांक्षा करते है जबकि अस्पर्शनीय लाभों जैसे स्टेटस, मूल्य तथा इमेज आदि का अनुभव करते है।

प्रायः आपने देखा होगा कि महगे उत्पादों के प्रचार प्रसार में समाज के उच्च वर्ग को दर्शाया जाता है। जैसे कि रीड एण्ड तेलर ब्राण्ड के कपड़ो के विज्ञापन मे प्रारम्भ में जेम्स बाण्ड की भूमिका अदा करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय अभिनेता को दिखाया था तथा बाद में भारतीय परिदृश्य में अमिताभ बच्चन को दिखाया गया। कम्पनियॉ अपने उत्पादों के प्रचार में समाज में उच्च की व्यक्तियों या कलाकारों को जोड़कर उसकी इमेज को उँचा करके दिखाना चाहते है या फिर कम्पनियॉ इन उत्पादों के उपयोग के वातावरण वर्गो उच्चवर्ग के वातावरण से जोड़कर दिखाते है जिससे कि उस वर्ग के व्यक्ति इस प्रकार के उत्पादो को स्वयं की जीवन शैली से जोड़कर देख सके। ग्रासिम की सूटिग के विज्ञापन में एक बड़ी लम्बी गाडी जिसको 10–12 मोटर साइकिलों पर गार्डस यायलट करते हैं आकर रूकती है तथा इसमें से एक सूट को निकाल कर दिखाया जाता है। इस सूटलेथ की कीमत 79000 रूपया प्रति मोटर था तथा जिस प्रकार का वातावरण सूटिग के विज्ञापन में दिखया गया वह उसके उपभोक्ता को साफ तौर से प्रदर्शित करता है।

उत्पाद विभेदन के लिए सर्वप्रथम लक्ष्य बाजार खण्ड को चिन्हित करना आवश्यक होता है अर्थात एक ऐसी प्रकिया जिसके अर्न्तगत एक विशेष उपभोक्ताओ के समूह को चिन्हित करते है जिनकी आवश्यकता उनकी जीवन शौली या अन्य ऐसे कारको के कारण समान होती है तथा वे उस श्रेणी के

उत्पादो को खरीदते है। उदाहरणार्थ निरमा वाशिंग पाउडर निम्न आय वर्ग के लिए एवं सर्फ एक्सेल य एरियल को उच्च के लिए लक्ष्य किया गया है। द्वितीय चरण में हम विभेदीकरण (Differentiation) करते है। अर्थात चिन्हित किये गये वर्गे की आवश्कता एवं स्टेतस के अनुसार उत्पादो के गुणो एवं बनावट के द्वारा उस वर्ग के लिए उत्पादो को न्यायपूर्ण ठहराया जाता है। उदाहरणार्थ रिन साबुन को मध्यम की के लिए दर्शाने हैं कि कविता जी को विज्ञापन मे दिखाया गया था वास्तविक रूप में इस उत्पादो की गुणवत्ता सेवाए तथा अन्य विशेषताऐ लक्ष्य किये गये समूह या खण्ड के अनूसार ही रखते है। और इसका एक अवयव कीमत भी है। तृतीय चरण में इस स्थितिकरण (Positioning) करते है अर्थात इसके अन्तर्गत कम्पनी के द्वारा बनाए जा रहे उत्पाद की सरंचना तथा इमेज इस प्रकार की होनी चाहिए कि इस वर्ग के उत्पाद के उपभोक्ता के मस्तिष्क मे इस उत्पाद की स्थिति सदैव सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सके। कम्पनी को यह ध्यान में रखना चहिए कि उसके उत्पाद मे ऐसा कौन सा अन्तर है जो उपभोक्ताओ को आकर्षित करेगा। उदाहरणार्थ जब हीरो हॉण्डा ने स्ट्रीट मोटर साइकिल को बाजार मे उतारा था हों साथ तौर पर उसमे बिना गियर की तकनीक को दर्शायी गयी थी तथा स्ट्रीट का आने का लुक स्कूटर की भॉति तथा पीछे का भाग मोटर साइकिल की भॉति बनाने का उददेश यह था कि महिलाए तथा बुर्जुग दोनो ही उसको मध्यम वर्ग का उत्पादन मान कर अपना सकें।

यदि हम मंहगे एवं सस्ते उत्पादो के माध्यम से उत्पाद विभेदन कि रणनीति को समझने का प्रयास करें तो ये तीन निम्नप्रकार से हो सकते है

पैमाना	उत्पाद विभेद	उत्पादों/बाण्ड के उदाहरण
उत्पाद लक्षण	महंगे उत्पाद	स्कार्पियोकार, वाशिंग मशीन, सोनी प्लाज्मा टीवी
	सस्ते उत्पाद	मारूति ८००, नैनो, वीडियोकॉन वाशिंग मशीन, टीसीरीज टी.वी.
क्रियाशीलता गुणवत्ता	महंगे उत्पाद	जिलेट मैक् ३, डव साबुन, हिमालय शैम्पू
	सस्ते उत्पाद	टोपाज ब्लेड/रेजर, निरमा साबुन, वाटिका शैम्पू
विशिष्टीकरण एवं स्टाइल	महंगे उत्पाद	टाइटन घड़ी, जोडियाक/वान ह्यूसन शर्ट्स,
	सस्ते उत्पाद	मैक्सिमा घड़ी, चार्ली आउटलॉ शर्टस
उत्पाद डिजाइन	महंगे उत्पाद	मार्क लार्ड वेयर, रीबॉक जूते
	सस्ते उत्पाद	लोकल हार्ड वेयर, लखानी जूते
सेवा गुणवत्ता	महंगे उत्पाद	ICICI/HDFC/AXIS बैंक
	सस्ते उत्पादे	सहकारी/ग्रामीण बैंक

चित्र नं02 उत्पाद विभेदन रणनीति का उदाहरण :–

इसके अतिरिक्त अन्य लक्षणो को भी उत्पादन विभेदन को समझा जा सकता है आइये अब उत्पादन विभेदन की रणनीतियो को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास करे।

6.4.1 उत्पाद स्वरूपः– एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः–

उत्पाद का स्वरूप उसके लक्षणो को परिलक्षित करता है जोकि उत्पाद के आधरभूत कार्यक्षमताओं को प्रभावित करता है। बाजार की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए उत्पादक को अपने लक्ष्य किये हुऐ खण्ड या उपभोक्ता वर्ग के लक्षणो के अनुसार उत्पाद को स्वरूप एवं लक्षणो का निर्णय लेना चाहिऐ। जैसे कि उच्चवर्ग के उपभोक्ताओ को उत्पाद में अधिक लक्षणों अथवा गुणों की आवश्यकता होती हैं उदाहरण के रूप में मारूति कार के Sx4 मे जो गुण एवं लक्षण है वे उच्च वर्ग की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते है इसी प्रकार IFB की वाशिंग मशीन में पूर्ण स्वचलित के जो गुण है वे उच्च वर्ग को पंसद है। इसी प्रकार सोनी के प्लाज्मा टीवी में सुन्दर एवं आकर्षक डिजाइन के ही दीवार पर लगने की सुविधा, अच्छे रंग, गेम खेलने की सुविधा के अतिरिक्त अन्य अनेक ऐसी सुविधांए है जो उच्च वर्ग के द्वारा पंसद की होती है। विक्रेता इस प्रकार उपभोक्ता की इच्छाओं के अनुसार उत्पादों में विशेष गुण एवं लक्षणों को डालकर उनसे अधिक कीमत वसूल करके अपने लाभांश को बढ़ा सकते है।

6.4.2 गुणवत्ता एवं कार्य क्षमताः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

किसी उत्पाद की आधारभूत गुणवत्ता एवं कार्यक्षमता से तात्पर्य उसके प्राथमिक उपयोगिता हेतुकार्य क्षमता से होता है । उदाहरणार्थ कोई भी उपभोक्ता साबुन का प्रयोग अपने शरीर की स्वच्छता के लिए करता है अतः अन्य गुणों के साथ इसमें इसके प्राथमिक गुण का होना आवश्यकता है। परन्तु इसके अतिरिक्त साबुन में एण्टीबैक्टीरियल गुण को होना, आयुर्वेदिक गुणों का समावेश होना, अच्छी अच्छी खुशबू होना आदि उत्पाद को उच्चवर्ग की उपयोगिता के अनुसार डाले जाते है। यदि साबिन शरीर के मैल को साफ करने के अतिरिक्त त्वचा का भी उपचार करता है तो यह उच्चवर्ग के उपभोक्ताओं की आवश्यकता हो सकती है अन्यथा निम्न वर्ग के उपभोक्ताओं

की दृष्टि में साबुन का प्रयोग केवल शरीर के साफ रखने के लिए होता है। इसी कारण निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं में ब्राण्ड भक्ति (Brand loyalty) कम होती है और इसका मुख्य कारण यह है कि वे साबुन में केवल प्राथमिक उपयोगिता को ही ध्यान में रखकर खरीदते है जो किसी भी साबुन से मिल जाता है। इसी प्रकार यदि हम मंदिरा के ब्राण्ड का उदाहरण दें तो उच्चवर्ग अच्छी गुणवत्ता के मंहगे ब्राण्ड को प्रयोग करते है जैसे कि टीचर्स, 100 पाइपट्स, सिग्नेचर्स, जौनीवाकर ब्लैक इत्यादि। इन मदिरब्राण्ड में गुणवत्ता अधिक होती है, महक कम से कम होती है तथा बनाने की बिधि अत्यन्त गुणवत्ता परक होती है और इसी कारण धनाड्य वर्ग इन उत्पादों को प्रयोग करते है। मंहगे उत्पाद को खरीदना पंसद करते है तो उन उत्पादों मे वे उसी प्रकार की गुणवत्ता एवं कार्यक्षमता भी देखना पंसद करते है।

यदि धनाड्य वर्ग मर्सडीज बेन्ज कार का प्रयोग करते है। तो स्टेट्स सिंबल के अतिरिक्त इस कार इन्जन शक्ति सुरक्षा प्रबन्ध, आन्तरिक साज सज्जा, एअर कण्डीशनिंग एवं वाहय बॉडी डिजायन इत्यादि भी उसी के अनुरूप होती है।

6.4.3. विशिष्टीकरण एवं स्टाइलः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

जब से फैशन के युग में आधुनिकता का तथा वैश्विक सभ्यताओं का समावेश हुआ है तब से माध्यम वर्ग से लेकर उच्चवर्ग तक के उपभोक्ताओं में स्टाइल की मांग काफी बढ़ गयी है और यह प्रायः दोपहिया एवं चार पहिया वाहनों मे, कपड़ो में, घड़ियों में, चश्मों आदि उत्पादों में अधिक देखने को मिलता है। विक्रेता कम्पनियॉ केवल स्टाइल एवं विशिष्टीकरण के लिए ही उत्पादों की अधिक कीमत वसूलते है और आज का उपभोक्ता इसे देने को तत्पर है। उत्पाद को इस कारक का फ़ायदा यह है कि वे अपने उत्पादों को दूसरे उत्पादों से भिन्न भी दर्शा पाते है। यदि आपने आमिर खान को विभिन्न स्टाइल की टाइटन घड़ियों का प्रचार विज्ञापन में करते हुए देखा तो या शाहरूख खान को बेलमॉण्ट सूट्स के विज्ञापन में देखा है। यह रितिक रोशन को जॉन प्लेयर नामक कपड़ों के ब्राण्ड का प्रचार करते विज्ञापनों में देखा हो तो ये सभी उत्पाद स्टाइल के नाम पर महगे उत्पादों की श्रेणी में आते है। तानिष्क, जि टी, डी–अमास आदि हीरे एवं स्वर्ण आभूषण की कम्पनियॉ

विशिष्टीकरण एवं स्टाइल को ध्यान में रखकर ही उत्पादों की बनाती है। इसी प्रकार उच्च एवं धनाड्य वर्ग के लिए वान हयूसन, लुई फिलिप, जोडियाक आदि ब्राण्ड की शर्ट एवं टाई बाजार में स्टाइल एवं विशिष्टीकरण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। इन सभी शर्ट एवं टाई की कीमतें प्रीमियम रेन्ज में है तथा रूपया तीन हजार से आगे की रेन्ज की कीमत होने के कारण इनकी स्वीकृति केवल धनाड्य एवं उच्च वर्ग के लिए ही है।

6.4.4 डिजायनः एक उत्पाद विभेदन रणनीतिः

जैसे जैसे बाजार में प्रतियोगिता बढ़ती जाती है वैसे वैसे उत्पादों के भिन्न होने पर ही उसकी स्वीकृति की संभावनाएं बढ़ जाती है। वास्तविकता तो यह है कि जब बाजार में उपस्थित सभी उत्पाद प्राथमिक उपयोगिताओं की पूर्ति करते नजर आते है तो ऐसे में जो उत्पाद अतिरिक्त उपयोगिताओं एवं अधिक आकर्षक डिजायनों में मिलते है उन्हीं की ओर उपभोक्ता आकर्षित होते है जैसे कि मोटर साइकिलों में प्रतियोगिता काफी अधिक है तथा यमाहा कम्पनी जोकि, विगत लगभग डेढ़ दशक से पिछड़ गयी थी उसकी बाजार में पुनः एक जगह, अच्छी एवं आकर्षण डिजायन वाली मोटर साइकिलों FZ एवं R15 के द्वारा बनती प्रतीत हुयी है। इसी प्रकार डिजायन को महत्व देते है हीरो होण्डा की करिज्मा, होण्डा की स्टनर, रॉयल एनफील्ड की मै किस्मों आदि मोटर साइकिले बाजार में प्रतिस्पधी दे रही है। इसी प्रकार कार बाजार में भी हुण्डई की आर्ड टेन, आई टवेपटी, मारूती की रिवफ्ट एवं ए स्टार आदि ब्राण्डों में भी उत्पाद रणनीति के तहत डिजाइन को महत्व दिया है। एअर कण्डीशन उत्पादों में चित्रो। सीनरी। का उपयोग भी उत्पादों में डिजाइनों की महत्व को दर्शाता है। इसके लिए निश्चित ही उत्पादों की लागत में वृद्धि होती है। जो कि उच्च एवं धनाड्य वर्गो को प्रभावित करती है। वी0आई0पी0 कम्पनी की स्टाली एवं अन्य बैग भी आकर्षक डिजायनों में मिलते है जो कि उच्च वर्ग के विशिष्टीकरण को परिभाषित करते नजर आते है तथा इसी कारण उच्च वर्ग में ही अधिक प्रचिलित होते है जब कि मध्यम वर्ग के लिए साधारण डिजाइनों में भी बैग एवं स्टाली बैग उपलब्ध है। इसी प्रकार टाइटन ने वर एवं वधू के लिए विवाहोत्सव पर आकर्षक डिजाइनों में घड़ियॉ निर्मित की है जो कि इस

विशेष प्रकार अवरसर पर अधिक लोकप्रिय है तथा प्रचिलित भी है। इसी प्रकार ड्यूरिन फर्नीचर ने भी डिजाइन एवं विशिष्टीकरण को ही अपने उत्पाद विभेद की रणनीति बनाया है तथा इसका प्रचलन भी उच्च मध्यम आय वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सीमित है।

6.4.5 उत्पादों की विस्तृतता एवं विविधताः एक उत्पाद विभेदन रणनीति

प्रायः आय जब बाजार में जाते है तो एक उपभोक्ता के रूप में आप यही चाहते है कि किसी भी उत्पाद के विविध मॉडल आपको मिले जिससे कि आप अपनी इच्छानुसार उत्पाद को खरीद पाएं। यदि किसी कम्पनी के उत्पादों में अधिक विविधता नही होती है जो जल्दी ही उपभोक्ता ऊब जाता है तथा नये उत्पाद की खोज में लग जाता हैं । परन्तु यह भी सत्य है कि किसी उत्पाद के विविध मॉडलो में उत्पादन लागत भी बढ़ जाती है तथा इस उत्पादन लागत को कवर करने के लिए विक्रेता को इन उत्पादों पर अधिक कीमत निर्धारित करनी पड़ती है। अर्थात इस प्रकार की विविधता वाले उत्पाद भी प्रायः उच्च में ही प्रचलित होते है। जैसे लेक्मे, रेवलॉन आदि इस प्रक़ार के ब्राण्ड है जिनमें लिपिस्टक के अधिकाधिक सेड मिलते है तथा यह अन्य ब्राण्डों की तुलना में मंहगे भी होते है। इसी प्रकार बुडलैण्ड शूज, रीवॉक शूज आदि ऐसे ब्राण्ड है जिनमें विविधता होती है तथा उपभोक्ता इन विधि मॉडलो के प्रयोग के द्वारा अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि करता है तथा एक बार उत्पाद से मन भर जाने पर वह दूसरी कम्पनी के उत्पाद को चुनने के बजाय उसी कम्पनी के उत्पादों में अपनी सन्तुष्टि को पूर्ण करता है।

इसी प्रकार कॉश एण्ड लॉम्ब नामक कम्पनी के द्वारा रेबैन ब्राण्ड के धूप के चश्में विधि डिजायनों एवं माडलो में उपलब्ध है तथा यह प्रीमियम रेन्ज में आते है और उच्च वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए बने है इसमें गोल्ड प्लेटेड फ्रेम के भी चश्में आते है जो कि उच्च वर्ग के उपभोक्ता के लिए बने है। इसमें गोल्ड प्लेटेड फ्रेम के भी चश्में आते है जो कि उच्च वर्ग के उपभोक्ताओं को आकर्षित करते है। इसी कम्पनी के द्वारा कुछ मध्यम रेन्ज के चश्में मध्यम वर्ग के लिए भी है।

6.4.6 सेवा गुणवत्ताः एक उत्पाद विभेदन रणनीति :–

आपके युग में जहाँ एक ओर उपभोक्ता की कय शक्ति बड़ी है तो इसका कारण निजी कम्पनियों के द्वारा अच्छे वेतन का मिलना है तथा यह भी कि महिलाओं की भी भागेदारी नौकरियों मे बढ़ती जा रही है जिससे कि व्यक्ति के पास समय का अभाव है। इस प्रकार के वातावरण में जो भी कम्पनियॉ अपने उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सेंवाए, उत्पादक साथ में देगी उन्ही को बाजार में अधिक प्राथमिकता मिलती है। उदाहरणार्थ आज व्यक्ति सेवाओं को दृष्टिगत करते हुए ही एक निजी कम्पनी जहाँ कि आई सी सी आई या एच0डी0एफ0सी0 बैंक में खाता खुलवाता है तथा अपना अधिक से अधिक लेनदेन करता है। इसी प्रकार आज बिल के जमा करने के झंझट से बेचने के लिए उपभोक्ता वोडाफोन, एअरसेल, रिलायन्स आदि कम्पनियॉ के फोन की सेवाओं का प्रयोग करते है क्योंकि इन कम्पनियॉ के द्वारा उपभोक्ताओं को अधिकाधिक सेवांए मिलती है। इसी प्रकार मंहगा होने के बावजूद भी लोग निजी अस्पतालों में मरीज को भरती कराते है क्योकि वहॉ आधुनिकतम मशीनों एवं उपकरणो के द्वारा तथा ट्रेन्ड स्टाफ के द्वारा मरीज की अधिक से अधिक देखभाल की जाती है हॉ थोड़ा धन अवश्य ही अधिक खर्च करना पड़ता है। सेवाओं का दूसरा पहलू यह की है कि मारूति कम्पनी अपनी विस्तृत सेवा के लिए उपभोक्ताओं में लोकप्रिय है। प्रायः यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में यदि किसी व्यक्ति के पास किसी सी ग्रेड शहर में सेवरोलेट्स की गाड़ी है या फोर्ड की गाड़ी है तो उसे गाड़ी की सर्विस के लिए किसी A या B ग्रेड के शहर में आना होगा क्योंकि इन अन्तर्राष्टीय कम्पनियॉ का सेवा नेटवर्क अभी इतना विस्तृत नही हुआ है अर्थात ड्यूरेबल उत्पादों में सेवा का एक विशेष स्थान है तथा विक्रेता इसको एवं रणनीति इसको एक रणनीति के रूप में प्रयोग करता है।

6.4.7 पैकेजिंग : एक उत्पाद विभेदन रणनीति

यदि हम पैकेनिंग की बात करें तो यह न केवल उत्पाद को सुरक्षा प्रदान करती है अपितु उत्पाद के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएं भी देती है परन्तु यहॉ पैकेजिंग की हम एक विपणन रणनीति के सन्दर्भ में ही चर्चा करेगें । यदि दो दशक पूर्ण विस्कुट की पैकेजिंग वैक्स पेपर होती थी तथा यदि

बरसात के मौसम में बिस्कुट सीले हुए थे तो आप उसको आसानी से स्वीकार लेते थे। यहॉ तक नमकीनों का एवं चिप्स का सवाल था तो मे प्रायः खुले रूप में मिलते थे तथा पैकेजिंग थी भी तो वह साधारण तथा गर्म करके पोलीथिन को बन्द करने वाली या स्टैपिल की हुयी होती थी। परन्तु आज के युग में पैकेजिंग के आयाम नहीं बुलन्दियों को छूते प्रतीत होते है। खाद्य पदार्थो में हल्दीराम ने अभूतपूर्ण आयाम हासिल किये थे। ये उसकी एक पैकेपिंग रणनीति ही थी जो दिल्ली के चॉदनी चौक से आज हल्दीराम एक अन्तर्राष्ट्रीय उत्पाद बन गया। इसी के साथ साथ बिस्कुट एवं अन्य खाद्य पदार्थो को उपभोक्ताओं आज पैकेजिंग का ध्यान में रखकर खरीदना पसंद करता है। पदार्थ या वस्तु पैकेजिंग के अन्दर कितनी सुरक्षित है यह एक आवश्यक उत्पाद विभेदन रणनीति का तत्व होता है इसी प्रकार टीचरस, 100 पाइपर्स आदि मदिरा के ब्राण्ड भी एक हाई केस में बन्द आते है ज़ो केवल उत्पाद के अच्छी गुणवत्ता एंव स्टाइल का प्रतीक है अपितु उपभोक्ता इसमें आसानी भी महसूस करता है। इसी प्रकार से स्थानीय स्तर पर साड़ी एवं सूट विक्रेता या आभूषणों के विक्रेता खरीद के साथ साथ एक आकर्षिक बैंग देते है जो कि पैकेजिंग के द्वारा संवर्धन करने में सहायक होता है तथा उपभोक्ता को यह लगता है कि उसे कुछ अतिरिक्त भी मिल रहा है।

6.5 उत्पाद विभदेन रणनीति एवं पोजीशनिंग

यदि हम उत्पाद विभदेन सें अलग हटकर उत्पाद की पोजीशनिंग के बारे में चर्चा करे तो पोजीशनिंग का तात्पर्य कम्पनी के उत्पाद एवं ब्राण्ड को उपभोक्ता के मस्तिष्क में उसकी उत्पाद सम्बन्धी मेमोरी फाइल में उच्चतम स्थान दिलाने से है। अर्थात यदि उपभोक्ता के मस्तिष्क में किसी कम्पनी के उत्पाद या ब्राण्ड की सर्वेच्च स्थिति है तो खरीदने से पहले वह सबसे पहले उसी ब्राण्ड को ध्यान में रखेगा तथा उसी को खरीदने का यथा सम्भव प्रयास करेगा। उत्पाद विभेदन की भी उत्पाद की पोजीशनिंग करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आइये निम्नांकित चित्र की सहायता से हम बाजार में उपभोक्ता व्यवहार के रूप देने वाला कुछ मूल्यवरक को समझने का प्रयास करें ।

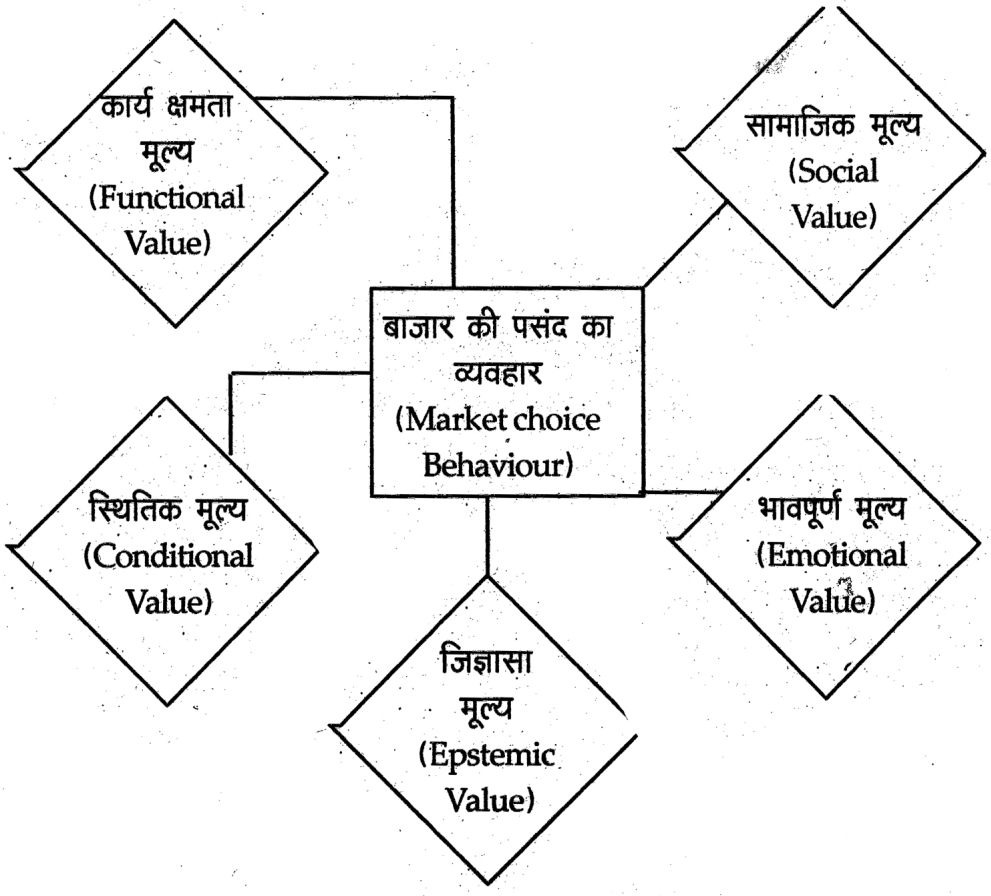

यदि हम उपर्युक्त चित्र में दिये गये कारकों की व्याख्या करें तो कार्यक्षमता मूल्य का प्रयोग हम उत्पादों, को सदैव ही, बाजार की स्थिति एवं प्रतियोगियों के नवीनीकरण से सामन्जस्य स्थापित करते हेतु, आधुनिक बनाने के लिए करते है।

सामाजिक मूल्यों का प्रयोग उत्पादों के विभेदन एवं पोजीशनिंग में उपभोक्ताओं के साथ दीर्घकालिक सम्बन्धों को बनाने तथा समाज की इच्छाओं के अनुसार उत्पादों को भविष्य के अनुरूप बनाने में करते है। जैसे मोबाइल पर बात करने वाले को देखने की तकनीकि सामाजिक इच्छाओं को ध्यान में रखकर करने वाली ही एक रणनीति है। इसी प्रकार भावनात्मक मूल्यों का प्रयोग उपभोक्ताओं को एक मानव के रूप में समझकर उत्पाद विभेदन एवं पोजीशपिंग के लिए करते है उदाहरणार्थ हालमार्क या आर्चीस कार्ड इसी का उदाहरण है जिज्ञासाओं को भी हम उत्पाद विभेदन एवं पोजीशनिंग में प्रयोग करते है तथा अनिश्चिम के माहौल में कोई भी उपभोक्ता अपनी जिज्ञासाओं को शांत करना चाहता है। विभिन्न बीमा उत्पाद तथा अन्य निवेश उत्पाद इसके उदाहरण है।

इसी प्रकार परिस्थितियों के अनुसार भी हम अपने उत्पादों/ बाण्डों की पोजीशनिंग कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि बाजार में उपस्थित प्रतियोगी वातावरण एवं उपभोक्ताओं के व्यवहार को दृष्टिगत करते हुए हम अपने उत्पादों की बाजार में स्वीकृति एवं विक्रय वृद्धि के लिए उत्पाद विभेदन का प्रयोग करते है।

6.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई को पढ़ने के बाद हम यह कर सकते है कि उत्पाद विभेदन रणनीति के अन्तर्गत हमें कई सारे अवयव जैसे कि बाजार की वृद्धि एवं विकास, तकनीकि का प्रभाव, समाजिक प्रचलन, सामाजिक मूल्य, मानवीय संवेदनाएं, पैंकेपिंग, सेवां क्षेत्र का विस्तारीकरण, इत्यादि असंख्य कारक है। जो हमें उत्पाद विभेदीकरण में सहायता प्रदान करते है।

6.7 स्व परख प्रश्न

प्रश्न–1– उत्पाद विभेदन से आप क्या समझते है? बाजार वृद्धि की स्थिति की उत्पाद की क्या--क्या सम्भावनाएं होती है।

प्रश्न–2– उत्पाद विभेदन की रणनीतियॉ को विस्तार से स्पष्ट करें।

प्रश्न–3– उत्पाद के स्वरूप को एक उपयुक्त उत्पाद विभेदन रणनीति कैसे बनायेंगी?

प्रश्न–4– उत्पाद गुणवत्ता एवं उत्पाद कार्यक्षमता में क्या अन्तर है?

प्रश्न–5– उत्पाद विभेदन रणनीति में पैकेजिंग का क्या महत्व है?

प्रश्न–6– उत्पाद विभेदन रणनीति एवं पोजिशनिंग रणनीति में क्या सम्बन्ध है?

प्रश्न–7– निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–

1. उत्पाद विशेषीकरण
2. उत्पाद स्टाइल
3. उत्पाद डिजाइन
4. सेवा गुणवत्ता
5. उत्पाद कार्य क्षमता

प्रश्नः– उपभोक्ता के व्यवहार के रूप देने वाले मूल्यपूरक कारक कौन कौन से है।

6.8 अन्य चयनित पाठन

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– माहेश्वरी
2. टेक्स्ट बुक ऑफ इकॉनोमिक्स– बो एस
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– डीघ
4. भारतीय अर्थवस्था विकास एवं आयोजन– ए0के0 अग्रवाल

6.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– मोते, पॉल एण्ड गुप्ता
2. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त– एच0एल0 आहूजा
3. मैनेजीरियल इकॉनोमिक्स– क्षौमस मौरिस

RIL-082

खण्ड

4

व्यापक अर्थशास्त्र (Macro Economics)

इकाई - 1 5
आगत - निर्गत विश्लेषण, अर्थ, मान्यतायें (Input-Output Analysis, Meaning, Assumptions)

इकाई - 2 21
तकनीक एवं प्रयोग (Techniques and Uses)

इकाई - 3 41
सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण (Social Cost Benefit Analysis)

इकाई - 4 60
व्यापार चक्र-अवस्थायें (Business Cycle-Phases)

इकाई - 5 72
व्यापार चक्र के सिद्धान्त एवं नियन्त्रण (Theories and Control of Business Cycles)

इकाई - 6 95
राष्ट्रीय आय की अवधारणा एवं मापन (Concept and Measurement of National Income)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0ओम जी गुप्ता	एसोसियेट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, फिरोज गाँधी पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, रायबरेली

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

RIL-082

खण्ड-4 परिचय

प्रस्तुत खण्ड के अन्तर्गत प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में अन्तर्निहित, निर्गत विश्लेषण सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया गया है, इकाई दो एवं तीन के अन्तर्गत तकनीक एवं प्रयोग तथा सामाजिक लागत लाभ सम्बन्धी विश्लेषण अध्ययन हेतु प्रस्तुत किया गया है। इकाई 4 एवं 5 के अन्तर्गत व्यापार चक्र का परिचय अवस्थायें एवं व्यापार के सिद्धान्तों की विवेचना के साथ व्यापार चक्र को नियन्त्रित करने हेतु उपाय सुझाये गये हैं। इकाई 6 राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित है इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय क्या है? इसकी अवधारणायें क्या हैं? तथा राष्ट्रीय आय का मापन किस प्रकार किया जा सकता है? इसका सरल, सुबोध एवं सारगर्मित विवेचन किया गया है।

RIL-082

इकाई-1 आगत-निर्गत विश्लेषण, अर्थ, मान्यतायें (Input-Output Analysis, Meaning, Assumptions)

ईकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आगत-निर्गत विश्लेषण तकनीक का उद्देश्य

1.3 आशय

1.4 प्रमुख विशेषतायें

1.5 मान्यतायें (Assumptions)

1.6 आगत-निर्गत मॉडल

1.6.1 लियोनतिफ का स्थैतिक मॉडल

1.6.2 लियोनतिफ का स्थैतिक मॉडल

1.7 आगत-निर्गत विश्लेषण की सीमाएं

1.8 महत्व एवं अनुप्रयोग

1.9 विकास नियोजन में आगत-निर्गत तकनीक का प्रयोग

1.10 सारांश

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.12 सम्बन्धित प्रश्न

1.13 प्रश्नोत्तर

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्न के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आगत-निर्गत विश्लेषण तकनीक को परिभाषित कर सके एवं इसके उद्देश्य बता सकें;
- इस विश्लेषण तकनीककी विशेषताओं एवं मान्यताओं को सूचीकृत कर सकें;
- आगत-निर्गत मॉडल का विश्लेषण कर सकें;

- आगत-निर्गत विश्लेषण की सीमाओं एवं महत्व का विवेचन कर सकें;
- विकास नियोजन में आगत-निर्गत तकनीक के प्रयोगों की पहचान कर सकें।

1.1 प्रस्तावना (Introductions)

आगत-निर्गत विश्लेषण आयोजन की एक नई तकनीक है जिसका प्रतिपादन हार्वड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर वैसिली डब्लू लियोनतिफ (Wassily W. Leon) द्वारा 1951 में किया गया था और उनकी इस महान आर्थिक उपलब्धि के लिये 1973 में उन्हें अर्थशास्त्र के नोबल पुरस्कार द्वारा सम्मानित भी किया गया। अर्थव्यवस्था की परस्पर-निर्भरताओं तथा जटिलताओं को समझने के लिये अन्तः उद्योग (Inter-industry) के सम्बन्धों का विश्लेषण करने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है और इस विश्लेषण से, इस प्रकार पूर्ति और माँग में संतुलन बनाये रखने की स्थितियों को समझा जा सकता है। इस कारण इसे "अन्तः उद्योग विश्लेषण" भी कहते हैं।

आगत-निर्गत विधि का विश्लेषया करने से पहले, 'आगत' तथा 'निर्गत' शब्दों का अर्थ समझ लिया जाय। प्रो० जे० आर० हिक्स के अनुसार आगत "वह वस्तु है जिसे उद्यम के लिये खरीदा जाता है" और निर्गत वह है "जिसे उद्यम बेचता है।" एक आगत प्राप्त होती है, जबकि निर्गत का उत्पादन किया जाता है। आगत तो फर्म के खर्च को प्रकट करती है और निर्गत उसकी आय को 1 आगत के मुद्रा मूल्यों का जोड़ एक फर्म की कुल लागत होती है और निर्गतों के मुद्रा मूल्यों का जोड़ फर्म का कुल आगम (Revenue) होता है।

1.2 उद्देश्य

आगत-निर्गत विश्लेषण तकनीक का उद्देश्य उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य संख्यात्मक सम्बन्धों को बनाये रखना है जिससे कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उत्पादन का प्रवाह सुचार रूप से होता रहे। यही नहीं, इस आगत-निर्गत विश्लेषण से पूर्ति एवं माँग में सन्तुलन बनाये रखने की स्थितियों का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है।

1.3 आशय (Meaning)

आगत-निर्गत विश्लेषण यह बताता है कि समस्त आर्थिक व्यवस्था में औद्योगिक अन्तः सम्बन्ध और आत्मनिर्भरतायें होती हैं। एक उद्योग की

आगत दूसरे उद्योग की निर्गत होती है और विपरीत स्थिति भी अर्थात् दूसरे का निर्गत पहले के लिये आगत हो सकता है। उदाहरण के लिये इस्पात उद्योग के लिये कोयला आगत है और कोयला उद्योग के लिये इस्पात आगत है जबकि ये दोनों वस्तुएँ अपने-अपने उद्योग की निर्गत भी है। महत्वपूर्ण यह है कि आर्थिक क्रिया का अधिकांश भाग मध्यवर्ती वस्तुओं (Intermediate goods) अर्थात् आगतों के उत्पादन में संलग्न रहता है जिनका अन्तिम वस्तुओं (निर्गतों) के उत्पादन में फिर प्रयोग होता है। इस प्रकार से यह विभिन्न उद्योगों के बीच चक्रीय प्रावह है जो परस्पर एक दूसरे से गुथा हुआ है। सारांशतः आगत-निर्गत विश्लेषण का अर्थ है कि सन्तुलन की स्थिति में स्थिति में, समस्त अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन का मुद्रा मूल्य अन्तःउद्योगों आगतों के मुद्रा मूल्य की राशि तथा अन्तः उद्योग निर्गतों के मुद्रा मूल्यों की राशि के जोड़ के बराबर होना आवश्यक है।

1.4 प्रमुख विशेषतायें (Main Features)

आगत-निर्गत विश्लेषण सामान्य सन्तुलन का उत्कृष्टतम रूप है जिसके मुख्य रूप से चार तत्व है :

(i) यह विश्लेषण इस अर्थव्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करता है जो सन्तुलन में हो; आंशिक सन्तुलन वाली अर्थव्यवस्था इसके क्षेत्र के बाहर है।

(ii) यह तकनीक माँग-विश्लेषण से कोई वास्ता नहीं रखती क्योंकि इसका काम केवल उत्पादन क तकनीकी समस्याओं पर ही विचार करना है।

(iii) यह विश्लेषण अनुभव-जन्य अन्वेषण या छानबीन (empirical study) पर आधारित है।

(iv) आगत-निर्गत विश्लेषण के दो भाग है प्रथम, आगत-निर्गत ताकि का निर्माण करना तथा द्वितीय, आगत-निर्गत मॉडल का विधिवत प्रयोग करना।

1.5 मान्यतायें (Assumptions)

यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(i) अर्थव्यवस्था पूर्ण सन्तुलन में है।

(ii) समस्त अर्थव्यवस्था दो क्षेत्रों में विभक्त होती है, 'अन्तः उद्योग क्षेत्र (Inter-industry Sector) तथा 'अन्तिम माँग क्षेत्र' (final demand sector)। प्रत्येक क्षेत्र आगे और भी उप-विभाजित (sub-divided) किया जा सकता है।

(iii) प्रत्येक उद्योग में केवल एक ही समरूप (homogeneous) वस्तु का उत्पादन किया जाता है। किसी भी उद्योग में दो वस्तुएँ संयुक्त रूप से उत्पादित नहीं हो रही है।

(iv) किसी भी अन्तः उद्योग के कुल निर्गत (output) का; किसी दूसरे उद्योग अथवा उसी उद्योग अन्तिम मांग क्षेत्र के द्वारा आगत (Input) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(v) उत्पादन, पैमाने के स्थिर प्रतिफल (constant returns to scale) नियम के अनुसार होता है।

(vi) आगतों के संयोग स्थिर निश्चित अनुपातों में प्रयोग किये जाते हैं। आगत-निर्गतों के स्तर स्थिर अनुपात में रहते हैं। इसका अर्थ है कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं में स्थानापन्नता नहीं होती और न ही कोई तकनीकी उन्नति होती है। उत्पादन के आगत-निर्गत गुणाँक (Input-output co-efficient) स्थिर बने रहते हैं।

1.6 आगत-निर्गत मॉडल (Input-Output Model)

आगत-निर्गत तालिका किसी एक विशेष वर्ष मे समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखती है। यह भिन्न-भिन्न उत्पादक क्षेत्रों के मध्य वस्तुओं व सेवाओं के प्रवाह के (अन्तः उद्योग प्रवाहों) मूल्यों को प्रकट करती है।

1.6.1 लियोनतिफ का स्थैतिक मॉडल (Leontief's Static Model)

आगत-निगत विश्लेषण तकनीक की मान्यताओं के आधार पर लियोनतिफ ने अपना विश्लेषण दिया है। उन्होंने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की है जिसमें कोयला, इस्पात आदि वस्तुएँ, अपने-अपने क्षेत्रों में श्रम जैसे प्राथमिक साधन एवं अन्य आदानों (Inputs) की सहायता से उत्पादित की

जा रही है। इस अर्थव्यवसा में एक उद्योग का निर्गत (Output) दूसरे उद्योग का आगत (Input) होता है। इस प्रकार समस्त अर्थव्यवस्था में औद्योगिक अन्तः सम्बन्ध एवं पारस्परिक निर्भरताएँ पायी जाती हैं और उद्योगों के अन्तः सम्बधों एवं अन्तः निर्भरताओं के फलस्वरूप ही अर्थव्यवस्था ने माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित होता है।

लियोनतिफ के स्थैतिक मॉडल को एक उदाहरण की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये अर्थव्यवस्था में केवल तीन क्षेत्र हैं जिसमें कृषि एवं उद्योग, ये दोनों अन्तः उद्योग (inter-industry) क्षेत्र हैं और तीसरा घरेलू क्षेत्र है जो कि अन्तिम माँग क्षेत्र (Final demand Sector) है।

तालिका 1.1 ऐसी अर्थव्यवस्था का सरलीकृत चित्र प्रस्तुत करती है। इस तालिका में कृषि, औद्योगिक क्षेत्रों तथा मूल्य वद्धि की कुल निर्गत को पंक्तियों [rows (बायें से दायें)] में रखा गया है। इन क्षेत्रों की आगतों की स्तंभों (Columns) में रख गया है। प्रथम पंक्ति का जोड़ प्रकट करता है कि कृषि क्षेत्र का कुल उत्पादन (निर्गत) प्रतिवर्ष 300, इकाई या करोड़ रू० है। इस उत्पादन की 100 इकाइयाँ प्रत्यक्ष उपभोग (घरेलू व सरकारी क्षेत्र) के लिये चली जाती हैं और शेष निर्गत उद्योगों के लिये आगत बन जाती हैं। इस शेष उत्पादन की 50 इकाइयाँ तो स्वयं कृषि क्षेत्र के आगत (Input) के रूप में और बाकी 150 इकाइयाँ औद्योगिक क्षेत्र के आगत के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति औद्योगिक क्षेत्र की प्रति वर्ष 500 इकाई के मूल्य के कुल निर्गत के वितरण को प्रकट करती है। इस निर्गत (उत्पादित की गयी वस्तुओं) की 100 इकाइयाँ कृषि को, 250 उद्योग को स्वयं, और 150 अन्तिम उपभोग के लिये घरेलू क्षेत्र को बेची जाती है।

इसी प्रकार अब स्तम्भवार् (अर्थात ऊपर से नीचे) विश्लेषण करने पर पहला स्तम्भ कृषि क्षेत्र की आगत या लागत ढाँचे का विवरण बताता है। 300 के मूल्य की कृषि-निर्गत का उत्पादन, कृषि वस्तुओं की 50, औद्योगिक वस्तुओं की 100, और श्रम या/तथा प्रबन्ध से की गई 150 मूल्य की क्रय की गयी इकाइयों से होता है।

तालिका 1.1 : आगत-निर्गत तालिका

(मूल्य के रूप में)

कृषि	क्रय क्षेत्र (Purchasing Sector)			
	कृषि को आगत	उद्योग को आगत	अन्तिम माँग या घरेलू क्षेत्र	कुल निर्गत या कुल आगम
1. कृषि	50	150	100	300
2. उद्योग	100	250	150	500
3. मूल्य वद्वि	150	100	0	250
कुल आगत या कुल आगत	**300**	**500**	**250**	**1050**

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कृषि क्षेत्र से 300का आगम प्राप्त करने के लिये 300 लागत आती है। इसी प्रकार, दूसरा कॉलम औद्योगिक क्षेत्र के आगत ढाँचे की व्याख्या करता है (अर्थात 150+250+100 = 500)। इसी प्रकार "एक स्तम्भ अनुरूप उद्योग के उत्पादन फलन पर एक बिन्दु देता है" अन्तिम माँग स्तम्भ यह प्रकट करता है कि उपभोग और सरकारी खर्च के लिये क्या मिल सकता है। इस स्तम्भ के अनुसार तीसरी पंक्ति को शून्य दिखाया गया है। इसका मतलब है कि श्रम की सीधा उपभोग नहीं होता है। ध्यान देने योग्य है कि मूल्य-वद्धि तथा अन्तिम माँग के कुल जोड़ एक दूसरे के बराबर होते हैं अर्थात 250।

योजना की संभाव्यता और संगति (Feasibility and Consistency of the Plan)

दो प्रकार के सम्बन्ध उस ढंग को निर्धारित करते हैं, जिसमें अर्थव्यवस्था व्यवहार करती है और स्रोतों के प्रवाह के एक निश्चित नमूने को धारण कर लेती हैं ये हैं :

(i) अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र की आन्तरिक स्थिरता या सन्तुलन, तथा

(ii) प्रत्येक क्षेत्र या अन्तर्क्षेत्रीय सम्बन्धों की बाह्य स्थिरता।

प्रो० लियोनतिफ ने इन्हें 'सन्तुलन और संरचना के आधारभूत सम्बन्ध' (Fundamental relation of balance and structure) कहा है। इनकी गणितीय अभिव्यक्ति संतुलन समीकरण (balance equation) या संरचनात्मक समीकरण (Structural equation) कहलाती है।

माना, उद्योग नं० i की कुल निर्गत xi को उद्योगों की विभिन्न संख्या 1, 2, 3 व ---- n में विभाजित करें तथा Di अन्तिम माँग हो, तो सन्तुलन

समीकरण यह बनता है।

$$xi = xi_1 + xi_2 + xi_3 + ...xi_n + Di.....(1)$$

और मानी लीजिये yi मात्रा, जो बाहरी क्षेत्र (Outer sector) में खप जाती है, को भी ध्यान में रखा जाय तो उद्योग नं० i का सन्तुलन समीकरण यह बन जायगा;

$$xi = xi_1 + xi_2 + xi_3 + ...xi_n + Di + yi.....$$

$$\text{अथवा } \sum_{n} xij + yi = xi.....(1)$$

यह ध्यान रहे कि उद्योग i की वस्तुओं के उपभोग, निवेश और निर्यात (आयातों को निकालकर) इत्यादि के प्रवाहों के कुल जोड़ को yi प्रक करता है। इसे वस्तुओं का अन्तिम बिल (final bill of goods) भी कहते हैं जिसे भरना निर्गत का काम है। सन्तुलन समीकरण माँग और पूर्ति के बीच संतुलन की स्थितियों को दर्शाता है। यह एक उद्योग से अन्य उद्योगों को तथा अन्य उद्योगों से एक उद्योग के निर्गतों एवं आगतों के प्रवाह को व्यक्त करता है।

विश्लेषण में सन्तुलन समीकरणों की प्रणालीयोजना की आन्तरिक संगति की शर्तों को प्रदान करती है। उनके बिना योजना संभव नहीं हो सकती क्योंकि यदि ये शर्तें पूरी नहीं होती, तो कुछ वस्तुओं की कमी और अन्य का आधिक्य होगा।

क्योंकि xi उद्योग i नं० 2 द्वारा खपाई गई राशि को व्यक्त करता है, इससे निष्कर्ष निकलता है कि xij उद्योग i के उद्योग नं० j द्वारा खपाई गई राशि को व्यक्त करता है। उद्योग i का "तकनीकी गुणांक" या "आगत गुणांक" ऐसे निर्दिष्ट किया जाता है।

जहाँ xij उद्योग i से उद्योग j को प्रवाह है, xj उद्योग j की कुल निर्गत है और aij स्थिरांक है जिसे i उद्योग में तकनीकी गुणांक या प्रवाह गुणांक कहते हैं। समीकरण (3) "संरचनात्मक समीकरण" कहलाता है। यह बताता है कि एक उद्योग की निर्गत सभी उद्योगों द्वारा खपाई जाती है जो समस्त अर्थव्यवस्था के प्रकट ढाँचे को दर्शाता है। अनेक संरचनात्मक समीकरण अर्थव्यवस्था की वर्तमान तकनीकी स्थितियों का संक्षिप्त विवरण देते हैं।

किसी आगत-निर्गत तालिका के n क्षेत्रों के लिये उत्पादन के तकनीकी गुणांक आधारक (Technological Matrix) $n \times n$ तत्वों का होगा। एक तालिका जिसके दो क्षेत्र हैं, जैसे कि हमारे उदाहरण मे ंतो आधारक (Matrix) के (2×2) तकनीकी गुणांकों को निम्न ढंग से तालिका 1.2 में रखा जायेगा।

तालिका 1.2 रू तकनीकी आधारक (Technological Matrix)

	कृषि	उद्योग
कृषि	a_{11}	a_{12}
उद्योग	a_{21}	a_{22}

अपने उदाहरण में, द्वि क्षेत्र आगत निर्गत तालिका 1.1 से aij की गणना करने के लिये, समीकरण (3) का प्रयोग करके, हम तकनीकी गुणांक आधारक (Technological co-efficient Matrix) प्राप्त करते हैं जिसे तालिका 1.3 में दिखाया गया है।

तालिका 1.3 तकनीकी गुणांक आधारक

(Technolgical co-efficient Matrix)

	कृषि	उद्योग
कृषि	50/300 = 0.17	150/500 = 0.30
उद्योग	100/300 = 0.33	250/500 = 0.50

तालिका 1.1 के पहले स्तम्भ की प्रत्येक वस्तु को पहली पंक्ति के कुल जोड़ से विभक्त करके, दूसरे स्तम्भ की प्रत्येक वस्तु को दूसरी पंक्ति के कुल जोड़ से विभक्त करके, और इसी तरह आगे भी, इन आगत गुणांकों को निकाला गया है। क्योंकि ये गुणांक स्थिर मान लिये गये हैं, इसलिये आगत निर्गत तालिका का प्रयोग, कुल निर्गत में किसी क्षेत्रीय परिवर्तन के समस्त अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभावों को मापने के लिये किया जा सकता है।

1.6.2 लियोनतिफ का प्रावैगिक मॉडल (Leontief's Dynamic Input Output Model)

अब तक हमने स्थैतिक मॉडल का अध्ययन किया है। "मॉडल उस समय

प्रावैगिक बन जाता है, जब 'वस्तुओं के अन्तिम बिल' के निवेश भाग को निर्गत से जोड़कर उसे बन्द कर दिया जाय।"

लियोनतिफ का प्रावैगिक आगत-निर्गत मॉडल स्थैतिक मॉडल का सामान्यीकरण है और उन्हीं मान्यताओं पर आधारित है। प्रावैगिक मॉडल में, एक दी हुई अवधि की निर्गत स्टॉक में चली जानी चाहिये अर्थात पूँजी वस्तुएँ और स्टॉक बारी बारी से n उद्योगों में वितरित हो जाते हैं। संतुलन समीकरण निम्नवत है :

$$Xi(t) = Xi_1(t) + Xi_2(t) + Xi_3(t) ..... + Xi_n(t)$$

$$+ (S'i_1 + S'i_2 + S'i_3 + ... S'i_n) + Di(t) + Yi(t) .....(4)$$

यहाँ Xi (t), t अवधि के उद्योग नं० i के निर्गत कुल प्रवाह को प्रकट करता है, जिसका तीन उद्देश्यों के लिये प्रयोग किया जाता है :

(i) उस अवधि में अर्थव्यवस्था के n उद्योगों $Xi_1(t)$, $Xi_2(t)$ इत्यादि में उत्पादन के लिये;

(ii) n उद्योगों में पूँजी वस्तुओं के स्टॉक में शुद्ध वद्धि (addition) करने के लिये अर्थात S'i जिसे इस प्रकार भी लिख सकते हैं। $Si(t) = Si(t+1) - Si(t)$ जहाँ Si (t), चालू अवधि (t) में पूँजी के संचित स्टॉक को प्रकट कता है, और Si (t + 1) अगले वर्ष के स्टॉक को; और

(iii) अगली अवधि की उपभोग माँग Di (t + 1) के रूप में।

यदि हम मूल्य ह्रास (Depreciation) और टूट-फूट को छोड़ दें तो Si (t + 1) – Si (t) चालू उत्पादन में से पूँजी स्टॉक में शुद्ध वद्धि है। इसलिये समीकरण (4) को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$Xi(t) = Xi_1(t) + Xi_2(t) + Xi_3(t) + ... Xi_n(t) + Xi(t+1) - Si(t) + Di(t) + Yi(t)$$

Yi (t), अवधि t में बाह्य क्षेत्र की खपत की मात्रा को प्रकट करता है। जैसे स्थैतिक मॉडल में तकनीकी गुणांक निकाला गया था, ठीक उसी ढंग से पूँजी गुणांक भी निकाला जा सकता है। उद्योग नं० j द्वारा प्रयोग की गयी वस्तु नं० i की पूँजी गुणांक यों व्यक्त किया जा सकता है।

प्रति गुणन से, हमें प्राप्त होता है :

$$Sij = bij. Xj \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5)$$

जहाँ Sij उद्योग नं० j द्वारा प्रयोग की गई वस्तु नं० i के पूँजी स्टॉक की मात्रा को व्यक्त करता है। Xi उद्योग j की कुल निर्गत है, और big स्थिरांक है जिसे पूँजी गुणांक या स्टॉक गुणांक कहते हैं। प्रावैगिक मॉडल में समीकरण संरचनात्मक समीकरण है।

यदि bij गुणांक शून्य हो तो इसका मतलब होगा कि उद्योग को किसी स्टॉक की आवश्यकता नहीं है और प्रावैगिक मॉडल तब स्थैतिक मॉडल बन जाता है। फिर, bij न तो ऋणात्मक हो सकता है और न ही अनन्त। यदि पूँजी गुणांक ऋणात्मक हो, तो आगत वास्तव में उद्योग की निर्गत होती है।

1.7 आगत-निर्गत विश्लेषण की सीमाएं (Limitations of Input-Output Analysis)

आगत-निर्गत विश्लेषण की मुख्य सीमाएं उस प्रकार है :

(1) मान्यताओं की अव्यवहारिकता—लियोनतिफ द्वारा मानी गयी मान्यतायें अव्यहारिक हैं। विशेषरूप से उनका यह मानना कि उत्पादन का आगत-निर्गत गुणांक स्थिर रहता है अर्थात उनकी 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' तथा 'तकनीकी स्थिरता' की बात काफी अवास्तविक जान पड़ती है। लियोनतिफ यह भी स्पष्ट नहीं कर सके कि आर्थिक दशाओं में परिवर्तन होने पर तकनीकी गुणांक कैसे और क्यों बदल जाता है? यही नहीं प्रायः यह देखने में आता है कि कुछ उद्योग पूँजी संरचना की दष्टि से समान होते ळें, कुछ पूँजी की अधिक माँग करते हैं तो कुछ ऐसे भी उद्योग होते हैं जिनकी पूँजीगत माँग बहुत कम होती है। अतः ऐसी दशा में उत्पादन तकनीकों के प्रयोग में किये जाने वाले परिवर्तन, स्थिर-गुणांक की धारणा को अवास्तविक बना देते हैं।

(2) कुछ घटकों की उपेक्षा—इस आगत-निर्गत मॉडल की कठोरता (rigidity) का स्वरूप, विभिन्न प्रकार की अड़चनों तथा बढ़ती लागतों आदि की अवहेलना करता है।

(3) साधन-प्रतिस्थापना की अनदेखी—उत्पादक गुणांकों के स्थिर रहने की मान्यता ने साधन प्रतिस्थापन की संभावना को बिल्कुल खारिज कर

दिया है। सच तो यह है कि साधन प्रतिस्थापन की संभावना थोड़ी बहुत मात्रा में तो अल्पकाल में होती है, जबकि दीर्घकाल में इसकी संभावना और बढ़ जाती है।

(4) एक पक्षीय विश्लेषण—यह विश्लेषण एक पक्षीय है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था में केवल उत्पादन पहलू पर विचार करता है।

(5) अन्तिम माँग क्षेत्र की स्थिर आगत सम्बन्धी कठिनाई—इस मॉडल में सरकार तथा उपभोक्ता के क्रय को यानी अन्तिम माँग क्षेत्र के आगत को 'दिया हुआ' (given) मान लिया गया है। दूसरे शब्दों में, अन्तिम माँग क्षेत्र एक स्वतन्त्र चर (idependent variable) है जिसमं विचलन की कोई संभावना नहीं है। वास्तव में, यह मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि अन्तिम माँग क्षेत्र आश्रित चर होने के साथ-साथ विचलनशील भी है।

(6) रेखीय सम्बन्ध सम्भव न होना—इस मॉडल की रेखीय सम्बन्ध (linear relation) की धारणा अर्थात एक उद्योग का निर्गत दूसरे उद्योग का आगत होने वाली बात अवास्तविक है क्योंकि साधनों की विभाज्यता के कारण निर्गत में होने वाली वद्धि सदैव आगत में होने वाली वद्धि के समान नहीं हो पाती।

(7) जटिलता—यह तकनीक समझने तथा अनुप्रयोग के दष्टिकोण से काफी जटिल है। इसमें समीकरणों के पिरामिड तैयार करने पड़ते हैं जिसके लिये पर्याप्त साख्यिकीय आंकड़ों तथा गणित के उच्च स्तरीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः इस दष्टि से यह तकनीक काफी जटिल मानी जाती है।

1.8 महत्व एवं अनुप्रयोग (Importance and Application)

प्रो० लियोनतिफ़ द्वारा प्रतिपादित आगत-निर्गत तकनीक आर्थिक जगत के लिये एक अमूल्य उपलब्धि स्वीकार की गयी है। इस विश्लेषण के व्यवहारिक मूल्य एवं महत्व के मुख्य पश्त इस प्रकार है :—

(1) यह तकनीक आर्थिक सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाले अर्थशास्त्रियों के लिये महत्वपूर्ण है क्योंकि यह वालरस के सामान्य सन्तुलन को सरलतम रूप में स्पष्ट करती है।

(2) यह तकनीक राष्ट्रीय लेखांकन (National accounting) सम्बन्धी

अध्ययन के लिये भी उपयोगी है क्योंकि यह व्यापक समूहो (Macro aggregates) तथा मौद्रिक प्रवाहों (monetary inflows) का विस्तत अध्ययन करती है।

(3) इसका महत्व आर्थिक नियोजन के लिये भी अत्यधिक है क्योंकि इसके द्वारा उत्पादन को अधिकतम करने वाले उद्योगों के सर्वोत्तम संयोगों (optimal combinations) को असानी से प्राप्त किया जा सकता है।

(4) आगत-निर्गत तालिका के माध्यम से फर्मों उद्योगों की अन्तः निर्भरता एवं आपसी सम्बन्धों का पता चलाया जा सकता है।

(5) इस तकनीक से अनियमित उच्चावचनों एवं व्यापार चक्र की प्रतिक्रिया का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

1.9 विकास-नियोजन में आगत-निर्गत तकनीक का प्रयोग (Use of Input-Output Technique in Development Planning)

वैसे तो वर्तमान आर्थिक जगत के प्रत्येक क्षेत्र में आगत-निर्गत तकनीक का प्रयोग किया जाता है लेकिन मुख्य रूप से आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में इसका प्रयोग अब अधिक किया जाने लगा है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में ऊध्वीकार सम्बन्धों (Vertical relations) का अध्ययन अर्थात आगत-निर्गत तकनीक का प्रयोग अब केवल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की दशाओं तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। जैसा कि मार्क्स का कहना है, "चूँकि आगत-निर्गत सम्बन्ध उत्पादन की तकनीकी दशाओं पर आधारित है इसलिये ऐसे समुचित अनुपात अब प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था में बनाये जाने चाहिये।" हों इन सम्बन्धों व अनुपातों का अध्ययन समाजवादी आथिक नियोजन के लिये और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कार्यकारी-यन्त्र (Working-mechanism) को समझने के लिये समान रूप से जरूरी है। प्रो० लेंज का मत है कि "समाजवाद की दशाओं के अन्तर्गत आगत-निर्गत विश्लेषण राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं की आन्तरिक संगततता (Internal Consistency) को निर्धारित करने का एक अनिवार्य उपकरण है।"

नियोजित समाजवादी देशों में आगत-निर्गत विश्लेषण विभिन्न प्रकार की साख्यिकीय ब्रान्चों का रूप लेता है जो राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के उपकरण का काम करता है। चूँकि आगत-निर्गत तालिका विभिन्न क्षेत्रों के

परस्पर-सम्बन्धों और एक क्षेत्रीय संरचनात्मक सम्बन्धों का पूरा हवाला देती है, इसलिये इन सूचनाओं के आधार पर, नियोजन सत्ता किसी एक क्षेत्र के परिवर्तन व प्रभाव को अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर लागू कर सकती है अथवा उसी के अनुसार आयोजन कर सकती है। हाँ, ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि राष्ट्रीय आयोजन के लिये स्थैतिक आगत-निर्गत मॉडल की अपेक्षा प्रावैगिक मॉडल अधिक उपयुक्त रहता है क्योंकि तीव्रगति से विकास करने वाली अर्थव्यवस्थाओं में प्रवाह-ढाँचा स्थिर नहीं रह पाता। इस सम्बन्ध में यह बताना भी अनावश्यक न होगा कि आगत-निर्गत तकनीक एक अल्प-विकसित देश के आर्थिक नियोजन में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है। इसका कारण यह है कि स्थिर तकनीकी गुणांक धारणा वाला 'रेखीय-समरूप आगत-निर्गत मॉडल' विश्वसनीय साख्यिकीय आँकड़ों के आभाव में भी सुविधाजनक ढंग से कार्य कर सकता है। वैसे भी 'प्रवाह' और 'पूँजी गुणांकों' को स्थिर मान लेने पर विस्तत साख्यिकीय आँकड़ों की आवश्यकता कम हो जाती है क्योंकि आगतें (Inputs) निर्गतों के आनुपातिक मान ली जाती हैं। इसलिये यह तकनीक अल्प-विकसित देशों में अन्तःउद्योग प्रवाहों की मात्राओं को निर्धारित करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है। यही कारण है कि नियोजित ढंग से विकास करने वाले अधिकांश देशों द्वारा इस तकनीक का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र का एक अध्ययन विकास-प्रोग्रामिंग में आगत-निर्गत मॉडलों के निम्नलिखित लाभों का वर्णन करता है :

(1) ये अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत शाखाओं के उत्पादन और आयात-स्तरों के अनुमान प्रदान करते हैं, जो अन्तिम माँग के अनुमानों और एक दूसरे के साथ मेल खाते हैं।

(2) मॉडल का हल प्रोग्राम में उत्पादन स्तरों को प्रापत करने के लिये अपेक्षित निवेश के वितरण में सहायक होता है और यह प्राप्य निवेश साधनों के लिये अधिक सही टैस्ट प्रदान करता है।

(3) इस तरीके से प्रशिक्षित श्रम की आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(4) आयात आवश्यकताओं और स्थानापन्नता संभाव्यताओं का विश्लेषण अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं में घरेलू और आयातित पदार्थों के

प्रयोग के ज्ञान द्वारा सुगम हो जाता है।

(5) पूँजी, श्रम और आयातों की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष आश्यकताओं का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

(6) किसी विशेष प्रदेश तथा समस्त अर्थव्यवस्था के विकास प्रोग्रामों के प्रभावों की खोज करने के लिये प्रादेशिक आगत-निर्गत मॉडलों का आयोजन उद्देश्यों हेतु भी निर्माण किया जा सकता है।

यह निष्कर्ष देता है कि ये मॉडल "मुख्यतः उन अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होते हैं जिन्होंने औद्योगिक विकास का एक निश्चित स्तर (Degree) को प्राप्त कर लिया है और अतः उनके अन्तः उद्योग लेन-देन काफी मात्रा में होते हैं।"

1.10 सारांश

आगत-निर्गत विश्लेषण आयोजन की एक नई तकनीक है जिसका प्रतिपादन प्रो० लियोनतिफ़ द्वारा किया गया। अर्थव्यवस्था की परस्पर-निर्भरताओं तथा जटिलताओं को समझने के लिये अन्तःउद्योग (Inter-industry) के सम्बन्धों का विश्लेषण करने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है। इसे 'अन्तउद्योग विश्लेषण' भी कहते हैं। इस तकनीक का उद्देश्य उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य संख्यात्मक सम्बन्धों को बनाये रखना है जिससे कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उत्पादन का प्रवाह सुचारू रूप से होता रहे।

आगत-निर्गत तालिका किसी एक विशेष वर्ष में समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखती है। यह भिन्न-भिनन उत्पादक क्षेत्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाहों के, विशेष रूप में अन्तःउद्योग प्रवाहों के, मूल्यों को प्रकट करती है।

दो प्रकार के सम्बन्ध उस ढंग को निर्धारित करते हैं जिसमें अर्थव्यवस्था व्यवहार करती है और स्त्रोतों के प्रवाह के एक निश्चित नमूने को धारण कर लेती है। वे हैं (1) अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र की आन्तरिक स्थिरता या सन्तुलन तथा (ii) प्रत्येक क्षेत्र या अन्तर्क्षेत्रीय सम्बन्धों की बाह्य स्थिरता। प्रो० लियोनतिफ़ ने इन्हें 'संतुलन और संरचना के आधारभूत सम्बन्ध (Fundamental relation of balance and structure) कहा है। इनकी गणितीय अभिव्यक्ति संतुलन समीकरण (balance equation) या संरचनात्मक समीकरण (structural equation) कहलाती है।

आगत-निर्गत विश्लेषण की प्रमुख सीमाएँ हैं : मान्यताओं की अव्यवहारिकता कुछ घटकों की उपेक्षा, एक पक्षीय विश्लेषण एवं जटिलता आदि।

प्रो० लियोनतिफ द्वारा प्रतिपादित आगत-निर्गत तकनीक आर्थिक जगत के लिये एक अमूल्य उपलब्धि स्वीकार की गयी है और वर्तमान में मुख्य रूप से आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में इसका प्रयोग अब अधिक किया जाने लगा है।

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1. आर्थिक विकास एवं नियोजन—एस०पी० सिंह, एस०चन्द एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली।
2. आर्थिक नियोजन—टी०आर० शर्मा एवं जे०सी० वार्ष्णेय, साहित्य भवन, आगरा।
3. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन—एम०एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशनस प्रा०लि०, दिल्ली।
4. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन—मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा० लि०, दिल्ली।
5. Advanced Economic Theory—H.L. Ahooja, S. Chand & Co. Pvt. Ltd., Delhi।
6. The Economics of Development and Planning—M.L. Jhingan, Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.

1.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आगत-निर्गत विश्लेषण से क्या अभिप्राय है? नियोजन तकनीक के यप में इसका क्या महत्व है?
2. नियोजन की एक विधि के रूप में आगत-निर्गत विश्लेषण की प्रकृति, महत्व तथा परिसीमाओं की व्याख्या कीजिये।
3. आगत-निर्गत प्रावैगिक मॉडल, स्थैतिक मॉडल से किस प्रकार भिन्न है? उदाहरण द्वारा समझाइये।
4. आगत निर्गत विश्लेषण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

वस्तु-निष्ठ प्रश्न

बताइये निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत

1. आगत-निर्गत विश्लेषण और अन्तः उद्योग विश्लेषण दोनों अलग-अलग तकनीक है।
2. आगत के मुद्रा मूल्यों का जोड़ एक फर्म की कुल लागत होती है।
3. आगत निर्गत विश्लेषण उस अर्थव्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करता है जो सन्तुलन में हो।
4. आगत निर्गत विश्लेषण के अन्तर्गत अर्थव्यवसा में केवल उपभोग पहलू पर विचार किया जाता है।

1.13 प्रश्नोत्तर

1. गलत 2. सही 3. सही 4. गलत

इकाई-2 तकनीक एवं प्रयोग (Technique and Uses)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्राविधिक विकास के चरण

2.3 तकनीक चयन-आशय

2.4 अल्प-विकसित एवं विकसित देशों में प्राविधिक-विकास की भिन्नता

2.4.1 अनुज्ञात्मक परिस्थितियाँ

2.4.2 आविष्कार की पहल

2.5 प्राविधिक विधियों के प्रकार

2.5.1 श्रम-गहनीय तकनीक

2.5.2 पूँजी गहनीय तकनीक

2.6 श्रम गहनीय तकनीक बनाम पूँजी गहनीय तकनीक

2.6.1 श्रम-गहनीय तकनीक के पक्ष में तर्क

2.6.1.1 रोजगार सम्बन्धी तर्क

2.6.1.2 सीमित पूँजी का सर्वोत्तम प्रयोग

2.6.1.3 आर्थिक समानता

2.6.1.4 उत्पादन की सस्ती तकनीक

2.6.1.5 विदेशी विनिमय की बचत

2.6.1.6 केन्द्रीयकरण की बुराइयों से मुक्त

2.6.1.7 मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण

2.6.1.8 उपयोग स्तर में वद्धि

2.6.1.9 मितव्ययिता

2.6.1.10 औद्योगीकरण के दोषों से मुक्त

2.6.2 श्रम गहनीय तकनीक की सीमाएँ

2.6.3 पूँजी-गहनीय तकनीक के पक्ष में तर्क

2.6.3.1 तीव्र आर्थिक विकास

2.6.3.2 जीवन-स्तर में वद्धि

2.6.3.3 शीघ्र औद्योगीकरण

2.6.3.4 प्राविधिक प्रगति के लाभ

2.6.3.5 रोजगार के अवसरों का सजन

2.6.3.6 विकास का वातावरण

2.6.3.7 मितव्ययिता

2.6.3.8 कार्यकुशलता में वद्धि

2.6.3.9 उत्पादकता में वद्धि

2.6.4 पूँजी गहनीय तकनीक की सीमाएँ

2.7 विकासशील देशों के लिये कौन सी तकनीक उपयुक्त है?

2.8 प्राविधिक चयन में सहायता प्रदान करने वाले कारक

2.8.1 संसाधनों की उपलब्धता

2.8.2 साधन पूर्ति

2.8.3 प्रौद्योगिक प्राप्ति स्तर

2.8.4 संस्थागत व्यवस्था

2.9 अल्प विकसित देशों में तकनीक चयन में व्यवहारिक समस्याएँ

2.9.1 पूँजी का आभाव

2.9.2 अशिक्षा

2.9.3 परम्परागत दष्टिकोण

2.9.4 प्रतिकूल सामाजिक आर्थिक संस्थायें

2.9.5 प्रशिक्षित कारीगरों का आभाव

2.9.6 जनसंख्या-विस्फोट

2.9.7 तकनीक के शीघ्र अप्रचलित होने की समस्या

2.9.8 विरोध

2.10 सारांश

2.11 उपयोगी पुस्तकें
2.12 सम्बन्धित प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- तकनीक चयन के अर्थ को परिभाषित कर सकें;
- अल्प-विकसित देशों एवं विकसित देशों में प्राविधिक विकास की भिन्नता का विवेचन कर सकें;
- श्रम-गहनीय तकनीक एवं पूँजी गहनीय तकनीक में अन्तर कर सकें;
- दोनों तकनीकों के पक्ष व विपक्ष में दिये जाने वाले तर्कों का विश्लेषण कर सकें;
- विकासशील देशों के लिये श्रम-गहनीय और पूँजी-गहनीय तकनीक में से उपयुक्त तकनीक के चुनाव के निर्णय में सहायक कारकों का विवेचन कर सकें और उपयुक्त तकनीक की व्यूह-रचना में अपने सुझाव दे सकें; और
- अल्प-विकसित देशों में तकनीक चयन में उत्पन्न होने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों की पहचान कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में नियोजकर्त्ताओं के समक्ष विभिन्न प्रकार के चयन की समस्यायें रहती हैं ताकि अनुकूलतम उत्पादन कर आर्थिक विकास को तेज किया जा सके। विकासशील देशों के सामने एक समस्या पर बनी रहती है कि अर्थव्यवस्था की वद्धि की तेन करने के लिये उपलब्ध विभिन्न संसाधनों जैसे उपलब्ध सामग्री, वित्तीय एवं मानवीय संसाधन, का श्रेष्ठतम उपयोग किस प्रकार से किया जाय। इन देशों में प्रायः श्रम की प्रचुरता किन्तु पूँजी की दुर्लभता रहती है। ये दोनों प्रमुख साधन ही तकनीकों के चुनाव की समस्या उत्पन्न करते हैं कि उत्पादन बढ़ाने के लिये परम्परागत विधियों का प्रयोग किया जाय अथवा आधुनिक विधियों का। ऐसी स्थिति में उत्पादन की तकनीक के एक ऐसे स्वरूप का चयन किया जाना चाहिये जो देश में उपलब्ध उत्पादन के साधनों के अनुपात को ध्यान में रखते हुये अधि

अधिकतम प्रतिफल सम्भव करा सके। एक प्रभावशाली तकनीक वह मानी जायेगी जो कम लागत पर अधिक उपज प्रदान करे अथवा राष्ट्रीय उत्पादन को अधिकतम कर सके।

2.2 प्राविधिक विकास के चरण (Steps of Technological Development)

आर्थिक विकास में तकनीक की विशिष्ट भूमिका होती हैं। प्रो० साइमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) ने प्राविधिक प्रगति के चार विशिष्ट चरणों का उल्लेख किया है :—

(i) वैज्ञानिक खोज अर्थात् तकनीकी ज्ञान में वद्धि;

(ii) आविष्कार, अर्थात् पहले से विद्यमान ज्ञान का सर्वोत्तम उपयोग करना;

(iii) नव-प्रवर्तन अर्थात् आर्थिक उत्पादन हेतु आविष्कारों को लागू करना; और

(iv) सुधार अर्थात आविष्कारों में लाभदायक परिवर्तन करना।

प्राविधिक प्रगति के इन चरणों की सफलपूर्ति के लिये चार साधनों की आवश्यकता होती है :

(i) अर्थव्यवस्था में वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर में निरन्तर वद्धि;

(ii) हर चरण में भारी पूँजी निवेश तथा कुशल श्रम-शक्ति की उपलब्धि;

(iii) नव-प्रवर्तन हेतु साहसिक कुशलता एवं योग्यता की स्थिति ताकि आविष्कारों को लाभदायक क्षेत्रों में लगाया जा सके; और

(iv) नव-प्रवर्तन विस्तार हेतु लोगों में सामूहिक उत्पादन हेतु नई वस्तुओं तथा क्रियाओं को अपनाने की इच्छा तथा अभिरूचि का होना।

2.3 तकनीक चयन-आशय

तकनीक चयन से तात्पर्य किसी विशेष योजना अथवा उद्यम हेतु संयोग (Combination) के प्रकार का चयन करने से होता है। किसी विशेष स्थिति में जो भी संयोग चुना जाता है वह तकनीकी रूप को बताता है। प्रो० ए०के० सेन के अनुसार, "विभिनन तकनीक से आशय अर्थव्यवस्था के निष्पादन के

विभिनन प्रयासों के साथ आर्थिक विकास की एकदम भिन्न कूटनीतियों से है।"

तकनीक चयन की समस्या से ही विकास दर, विनियोग संरचना, लागत-संरचना, कीमत-पत्र तथा उत्पादन की मात्रा जैसे अनेक बिन्दु जुड़े हुये हैं। आर्थिक विकास की दष्टि से प्रत्येक तकनीक के अलग -अलग आधार होते हैं। इसलिये सभी अर्थव्यवस्था में एक समान तकनीक को नहीं अपनाया जा सकता। वास्तव में भौगोलिक स्थिति, विकास की अवस्था, पूँजी निर्माण की दर, आय स्तर में विभिन्नता तथा प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों की उपलब्धियों के आधार पर तकनीक में अंतर पाया जाता है। इस प्रकार तकनीक ही वह आधार है जिस पर आर्थिक नियोजन का सफलता और विफलता निर्भर करती है।

2.4 अल्पविकसित एवं विकसित देशों में प्राविधिक विकास की भिन्नता (Difference in Technological Progress in under-developed and Developed Countries)

अल्पविकसित देशों में कुजनेट्स द्वारा बताई गई तकनीक की दशाओं की अभाव रहता है क्योंकि इन देशों में शैक्षणिक एवं अनुसन्धान सुविधाओं, कुशल श्रम तथा उद्यमीय योग्यता की कमी होती है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में पिछड़ी हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक, संस्थाओं के कारण प्रावैगिक उद्यमता का अभाव होता है जिसे शुम्पीटर ने नव प्रवर्तन को प्रेरित करने वाला प्रमुख घटक माना है। इस प्रकार, अल्पविकसित देशों की वर्तमान साध न सम्पन्नताओं के साथ, उनमें उस प्रकार के नव-प्रवर्तनों का विकास नहीं किया जा सकता, जो उन्नत देशों के आर्थिक विकास में योगदान देते हैं। परिणामस्वरूप अल्प विकसित राष्ट्रों में प्राविधिक विकास की स्थिति निम्नतर की होती है जबकि विकसित राष्ट्रों में प्राविधिक विकास तीव्र गति से हुआ है। विकसित राष्ट्रों में तीर्व प्राविधिक विकास के लिये मुख्यतया दो परिस्थितियों का योगदान है—प्रथम अनुज्ञात्मक परिस्थितियाँ एवं द्वितीय आविष्कार की पहल।

2.4.1 अनुज्ञात्मक परिस्थितियाँ

विकसित राष्ट्रों में विभिन्न परिस्थितियों ने वातावरण को अनुकूल बनाया, विशिष्टीकरण को प्रोत्साहित किया तथा नवीन प्रकार के आविष्कारों को

जन्म दिया। विभिन्न उत्तेजक साधनों ने सम्पूर्ण समाज की परिस्थितियों की ओर ध्यान दिलाया और वैज्ञानिक क्रान्ति विशिष्टीकरण, नवीन प्रकार की प्राविधिक विधियों, आदि ने उत्पादन के समस्त क्षेत्रों का विकास किया।

2.4.2 आविष्कार की पहल

विकसित देशों में आविष्कार की पहल होने के कारण सदैव से ही वहाँ पर प्रविधि विकसित अवस्था में पायी जाती है। अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के बढ़ते हुये बाजारों ने नवीन अवसरों को जन्म दिया जिससे विकसित राष्ट्रों ने विभिन्न समस्याओं के समाधान में तत्परता से कार्य किया तथा उप्पादन के विभिन्न साधनों में मितव्यमिता का उपयोग किया गया। औद्योगिक क्रान्ति एवं आविष्कारों की पहल के कारण प्राविधिक विकास सम्भव हो सका।

विकसित राष्ट्रों के प्राविधिक विकास का प्रभाव अल्पविकसित राष्ट्रों पर भी पड़ा परन्तु यह प्रभाव उत्पादन क्षेत्र पर कम पड़ा। प्रायः पूँजी के निर्यात के साथ-साथ ही विकसित राष्ट्रों से प्राविधिक ज्ञान अल्पविकसित राष्ट्रों में फैला, फिर भी अल्पविकसित राष्ट्र उत्पादन बढ़ाकर अपने उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त नहीं कर सके जिससे उत्पादन के क्षेत्र में नवीन प्राविधि का उपयोग सम्भव नहीं हो सका।

2.5 प्राविधिक विधियों के प्रकार (Types of Technological Methods)

तकनीकों के चुनाव की समस्या किसी विशिष्ट परियोजना अथवा उद्यम के लिये संयोगों के प्रकार को निर्दिष्ट करती है। किसी विशिष्ट स्थिति में चुना गया संयोग तकनीक के रूप को बनाता है। अन्तिम चुनाव श्रम-गहनीय तकनीक (Labour Intensive Techniques) तथा पूँजी गहनीय तकनीक (Capital Intensive Technique) में से करना होता है। प्राविधिक विधियों को दो भागों में रखा जा सकता है—श्रम–गहनीय तकनीक एवं पूँजी गहनीय तकनीक।

2.5.1 श्रम-गहनीय तकनीक (Labour Intensive Technique)

श्रम गहनीय तकनीकों से तात्पर्य ऐसी तकनीकों से है जिसमें तुलनात्मक रूप से श्रम की अधिक मात्रा और पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है। तुलनात्मक दष्टि से श्रम की अधिक मात्रा और पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग करने के कारण इस तकनीक को श्रम-प्रधान तकनीक या पूँजी-बचाव

उपाय (Capital Saving Devices) के रूप में माना जाता है। चूँकि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में श्रम की बाहुल्यता एवं पूँजी की कमी रहती है इसीलिये प्रो० वर्क्स, कुजनेण्ट्स, मेयर एवं वाल्डविन, लिविस और किण्डलबर्जर आदि अर्थशास्त्रियों ने अर्द्ध-विकसित देशों के लिये श्रम-गहनीय तकनीक के प्रयोग को अधिक उपयुक्त माना है क्योंकि इस तकनीक को अपनाने से श्रमिको का अधिकतम उपयोग हो उससे बेरोजगारी की समस्या का समाधान भी होगा साथ ही आर्थिक विकास को प्रोत्साहन भी मिलेगा।

2.5.2 पूँजी-गहनीय तकनीक (Capital Intensive Technique)

पूँजी-गहनीय तकनीक से तात्पर्य ऐसी तकनीक से है जिसमें पूँजील की अधिक मात्र को श्रम की अल्प मात्रा के साथ मिला दिया जाता है अर्थात् इसमें श्रम की अपेक्षा पूँजी का अधिक प्रयोग किया जाता है। चूँकि विकासशील देश विकसित देशों के तकनीक विकास मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते अतएव उन्हें विकसित देशों की तकनीक अर्थात पूँजी-गहनीय तकनीक के प्रयोग का सुझाव दिया जाता है।

2.6 श्रम-गहनीय तकनीक बनाम पूँजी-गहनीय तकनीक (Labour Intensive Vs. Capital Intensive Technique)

एक अल्प-विकसित देश के लिये श्रम-गहनीय तकनीक एवं पूँजी-गहनीय तकनीक में से कौन सी तकनीक अपनाया जाना अधिक उपयुक्त होगा, इसका निर्णय लेने से पहले यह अधिक अच्छा होगा इन दोनों तकनीकों के पक्ष व विपक्ष में दिये गये तर्कों का समुचित अध्ययन कर लिया जाय।

2.6.1 श्रम-गहनीय तकनीक के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour Labour Intensive Technique)

श्रम-गहनीय तकनीक के अपनाये जाने के पक्ष में सामान्य रूप से प्रस्तुत किये गये तर्क निम्नलिखित है :

2.6.1.1 रोजगार सम्बन्धी तर्क (Employment Argument)

अल्पविकसित देशों में मानवीय शक्ति का आधिक्य होने के कारण बेरोजगारी की समस्या काफी जटिल होती है। सामान्य बेरोजगारी के साथ-साथ छिपी हुई बेरोजगारी इन देशों की मौलिक तथा महत्वपूर्ण विशेषता होती है। ऐसी स्थिति में श्रम-गहनीय तकनीक को अपनाये जाने से अधिक

श्रम शक्ति का प्रयोग होगा जिससे अधिकाधिक रोजगार के अवसरों का सजन होगा और बेरोजगारी की समस्या हल की जा सकेगी।

2.6.1.2 सीमित पूँजी का सर्वोत्तम प्रयोग (Optimal use of limited Capital)

चूँकि विकासशील देशों में सीमित पूँजी होती है और श्रम की प्रचुरता होती है अतः श्रम-गहनीय तकनीक का प्रयोग करने से उपलब्ध सीमित पूँजी का सर्वोत्तम प्रयोग होता है क्योंकि पूँजी के दुरुपयोग की कोई संभावना नहीं रहती।

2.6.1.3 आथिक समानता (Economic Equality)

उत्पादन की यह तकनीक अधिक रोजगार उत्पन्न करने के साथ-साथ उपलब्ध राष्ट्रीय आय का वितरण अधिक से अधिक हाथों में करने की प्रवत्ति रखती है। परिणामस्वरूप समाज में राष्ट्रीय आय का समान वितरण होता है और आर्थिक विषमतायें पनपने नहीं पातीं।

2.6.1.4 उत्पादन की सस्ती तकनीक (Cheap Technique of Production)

अल्प विकसित देशों में श्रम सस्ता एवं पूँजी मँहगी होती है अतः श्रम-गहनीय तकनीक उत्पादन की सस्ती तकनीक है। इस तकनीक को अपनाने से कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है तिजसकी ऐसे देशों मे पहले से ही बहुत कमी पायी जाती है।

2.6.1.5 विदेशी विनिमय की बचत (Saving of Foreign Exchange)

श्रम-प्रधान तकीक में प्रयुक्त होने वाले औजार व मशीने साधारण किस्म कमी होती हैं जिन्हें देश में ही उत्पादित किया जा सकता है। नयी तथा मँहगी तकनीक का प्रयोग नहीं होता। फलस्वरूप आयात नहीं करना पड़ता जिससे विदेशी विनिमय की बचत होती है।

2.6.1.6 केन्द्रीयकरण की बुराइयों से युक्त (Free from the evils of Centralisation)

श्रम-गहनीय तकनीक के कारण विकेन्द्रीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है जिससे एकाधिकारी प्रवत्तियों का जन्म नहीं होता फलतः केवल कुछ ही लोगों के हाथों में आर्थिक सकेद्रण नहीं हो पाता।

2.6.1.7 मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण (Control on Inflation)

श्रम-गहनीय तकनीक के प्रयोग से मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण लगने में सहायता मिलती है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक का प्रयोग करने से उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति शीघ्रता से तथा बड़ी मात्रा में होने लगती है जिससे मुद्रा सफीति की संभावना कम हो जाती है।

2.6.1.8 उपभोग स्तर में वद्धि (Increase in Consumption Lavel)

श्रम-गहनीय तकनीक का एक अनुकूल प्रभाव उपभोग के वर्तमान स्तर को ऊँचा उठाने का होता है। इस तकनीक के प्रयोग से मजदूरी के स्तर में वद्धि की प्रवत्ति पायी जाती है। यह अन्ततः उपभोग स्तर को बढ़ाता है जिससे श्रमिकों का जीवनस्तर भी सुधरता है।

2.6.1.9 मितव्ययिता (Economical)

श्रम-गहनीय तकनीक का एक लाभ यह होता है कि इस तकनीक के अपनाये जाने पर अर्थव्यवस्था की सामाजिक व आर्थिक लागत कम हो जाती है। छोटे पैमाने पर उपादन करने से श्रमिकों के लिये समाज कल्याण व सामाजिक सुरक्षा आदि की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती फलतः इन मदों पर व्यय में काफी हद तक बचत की जा सकती है।

2.6.1.10 औद्योगीकरण के दोषों से मुक्त (Free from Evil Effects of Industrialisation)

श्रम-गहनीय तकनीक लघुस्तर एवं कुटीर उद्योगों पर आधारित रहने से बड़े पैमाने के उद्योगों तथा कल-कारखानों के दोषो से विकासशील देश मुक्त रहते हैं।

2.6.2 श्रम-गहनीय तकनीक की सीमाएँ (Limitations of Labour Intensive Technique)

किन्तु पूँजी की कमी तथा कुशलता के अभाव में निर्धारित सीमाओं के कारण अधिकांश अल्म-विकसित देश उत्पादन बढ़ाने वाली श्रम-गहनीय तकनीक का प्रयोग करने में विफल रहे हैं। श्रम-गहनीय तकनीक के विपक्ष में इसकी निम्नलिखित सीमाओं के कारण यह तर्क दिया जाता है कि :

(1) यह तकनीक स्थैतिक (Static) और अल्पकालीन होती है, प्रावैगिक (Dynamic) व दीर्घकालीन नहीं; जबकि विकास एवं दीर्घकालीन एवं

प्रावैगिक प्रक्रिया है।

(2) विकास के क्रम में श्रम-गहनीय तकनीक, तकनीक क्रांति में अवरोध ा उत्पन्न करती है।

(3) यह तकनीक आय का वितरण उस वर्ग में कराती है जिनकी सीमान्त बचत प्रवत्ति काफी कम होती है, अतः पूँजी निर्माण नहीं हो पाता और रोजगार की प्राप्ति पूँजी निर्माण की कीमत पर की जाती है।

(4) श्रम-गहनीय तकनीक से उच्चतर एवं परिष्कृत ज्ञान का कभी भी प्रयोग नहीं हो पाता और न लोगों में इसको सीखने की प्रवत्ति ही देखने को मिलती है।

(5) इस प्रकार की तकनीक तकनीक श्रमिकों की उत्पादकता घटाती है और पुनर्विनियोजित अतिरेक को कम करती है जिससे विकास की दर कम होती है।

2.6.3 पूँजी-गहनीय तकनीक के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Capital Intensive Agriculture)

पूँजी-गहनीय तकनीक के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं :

2.6.3.1 तीव्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Growth)

चूँकि इस तकनीक को अपनाने से दीघकाल में रोजगार, उत्पादन और आय में विस्तार होता है इसलिये अप्लविकसित देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिये पूँजी-गहनीय तकनीक का प्रयोग अपेक्षाकृत अच्छा होता है।

2.6.3.2 जीवन-स्तर में वद्धि (Rise in Standard of Living)

पूँजी-गहनीय तकनीक में बड़े पैमाने पर उत्पादन होने सके प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है। फलस्वरूप नीची कीमत पर अधिक वस्तुओं का उपभोग होने के कारण लोगों का रहन-सहन की स्तर ऊँचा उठने लगता है।

2.6.3.3 शीघ्र औद्योगीकरण (Rapid Industrialisation)

अल्प विकसित देशों में जब पूँजी गहनीय तकनीक अपनाई जाती है तो

इसका आशय यह होता है बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना जिससे देश में शीघ्र औद्योगीकरण की संभावना बन जाती है।

2.6.3.4 प्राविधिक प्रगति के लाभ (Advantage of Techological Development)

श्रम-गहनीय तकनीक में उत्पादन की परम्परागत विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे अकुशल उत्पादन इकायाँ पनपने लगती हैं उसके विपरीत पूँजी-गहनीय तकनीकों के प्रयोग का प्रभाव ऐसी कुशल उत्पादन इकाइयों को उत्पन्न करने का होता है जो आधुनिकतम तकनीक का उपयोग कर रही होती है। फलस्वरूप देश को नवीनतम व आधुनिक तकनीक के सम्पूर्ण लाभ प्राप्त होने लगते हैं।

2.6.3.5 रोजगार के अवसरों का सजन (Creation of Employment Opportunities)

बेरोजगारी विकासशील अर्थव्यवस्था की मौलिक बुराई आर समस्या है जिसका समाधान बिना रोजगार के अवसरों के सजन के असंभव है। वास्तव में पूँजी-गहनीय तकनीक बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसरों का सजन करती है जिससे देश में बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्या को हल करने में सहायता मिलती है।

2.6.3.6 विकास का वातावरण (Tempo of Development)

अधिकांश अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वद्धि की दर बहुत ऊँची होती है। जब तक पूँजी श्रम अनुपात में वद्धि नहीं की जाती तब तक प्रति-इकाई उपज में वद्धि नहीं हो सकती और इससे पूँजी निर्माण की दर भी साधारणतया नीची बनी रहेगी। अतः सही अर्थों में विकास का वातावरण बनाये रखने के लिये पूँजी-गहनीय तकनीक का अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

2.6.3.7 मितव्ययिता (Economical)

उत्पादकता की दष्टि से यह तकनीक श्रम -गहनीय तकनीक से की अपेक्षा लाभदायक मानी जाती है क्योंकि पूँजी-गहनीय तकनीक में बड़े पैमाने के उत्पादन के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली मितव्ययिताओं के फलस्वरूप, लागत की अपेक्षा उत्पादकता में अधिक तेजी से वद्धि होती है।

2.6.3.8 कार्यकुशलता में वद्धि (Enhancement in Efficiency)

पूँजी-गहनीय तकनीक से कार्यकुशलता व दक्षता तेजी से बढ़ती है और अप्रचलित और अरुचिकर कार्यों के प्रशिक्षण व प्रबन्धन में सहायक सिद्ध होती है।

2.6.3.9 उत्पादकता में वद्धि (Increase in Productivity)

आर्थिक विकास की मुख्य कसौटी प्रति-श्रमिक उत्पादकता में वद्धि होना है। इतना ही नहीं पूँजी का निर्माण भी प्रति श्रमिक उत्पादकता में वद्धि होने पर ही सम्भव हो सकता है। पूँजी-गहनीय तकनीक के अन्तर्गत प्रति-श्रमिक उत्पादकता अधिक तेजी के साथ बढ़ती है।

2.6.4 पूँजी-गहनीय तकनीक की सीमाएँ (Limitations of Capital Intensive Technique)

किन्तु पूँजी-गहनीय तकनीक में कई मौलिक कमियाँ हैं इसलिये अधिकांश विद्वानों द्वारा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में इसका विरोध किया जाता है :

(1) विकासशील देशों में पूँजी-गहनीय तकनीक से संसाधनों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। श्रम की प्रचुरता के बावजूद श्रम की उपेक्षा होने लगती है जिसे बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है क्योंकि आज के युग में कई श्रमिकों के बदले मे पूँजीगत भारी मशीन तुरन्त अकेले काम कर देती है।

(2) पूँजी-गहनीय तकनीक से देश में ज्ञान तकनीक के रूप में विदेशी व्यापार की संरचना में आयात की मात्रा काफी बढ़ जाती है जिससे गरीब देशों में भुगतान सन्तुलन और अधिक असंतुलित हो जाता है।

(3) पूँजी-गहनीय तकनीक से गंभीर बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है जिससे भयानक सामाजिक तनाव का वातावरण तैयार हो जाता है।

(4) पूँजी-गहनीय तकनीक से विकासशील देशों में मजदूरी की कीमत पर राष्ट्रीय आय का लाभांश बढ़ता है।

(5) पूँजी-गहनीय तकनीक से उपभोक्ताओं का शोषण होने लगता है। पूँजीगत वस्तुओं का ही अधिक उपादन किया जाता है उपभोक्ता

वस्तुओं का कम, क्योंकि पूँजीगत वस्तुएँ अधिक लाभकारी होती है।

(6) पूँजी-गहनीय तकनीक अधिकतम सामाजिक लाभ की उपेक्षा करती है। इसका मुख्य लक्ष्य अधिकतम निजी लाभा कमाना होता है न कि अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति।

2.7 विकासशील देशों के लिये कौन सी तकनीक उपयुक्त है? (Which Technique is Appropriate for Developing Countries?)

ऐसी स्थिति में यक्ष प्रश्न सामने आता है कि अल्पविकसित देश में किस तरह इन दोनों तकनीकों के बीच चयन किया जाय? वास्तव में दोनों दष्टिकोण एक दूसरे से नितान्त भिन्न नहीं है। श्रम -गहनीय तकनीकों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार बढ़ाने में सहायक होता है जबकि पूँजी-गहनीय तकनीक अपनाने से पूँजी निर्माण की दर बढ़ती है और दीर्घकाल में, उत्पादन क्षमता तथा रोजगार अधिकतम होते हैं।

परन्तु विकासशील देश के सन्दर्भ में श्रम-गहनीय तकनीक तथा पूँजी-गहनीय तकनीक में से चुनाव करते समय यह आवश्यक है कि निम्नलिखित तत्वों पर विचार कर लिया जाय :

- साधनों को विविधता;
- उनकी उत्पादन की सापेक्ष लागत;
- समय की विभिन्न अवधियों में रोजगार;
- आय, बचत तथा निवेश पर प्रभाव;
- घरेलू साधनों का प्रयोग; तथा
- घरेलू तथा विदेशी माँग पर प्रभाव आदि

पूँजी-गहनीय तकनीक की अपेक्षा श्रम-गहनीय तकनीक से उत्पादित वस्तुओं की उत्पादन लागत साधारणतया अधिक होती है क्योंकि श्रम-गहनीय तकनीक बड़े पैमाने की मितव्ययितायें उपलब्ध्या कराने मं असमर्थ रहती है। परन्तु केवल इसी तर्क के आधार पर श्रम-गहनीय तकनीक के प्रयोग को स्थगित नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि उनसे दुर्लभ पूँजी साधनों के प्रयोग की मितव्ययिता प्राप्त होती है। उत्पादन की श्रम-गहनीय तकनीक रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करती है और उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने

में तथा विदेश से कच्चे माल, खाद्य तथा पूँजी वस्तुओं के आयात की आवश्यकता से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है। इस प्रकार वे स्फीतिकारी प्रवत्तियों तथा भुगतान शेष की कठिनाइयों का समाधान करती है, जोकि विकास प्रक्रिया में अन्तर्निहित रहती हैं, परन्तु इसमें एक कमी रह जाती है। श्रम-गहनीय तकनीक का प्रयोग पूँजी निर्माण की दर उतनी तेजी से नहीं बढ़ा सकता जितनी गति से पूँजी-गहनीय तकनीक में का प्रयोग बढ़ा सकता है। इसमें कोई संशय नहीं कि श्रम-गहनीय विधियाँ अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न करती हैं और परिणामतः आय-स्तरों को बढ़ाती हैं, परन्तु उन्हीं की, जिनकी आय कम है और उपभोग-प्रवत्ति अधिक है। इसलिये प्राप्त आय का थोड़ा अनुपात ही बचत तथा निवेश के लिये उपलब्ध होता है। निष्कर्षतः रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने, वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ाने तथा स्फीतिकारी एवं भुगतान-शेष के दबावों को यथा सम्भव रोकने के लिये उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (Consumer goods sector) में श्रम-गहनीय तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए। आय की वद्धि दर पर 'सतत तथा चक्रवद्धि प्रभाव' (Continuing and compounding effects) के लिये पूँजी-गहनीय तकनीकों को पूँजी-वस्तु क्षेत्र (Capital Goods Sector) तक सीमित रखने जाय। इसलिये वर्तमान परिस्थितियों में भारत समेत विभिन्न विकासशील देशों के नियोजनकर्त्ताओं की जिम्मेदारी बनती है कि अधिकतम सामाजिक कल्याण और तीव्रतम विकास तथा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन दोनों पर ध्यान दिया जाना चाहिये और इसके लिये दोनों तकनीकों का यथा स्थान प्रयोग करना चाहिये।

2.8 प्राविधि चयन में सहायता प्रदान करने वाले कारक (Factors Assisting Choice of Technique)

आजकल ज्यादातर लोगों की यह धारणा है कि विदेशी तकनीक का अंधाधुंध आयात विकासशील देशों के आर्थिक विकास को पर्याप्त गति नहीं प्रदान कर सका है। इसलिये आज विशेषज्ञों का यह मानना है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को विदेशी तकनीक आयतित करने के बजाय अपनी परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुकूल नई तकनीक स्वयं विकसित करनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि तकनीक का चुनाव एकदम व्यवहारिक आधार पर हो। यह जरूरी है कि तकनीक के क्षेत्र में यथाशीघ्र आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली जाय। यह तभी संभव है जब कि जरूरतों के

हिसाब से देशी तकनीक का विकास किया जाये।

यद्यपि प्राविधिक का चयन एक गंभीर समस्या है जो देश की परिस्थितियों व शासक वर्ग की कुशलता पर निर्भर करता है, फिर भी निम्नलिखित कारक (Factors) प्राविधि चयन में सहायक होते हैं :

2.8.1 संसाधनों की उपलब्धता (Availability of Resources)

प्रो० शुम्पीटर का विचार है कि तकनीक का चयन एक निर्धारित अवधि में किसी अर्थव्यवस्था में उपलब्ध्या संसाधनों पर निर्भर करता है। साधनों की उपलब्धता उत्पादन विधि, संगठन उत्पादन की मात्रा और उत्पादकता पर निर्भर करती है जिनकी कभी उन्हें बाधित करती है और प्रचुरता उत्साहित करती है। अपर्याप्त साधनों पर साध्य की जोखिम ली जा सकती है। साधनों में पूँजी का काफी महत्व है किन्तु अल्पविकसित देशों में पूँजी की काफी कमी होती है। अतः यह आवश्यक होता है कि इनका अनुकूलतम प्रयोग किया जाये और उन साधनों का ही अधिकतम किया जाय जो प्रचुर मात्रा में हों।

2.8.2 साधन-पूर्ति (Factor Endowment)

साधनों के परिमाणात्मक और गुणात्मक परिवर्तन के आभाव में प्राविधिक परिवर्तन एक जटिल समस्या है। यह परिवर्तन धीमी गति से हो सकता है। अतः किसी भी देश में प्राविधि के चुनाव में वर्तमान प्राविधि को ही आधार बनाकर उसमें आवश्यक सुधार करना होगा। तकनीकी परिवर्तन हेतु उस देश में विद्यमान परिस्थितियों को अनदेखा नहीं किया जा सकता फिर भी नियोजित आधार पर तकनीकी प्रगति में शीघ्रता लायी जा सकती है।

2.8.3 प्रौद्योगिक प्राप्ति स्तर (Level of Technological Achievements)

शुम्पीटर का मानना है कि हर अर्थव्यवस्था में उत्पादन विधि प्राविधिक ज्ञान, प्रशिक्षण सुविधाओं , प्राविधिक रीति-रिवाजों का कोई न कोई स्तर तो रहता ही है। विकासशील देशों में इन्हें आवश्यकता के अनुरूप बनाना जरूरी है। इसमें संगठनात्मक परिवर्तन, पुनर्गठन, विकास जरूरी है जो तकनीक चुनाव में सहायता करते हैं।

2.8.4 संस्थागत व्यवस्था (Institutional System)

तकनीक चयन में देश की संस्थागत व्यवस्था भी काफी सहायता करती

है। उस पर रीति-रिवाज, कार्यक्षमता इत्यादि का काफी गहरा असर पड़ता है। अतः आर्थिक और सामाजिक सुधार जरूरी है। इसे क्रियान्वित करने हेतु सक्षम प्रशासन, आवश्यक शिक्षण-प्रशिक्षण, लोगों की मनोवत्ति में परिवर्तन, विकास के प्रति उनके अनुकूल दष्टिकोण और उनकी जागरुकता जरूरी है किन्तु हर देश की शोषण-शक्ति अलग-अलग होती है। अतः विकास परिवतनों की गति को भी उसी के अनुकूल बनाना जरूरी होगा अर्थात् संस्थागत सुधार प्राविधिक चयन में काफी सहायता करते हैं।

संक्षेप में, तकनीक चयन का मूल आधार न्यूनतम लागत पर अधिकतम सामाजिक-आर्थिक कल्याण है अर्थात सामाजिक-आर्थिक लाभ तकनीक चयन की प्रमुख कसौटी है।

2.9 अल्प-विकसित देशों में तकनीक के चयन में व्यवहारिक समस्याएं (Practical Problems in Chosing Technique in Under-developed Countries)

अल्पविकसित देशों में तकनीक के चयन में कई प्रकार की व्यवहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जिनके कारण तकनीक का सही-सही चयन नहीं हो पाता। ये व्यवहारिक कठिनाइयाँ निम्न प्रकार है :

2.9.1 पूँजी का अभाव (Lack of Capital)

इन देशों में पूँजी का अभाव होता है जो सही तकनीक के चुनाव न होने का एक प्रमुख कारण है। इस सीमित पूँजी का सही ढंग से उपयोग भी नहीं हो पाता। नर्क्स के अनुसार तकनीक काफी मँहगी होती है तथा पूँजी के अभाव के कारण मँहगी तकनीक का प्रयोग न होने से विकास प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

2.9.2 साक्षरहीनता (Illiteracy)

नर्क्स के विचार से विकासशील देशों की एक प्रमुख समस्या एक ओर जनसंख्या का आधिक्य (Over Population) है तो दूसरी ओर अधिकांश जनसंख्या का साक्षरहीन होना भी है। इन देशों में यद्यपि एक ओर श्रम की प्रचुरता रहती है किन्तु दूसरी ओर प्रशिक्षित श्रम का घोर अभाव रहता है। साक्षरता एवं तकनीकी प्रशिक्षण के अभाव में लोग नई उत्पादन तकनीक से अवगत नहीं हो पाते जिससे उत्पादन में कमी होने लगती है और श्रम-गहनीय

तकनीक भी सफल नहीं हो पाती।

2.9.3 परम्परागत दष्टिकोण (Traditional Approach)

प्रायः विकास के साथ-साथ परम्परा और रीति रिवाज भी परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु, अल्म-विकसित देशों में इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिये इन देशों में नई-नई तकनीकों के प्रयोग में काफी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती रहती हैं जिससे इन देशों में जनता का दष्टिकोण आधुनिक विकास के अनुकूल नहीं हो पाता।

2.9.4 प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक संस्थाएं (Adverse Socio-Economic Institutions)

अल्प-विकसित देशों में तकनीक के चुनाव में एक प्रमुख समस्या यह है कि यहाँ सामाजिक आर्थिक संस्थाएं प्रतिकूल होती हैं। इन देशों में जाति-व्यवस्था, संप्रदायवाद, भू-स्वामित्व की प्रणाली, अनार्थिक जोत आदि जैसी विभिन्न प्राचीन परम्पराओं का प्रचलन होता है।

2.9.5 प्रशिक्षित कारीगरों का अभाव (Lack of Trained Workers)

नवीन अनुसन्धान के लिये प्रशिक्षित एवं योग्य व्यक्तियों तथा भारी पूँजी निवेश की जरूरत होती है। जबकि विकासशील देशों में इनका काफी अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन स्तर में अपेक्षित वद्धि नहीं हो पाती।

2.9.6 जनसंख्या-विस्फोट (Population Explosion)

इन देशों में प्रायः जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के कारण नई-नई तकनीक का प्रयोग जटिल हो जाता है। विकासशील देशों में पूँजी की कमी के कारण तकनीक का चयन कठिन हो जाता है।

2.9.7 तकनीक के शीघ्र अप्रचलित होने की समस्या (Problem of Quick Obsolesence of Technique)

आज ज्ञान-विज्ञान और तकनीक में बहुत जल्दी-जल्दी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं जिससे नई तकनीक बहुत जल्दी अप्रचलित हो जाती है। अधिकांश अवस्थाओं में जब तक कोई नई तकनीक विकासशील देशों तक पहुँचती है तब तक वह विकसित देशों में पुरानी (अप्रचलित) हो जाती है।

2.9.8 विरोध (Opposition)

इन देशों में तकनीक चयन की एक महत्वपूर्ण समस्या यहाँ नये विकास कार्यक्रमों तथा उत्पादन की नई प्राविधियों का निहित स्वार्थों द्वारा प्रायः कड़ा विरोध किया जाना भी है जिससे सही चयन में बाधा उत्पन्न होती है।

इस तरह विकासशील देशों में पाई जाने वाली उपरोक्त कठिनाइयों के परिणामस्वरूप यहाँ तकनीक चयन काफी कठिन हो जाता है।

2.10 सारांश

एक विकासशील अर्थव्यवस्था के समस्त प्रायः यह चुनौती बनी रहती है कि विकास की गति को तीव्र करने के लिये उपलब्ध विभिन्न संसाधनों जैसे उपलब्ध सामग्री, वित्तीय एवं मानवीय संसाधन का सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार से किया जाय। इन देशों में प्रायः श्रम की प्रचुरता किन्तु पूँजी की दुर्लभता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन की तकनीक के ऐ ऐसे स्वरूप का चयन किया जाना चाहिये जो देश में उपलब्ध उत्पादन साधनों के अनुपात को ध्यान में रखते हुये अधिकतम प्रतिफल सम्भव करा सके। वास्तव में, एक प्रभावशाली तकनीक वह मानी जायेगी जो कम लागत पर अधिक उपज प्रदान करे अथवा राष्टीय आय को अधिकतम कर सके।

तकनीकों के चुनाव की समस्या किसी विशिष्ट परियोजना अथवा उद्यम के लिये संयोगों (Combinations) के प्रकार को निर्दिष्ट करती है। किसी विशेष स्थिति में चुना गया संयोग तकनीक के रूप को बताता है। अन्तिम चुनाव श्रम-गहनीय तकनीक तथा पूँजी-गहनीय तकनीक मं से करना होता है। श्रम-गहनीय तकनीक से तात्पर्य ऐसी उत्पादन तकनीक से है जिसमें श्रम की अधिक मात्रा व पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है जबकि पूँजी-गहनीय तकनीक के अन्तर्गत पूँजी की अधिक मात्रा को श्रम की कम मात्रा के साथ मिला दिया जाता है।

ऐसी स्थिति में यक्ष प्रश्न सामने आता है कि एक विकासशील देश में किस तरह इन दोनों तकनीकों के बीच चयन किया जाय। वास्तव में दोनों दष्टिकोण एक दूसरे से नितान्त भिन्न नहीं है। श्रम -गहनीय तकनीकों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार बढ़ाने में सहायक होता है जबकि पूँजी-गहनीय तकनीक कें अपनाने से पूँजी निर्माण की दर बढ़ती है

और दीर्घकाल में उत्पादन क्षमता तथा रोजगार अधिकतम होते हैं।

परन्तु विकासशील देशों में श्रम-गहनीय तकनीक तथा पूँजी-गहनीय तकनीक में से चुनाव करते समय साधनों की उपलब्धता उनकी उत्पादन की सापेक्ष लागत, समय की विभिन्न अवधियों में रोजगार, तथा आय, बचत एवं निवेश पर प्रभाव आदि विभिन्न तत्वों पर विचार कर लिया जाना चाहिये। निष्कर्षतः रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने, वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने तथा स्फीतिकारी एवं भुगतान-शेष के दबावों को यथासम्भव रोकने के लिये उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (Consumer goods Sector) में श्रम-गहनीय तकनीको का प्रयोग करना चाहिये। आय की वद्धि दर पर 'सतत् तथा चक्रवद्धि प्रभाव' (Continuing and Compounding effects) के लिये पूँजी-गहनीय तकनीक को पूँजी वस्तु क्षेत्र (Capital Goods Sector) तक सीमित रखा जाना चाहिये। विकासशील देशों में अधिकतम सामाजिक कल्याण और तीव्रतम विकास, तथा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन दोनों पर ध्यान दिया जाना चाहिये और इसके लिये दोनों तकनीकों का यथासम्भव प्रयोग करना चाहिये।

2.11 उपयोगी पुस्तकें

1. आर्थिक विकास एवं नियोजन—एस०पी० सिंह, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली।
2. आर्थिक नियोजन—टी० आर० शर्मा एवं जे०सी० वार्ष्णेय, साहित्य भवन, आगरा।
3. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन—एम०एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, नई दिल्ली।
4. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन—मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा० लि०, दिल्ली।
5. Advanced Economic Theory—H.L. Ahooja, S. Chand & Co. Pvt. Ltd., Delhi
6. The Economics of Development and Planning—M.L. Jhingan, Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi

2.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. एक विकासशील अर्थव्यवस्था में उत्पादन की "श्रम-गहनीय" तथा "पूँजी-गहनीय" तकनीक के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दीजिये।
2. "विकासशील अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति हेतु श्रम-गहनीय तकनीक पूँजी-गहनीय तकनीक की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है।" आलोचात्मक व्याख्या कीजिये।
3. एक विकासशील अर्थव्यवस्था में उत्पादन तकनीक के चयन की समस्या का परीक्षण कीजिये।
4. उत्पादन की तकनीकों के चयन को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिये।
5. "आर्थिक दष्टि से उन्नत देशों की तरह पूँजी की गहनता की न तो अपेक्षा करनी चाहिये और न ही उसे अनुमति देनी चाहिये।" विवेचना कीजिये और अल्पविकसित देशों में तकनीकों के चयन पर अपने तर्क प्रस्तुत कीजिये।

इकाई-3 सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण (Social Cost-Benefit Analysis)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 सामाजिक लागत–लाभ विश्लेषण का आशय

3.2 सामाजिक लागत–लाभ विश्लेषण का उद्देश्य

3.3 लागत–लाभ विश्लेषण की कसौटियाँ

3.3.1 वर्तमान मूल्य कसौटी

3.3.2 प्रतिफल की आन्तरिक दर कसौटी

3.4 लाभों के आधार पर मूल्यांकन

3.4.1 वास्तविक एवं नाम मात्र का लाभ

3.4.2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ

3.4.3 भौतिक एवं अभौतिक लाभ

3.5 लागतों के आधार पर मूल्यांकन

3.5.1 परियोजना लागतें

3.5.2 सम्बद्ध लागतें

3.5.3 वास्तविक और अवास्तविक लागतें

3.5.4 प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागतें

3.6 लागतों की गणना करना

3.7 लागत–लाभ विश्लेषण की सीमाएँ

3.7.1 लागत निर्धारण में कठिनाइयाँ

3.7.1.1 आधारभूत असन्तुलनों की उपस्थिति

3.7.1.2 तकनीक सम्बन्धी कठिनाई

3.7.1.3 असामान्य अथवा विचित्र लागतें

3.7.1.4 अन्य कठिनाइयाँ

3.7.2 लाभ निर्धारण में कठिनाइयाँ

3.7.2.1 पर्याप्त एवं शुद्ध आँकड़ों का अभाव

3.7.2.2 अनिश्चितता का तत्व

3.7.2.3 बाह्य बचतों सम्बन्धी कठिनाई

3.7.2.4 प्राप्त लाभों का विचित्र स्वरूप

3.7.2.5 दोहरी गणना की कठिनाई

3.7.3 मनमानी बट्टा दर

3.7.4 संयुक्त लाभों एवं लागतों की उपेक्षा

3.7.5 विकल्प लागत की उपेक्षा

3.7.6 बाह्यताएँ

3.8 लागत–लाभ विश्लेषण विधि का महत्व

3.9 लागत–लाभ विश्लेषण का भारत में प्रयोग

3.10 सारांश

3.11 उपयोगी पुस्तकें

3.12 सम्बन्धित प्रश्न

3.13 प्रश्नोत्तर

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- सामाजिक लागत–लाभ विश्लेषण को परिभाषित कर सकेंगे;
- सामाजिक लागत–लाभ विश्लेषण की कसौटियों की पहचान कर सकेंगे;
- किसी परियोजना के लाभों के आधार पर किये जाने वाले मूल्यांकन के संदर्भ में लाभों के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कर सकेंगे;
- किसी परियोजना के लागतों के आधार पर किये जाने वाले मूल्यांकन के संदर्भ में लागतों के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कर सकेंगे;
- लागत–लाभ विश्लेषण की विभिन्न सीमाओं की पहचान कर सकेंगे;
- लागत–लाभ विश्लेषण विधि की व्यवहारिक उपयोगिता एवं भारत

में उसके अनुप्रयोग का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण का आशय

सामाजिक दष्टिकोण से परियोजनाओं (Projects) के मूल्यांकन के लिये लागत–लाभ विश्लेषण सबसे उपयुक्त तथा सर्वमान्य तरीका है। यह विश्लेषण परियोजना मूल्यांकन के लिये सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं उपयोगी कसौटी भी है। यह योजना प्राधिकरण के लिये इस बात में सहायक है कि वह परियोजनाओं के लाभों और लागतों के वर्तमान मूल्यों के बीच के अन्तर को अधिकतम सके अनुकूलतम साधन आबंटन (Optimum Resource Allocation) उपलब्ध करने के लिए सही निवेश निर्णय कर सके। इसमें लाभों तथा लागतों के परिगणन, तुलना एवं मूल्यांकन शामिल हैं। इसका अभिप्राय है कि परियोजना में शामिल होने वाली लागतों के मुकाबले प्रतिफलों का मूल्यांकन करना। वास्तव में, लागत–लाभ विश्लेषण का अर्थ किसी एक नीति के सामाजिक लाभों तथा अलाभों को एक सामान्य मुद्रा इकाई में परिमाणित तथा वर्णित करना है।

3.2 सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण का उद्देश्य

सामाजिक लागत–लाभ विश्लेषण का उद्देश्य फलन शुद्ध सामाजिक लाभों (Net Social Benefits) को स्थापित करना है। यह उद्देश्य फलन इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

Net Social Benefits (NSB) = Benefits — Costs,

जहाँ लाभों एवं लागतों को किसी सामान्य मुद्रा इकाई में वास्तविक बाजार कीमतों के बजाय आगतों और निर्गतों (Inputs and Outputs) की छाया अथवा लेखांकन कीमतों में मापा जाता है।

3.3 लागत-लाभ विश्लेषण की कर्साटियाँ (Criteria for cost-Benefit Analysis)

U.S. Sub-Committee on Benefits and Costs ने लागत लाभ की चार कसौटियों का विवेचन किया है। वे है : B - C, B - C/I, $\Delta B / \Delta C$ और B/C, जहाँ B एवं C क्रमशः लाभों एवं लागतों को व्यक्त करते हैं, I प्रत्यक्ष निवेश को तथा Δ वद्धि अथवा सीमान्त (Incremental or marginal) को व्यक्त

करता है।

इसमें से B - C/I फार्मूला अर्थव्यवस्था के एक विषेष निवेश पर कुल वार्षिक प्रतिफलों को निर्धारित करने के लिये होता है, बिना यह विचार किये कि यह किसको प्राप्त होते हैं। यहाँ I में निजी निवेश शामिल नहीं होता जो परियोजना से लाभ प्राप्त करने वालों को खर्च करना पड़ता है, जैसे कि एक सिंचाई परियोजना से कषकों को अतः यह कसौटी संतोषजनक परिणाम नहीं देगी।

$\Delta B / \Delta C = 1$ की कसौटी ऐसी परियोजना के आकार को निर्धारित करने के लिये होती है जो पहले से ही चुन ली गई है न कि परियोजना को चुनने के लिये।

जबकि B - C वाली कसौटी अपनाने से सदैव बड़ी परियोजना को लाभ होता है तथा यह छोटी एवं मध्यम आकार की परियोजनाओं के लिये कम लाभदायक है। अतः यह कसौटी B तथा C के अधिकतम अन्तर के आधार पर परियोजना के पैमाने को निर्धारित करने में सहायक हो सकती हैं

परन्तु परियोजना मूल्यांकन की सबसे अच्छी और विश्वसनीय कसौटी B/C है। यदि $B/C = 1$ है तो परियोजना सीमान्त होती है। केवल अपनी लागतों को ही पूरा कर रही होती है। यदि $B/C > 1$ है तो लाभ लागतों से अधिक है और परियोजना को चालू रखना लाभदायक होता है। यदि $B/C < 1$ है तो लाभ लागतों से कम हैं तथा परियोजना को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। जितना लाभ–लागत अनुपात अधिक होगा उतनी ही ऊँची प्राथमिकता परियोजना को ही जाएगी। इसलिये $B/C > 1$ वाली परियोजना में निवेश करना लाभदायक होगा।

परन्तु B/C फार्मूला परियोजना के 'काल क्षितिज' (time horizon) को ध्यान में नहीं रखता। वास्तव में भविष्य के लाभ एवं लागतें वर्तमान के लाभ एवं लागतों के बराबर नहीं किये जा सकते। इसलिये परियोजना मूल्यांकन के नियमों के अनुसार भविष्य के लाभों एवं लागतों की कटौती (Discounting) आवश्यक समझी जाती है क्योंकि समाज वर्तमान को भविष्य से अधिमान देता है। इसके लिये अर्थशास्त्रियों ने कई 'निर्णय नियम' या कसौटियाँ प्रकल्पित की हैं। इसके लिये यद्यपि अनेक कसौटियाँ बनाई गयी हैं लेकिन निम्न दो कसौटियाँ ही सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है।

3.3.1 वर्तमान मूल्य कसौटी (The Present Value Criterion)

इसको 'लाभों की शुद्ध वर्तमान मूल्य कसौटी' भी कहते हैं सूत्र के रूप में इसको निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है—

लाभों की वर्तमान मूल्य कसौटी = लाभों का सकल वर्तमान मूल्य — लागत का सकल वर्तमान मूल्य

सूत्रानुसार एक परियोजना सामाजिक दष्टि से तभी लाभदायक होती है जब लाभों का शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य से अधिक हो। चूँकि लाभ एवं लागतों के अन्तर को अधिकतम करने के लिये इस कसौटी में कटौती की सामाजिक दर चाहिये जिसके अनुसार लाभों का शुद्ध वर्तमान मूल्य इस प्रकार होगा—

Present Net Benefit Value = $\left[\frac{B_1}{(1+i)}+\frac{B_2}{(1+i)^2}+\cdots+\frac{B_n}{(1+i)^n}\right]-\left[\frac{C_1}{(1+i)}+\frac{C_2}{(1+i)^2}+\cdots+\frac{C_n}{(1+i)^n}\right]$ —

यहाँ, B1, B2 --- Bn सकल वर्तमान लाभों की और C1, C2 --- Cn सकल वर्तमान लागतों की 1, 2,---n वर्षो की श्रंखलायें (Series) है; और 'i' कटौती की वार्षिक सामाजिक दर (Social rate of discount) है।

उपरोक्त सूत्र के अनुसार केवल उन्हीं परियोजनाओं का चयन किया जाना चाहिये। जिनमें (i) लाभों का शुद्ध वर्तमान मूल्य लागतों के शुद्ध वर्तमान मूल्य से अधिक है; और जहाँ (ii) लाभों के वर्तमान मूल्य का लागतों के वर्तमान मूल्य से अनुपात 1 से अधिक है।

3.3.2 प्रतिफल की आन्तरिक दर कसौटी (The Internal Rate of Return Criterion)

इस कसौटी का सम्बन्ध परियोजना के लाभों तथा लागतों के प्रवाहों में अन्तर्निहित प्रतिफल की प्रतिशत दर से है। प्रतिफल की आन्तरिक दर (r) के आगणन का सूत्र इस प्रकार है—

Internal Rate of Return (r) = $\frac{B_1-C_1}{(1+r)}+\frac{B_2-C_2}{(1+r)^2}+\cdots\cdots+\frac{B_n-C_n}{(1+r)^n}=0$

3.4 लाभों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Benefits)

परियोजना का मूल्यांकन उससे प्राप्त होने वाले लाभों के आधार पर

किया जाता है। यह उस सीमा तक लाभदायक होता है जिस सीमा तक कि लोगों की आय में वद्धि करता है, तथा आय में वद्धि उत्पादन तथा उपभोग में वास्तविक वद्धि द्वारा मापी जाती है। लाभ वास्तविक या नाममात्र और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकते हैं।

3.4.1 वास्तविक एवं नाममात्र का लाभ (Real and Nominal Benefits)

लागत–लाभ विश्लेषण करते समय हमारा सम्बन्ध मुख्य रूप से वास्तविक लाभों से ही होता है। एक नदी घाटी परियोजना के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कषकों को उपलब्ध अतिरिक्त सिंचाई सुविधाओं का लाभ, वास्तविक लाभ माना जायेगा। अगर इन सुविधाओं के प्राप्त करने वालों पर विशेष विकास कर (Betterment Levy) लगा दिया जाय तो लाभ अवास्तविक अर्थात् नाम मात्र को रह जायेंगे। परन्तु यदि वही परियोजना, सिंचाई सुविधाओं में वद्धि करने के अतिरिक्त, प्रति एकड़ भूमि की उत्पादकता बढ़ाती है और अनेक अन्य बाह्य मितव्ययिताएँ उत्पन्न करती है जिससे कषकों की वास्तविक आय बढ़ती है तो उसे 'वास्तविक लाभ' की संज्ञा दी जायेगी।

3.4.2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ (Direct and Indirect Benefits)

प्रत्यक्ष लाभ वे होते हैं जो परियोजना से तुरन्त प्रत्यक्ष तौर से प्राप्त होते हैं। इन्हें ***मुख्य लाभ (Primary Benefits)*** भी कहते हैं। जैसे एक बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजना से बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, जल यातायात का विकास, मत्स्य उद्योग की सम्भावना तथा विद्युत उत्पादन आदि प्रत्यक्ष लाभ माने जायेंगे। किसी परियोजना के प्रत्यक्ष लाभों के मूल्य को बाजार कीमतों तथा/अथवा विकल्प लागतों में अगणित किया जाता है। यदि वस्तु विक्रय योग्य हो तथा प्रतियोगी बाजार की शर्तों को पूरा करती है तो परियोजना से प्राप्त लाभ वस्तु के बेचने से प्राप्त आय के बराबर समझे जाते हैं। यदि वस्तु विक्रय योग्य न हो परन्तु उसका बाजार मूल्य निश्चित किया जा सकता हो जैसे कि सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण के लाभ आदि तो इक्स्टीन का सुझाव है कि ऐसे लाभों का बाजार कीमतों के अनुसार मूल्यांकन करना चाहिये।

फिर भी लाभ निर्धारण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है

क्योंकि नयी परियोजना में भावी कीमत, माँग और उसके उत्पादन की पूर्ति के सही आगणन के सम्बन्ध में अनिश्चितता का तत्व मौजूद रहता है। लाभों की गणना में दूसरी कठिनाई है बाह्य मितव्ययिताओं को निर्धारित करने की। यदि बाह्य मितव्ययिताओं के कारण उत्पादन का विक्रय, औसत लागतों के बजाय सीमान्त लागतों पर होता है, तो हानि होगी। उपभोक्ता से वसूली अथवा सरकारी बजट के माध्यम से इस घाटे को पूरा करने के प्रयत्न लाभ–निर्धारण को अधिक अस्पष्ट बना देंगे। इस प्रकार *प्रो० लुई* के अनुसार—"निवेश के सही शुद्ध सामाजिक लाभ का हिसाब लगाने के लिये सन्देह तथा कुशलता की जरूरत होती है। सरकारों को दिये जाने वाले अंकों में लगभग हमेशाही अतिशयोक्तिपूर्ण आशावाद तथा दुगुनी गणना सम्मिलित रहती है। यदि लागतों का हिसाब लगाते समय, हम श्रम के मूल्यांकन में निम्न–छाया मजदूरी (Low Shadow Wages) का प्रयोग करते हैं, तो लाभों का हिसाब लगाते समय हमें परियोजना को अतिरिक्त श्रेय नहीं देना चाहिये क्योंकि यह बेकारी को घटायेगी। छाया कीमत निर्धारण लागतों पर अथवा लाभों पर लागू किया जा सकता है। परन्तु एक ही मद दोनों में नहीं आनी चाहिये। पुनः वार्षिक मूल्यों एवं पूँजी मूल्यों को इकट्ठे नहीं जोड़ना चाहिये।" परन्तु परियोजना के लाभों से उत्पन्न होने वाली छाया कीमतों में परिवर्तनों के सम्बन्ध में पूर्वकथन करना कठिन है। छाया कीमतों का व्यवहार शीघ्र प्रतिफल, श्रम–गहन, हल्की पूँजी तथा आयात परियोजनाओं के अनुकूल हो सकता है जिससे दीर्घकालीन विकास परियोजनाओं की स्थापना को हानि पहुँच सकती है।

अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect Benefits) परियोजना की वस्तु या सेवा से प्राप्त प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त, वस्तु या सेवा को न प्रयोग करने वालों को बहुत से अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं जो परियोजना के सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखने होते हैं। उदाहरणार्थ, भाखड़ा–नाँगल परियोजना के निर्माण से हजारों लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। भाखड़ा बाँध तथा नाँगल नगर को सारे देश से जोड़ने वाली रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। इसी प्रकार नई सड़कों का निर्माण हुआ। नांगल नामक एक नया नगर भी बनाया गया जहाँ एक खाद फैक्ट्री तथा भारी पानी प्लांट की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं, अस्पताल आदि सेवाओं द्वारा उस नगर तथा उसके आस–पास गाँवों को इनके लाभ प्राप्त हो रहे हैं।

बाह्य मितव्ययिताओं में जहाँ परियोजना के निर्माण के समय उस क्षेत्र तथा उसके आस–पास के इलाके में अर्द्ध एवं खुली बेरोजगारी में कमी होती है वहाँ लोगों में दक्षता–निर्माण होती है क्योंकि अनेक व्यक्ति रोजगार के साथ–साथ नए काम–धन्धें सीखते हैं।

फिर एक नदी घाटी परियोजना से बाढ़ नियंत्रण एवं सिंचाई सुविधाएँ प्राप्त होने से कषकों में जो जोखिम एवं अनिश्चितता की भावना समाप्त होती है वह भी परियोजना के अप्रत्यक्ष लाभ है। परियोजना से प्राप्त होने वाले अभौतिक (Intangible) लाभ की अप्रत्यक्ष लाभों में सम्मिलित होते हैं भाखड़ा–नांगल का दश्यात्मक सौन्दर्य, उसका पर्यटन स्थान बनना तथा उसका मनोरंजनात्मक मूल्य जैसा कि *प्रो० ब्रूटन* के लक्ष्य किया है— "परियोजना मूल्यांकन को चाहिये कि निवेश की दर, जनसंख्या की वद्धि दर लोगों द्वारा कुशलता तथा प्रबन्धात्मक क्षमता की उपलब्धि पर परियोजना के प्रभावों का विचार करे।" ये सब ऐसे अप्रत्यक्ष लाभ अथवा पार्श्व प्रभाव हैं जो प्रत्यक्ष लाभों से न्यूनतम से अधिक आकस्मिक रूप में प्राप्त होते हैं।

3.4.3 भौतिक तथा अभौतिक लाभ (Tangible and Intangible Benefits)

परियोजना से भौतिक तथा अभौतिक लाभ भी उत्पन्न हो सकते हैं। भौतिक लाभ वे होते हैं, जिनको मुद्रा में मापा जा सकें, जबकि अभौतिक लाभों को मुद्रा में मापा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिये भाखड़ा–नांगल परियोजना से प्राप्त होने वाले लाभ भौतिक हैं और उन्हें मापा जा सकता है। अभौतिक लाभ व्यक्तिगत मूल्यन में शामिल हो जाते हैं, परन्तु जिनका न तो बाजार होता है और न ही कीमत। वे घनात्मक भी हो सकते हैं और ऋणात्मक भी। अभौतिक लाभ के अन्तर्गत भाखड़ा–नांगल का दश्यात्मक सौंदर्य तथा मनोरंजनात्मक मूल्य आदि है, जबकि बाँध के परिणामस्वरूप लोगों को बिजली, पानी, सिंचाई आदि की प्राप्ति भौतिक लाभ बताती है।

3.5 लागतों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Costs)

परियोजना मूल्यांकन में लागतों को भी आधार माना जाता है। जैसे लाभों के विविध रूप हैं, ठीक वैसे ही लागतें भी विविध प्रकार की हैं।

3.5.1 परियोजना लागतें (Project Costs)

ये परियोजना के निर्माण, रख–रखाव तथा चलाने के लिये प्रयोग किये गये साधनों के पुरस्कार या मूल्य होते हैं। ये श्रम, पूँजी, मध्यवर्ती वस्तुओं, प्राकृतिक साधनों, विदेशी विनिमय आदि की लागतों से सम्बद्ध होती है।

3.5.2 सम्बद्ध लागतें (Assocated Costs)

ये ऐसी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य होते हैं जिनकी आवश्यकता परियोजना की तत्काल वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्माण के लिये पड़ती है। ये लागतें परियोजना लागतों के अलावा होती है। जैसे, किसान द्वारा उत्पादित की गई सिंचित फसल की लागत, जो उसके पानी पर किये गये खर्च से भिन्न होगी। यही फसल उत्पादित करने की उसकी सम्बद्ध लागत होगी।

3.5.3 वास्तविक और मुद्रा लागतें (Real and Money Costs)

लागतें वास्तविक या मुद्रा भी हो सकती हैं। अगर एक क्षेत्र के विकास के लिये उसके नागरिकों से ही विशेष कर के रूप में धन प्राप्त किया जाय जिससे कि सड़कों आदि का निर्माण हो सके तो यह मुद्रा लागत का उदाहरण है। क्योंकि लोगों से मुद्रा ब्लाक समिति को हस्तान्तरित कर दी जाती है, इसलिये लोगों को कोई वास्तविक त्याग नहीं करना पड़ता, अतः इसे अवास्तविक लागत भी कहते हैं। इसके विपरीत अगर उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा सड़क निर्माण के लिये 'श्रम–दान' किया जाय तो इसे वास्तविक लागत कहेंगे।

3.5.4 प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागतें (Direct and Indirect Costs)

इन्हें प्राथमिक एवं द्वितीयक लागतें (Primary and secondary costs) भी कहा जाता है। लागत–लाभ विश्लेषण में हमारा सम्बन्ध प्राथमिक लागतों से अधिक रहता है किसी परियोजना के निर्माण व संचालन करने के लिये जो धन व्यय किया जाता है उसे प्रत्यक्ष लागत कहते हैं। इसके विपरीत उसी परियोजना पर काम करने वाले श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार की परोक्ष सुविधायें जैसे स्कूल, आवास, अस्पताल आदि के निर्माण के लिये किये जाने वाला व्यय सहायक लागत के अन्तर्गत सम्मिलित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लागतें अप्रत्यक्ष लागतों में सम्मिलित की जाती हैं जिनकों परिमाणात्मक रूप में प्रत्यक्षतया मापा नहीं जा सकता। वे परियोजना

के निर्माण तथा कार्यकरण से उत्पन्न होने वाली असुविधायें तथा अन्य बुरे प्रभाव हो सकते हैं। ये बाह्य अमितव्ययितायें कही जाती है जो परियोजना की सामाजिक लागतें होती है। जब परियोजना द्वारा उत्पन्न असुविधाओं को दूर करने के लिये लोग व्यय करते हैं ताकि वे पहले वाली अवस्था में आ सकें तो वे व्यय अप्रत्यक्ष लागतों में ही सम्मिलित किये जाते हैं।

3.6 लागतों की गणना करना (Computing the Costs)

(i) सर्वप्रथम वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन व उपभोग की मात्रा सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त किये जाते हैं। (ii) तब इन वस्तुओं का मौद्रिक मूल्य ज्ञात किया जाता है। (iii) मौद्रिक मूल्यों की विभिन्न बाजार मूल्यों से तुलना की जाती है। (iii) मौद्रिक मूल्यों की विभिन्न बाजार मूल्यों से तुलना की जाती है ताकि मुद्रा–स्फीतिक अथवा मुद्रा–विस्फीतिक दबाव का अनुमान हो सके। (iv) उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं के बारे में यह जानकारी की जाती है कि वे कितने काल तक कार्यशील बनी रहेगी। (v) अन्त में वार्षिक लागत निकालने के लिये परियोजना की कुल लागत को, पूँजीगत सम्पत्तियों की सम्भावित काल तक कार्य करने की क्षमता द्वारा विभाजित कर दिया जाता है। (vi) ठीक इसी प्रकार वार्षिक लाभ निकालने के लिये किसी परियोजना से प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष लाभों का मौद्रिक मूल्य निकाला जाता है और उसमें से सम्बन्धित वार्षिक लागत घटा दी जाती है।

इस प्रकार परियोजना मूल्यांकन के लिये हमें केवल मुख्य लाभ व मुख्य लागत की गणना करनी होती है। अगर कुल लाभ लागत से अधिक होते हैं तो परियोजना को छाँट लिया जाता है अन्यथा नहीं।

3.7 लागत-लाभ विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations)

परियोजना से प्राप्त होने वाले वर्तमान एवं भावी लाभों और इन लाभों को प्राप्त करने में उठाई जाने वाली लागतों को मापने से लागत–लाभ विश्लेषण की सीमाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

3.7.1 लागत-निर्धारण में कठिनाइयाँ (Difficulties in Cost-assessment)

लागत–निर्धारण सम्बन्धी मुख्य कठिनाइयाँ इस प्रकार है—

3.7.1.1 आधारभूत असन्तुलनों की उपस्थिति (Fundamental Disequalibrium)

एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों की माँग व पूर्ति सन्तुलिन अवस्था में नहीं होती जिसके कारण साधनों की कीमत का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उदाहरणर्थ, श्रम की पूर्ति उसकी माँग की अपेक्षा अधिक होने पर मजदूरी की दर सामान्य स्तर सेकम होने लगती है। इसी प्रकार माँग की अपेक्षा पूँजी की पूर्ति कम होने पर ब्याज की दरें अनावश्यकरूप से ऊँची पायी जाती हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये *प्रो० टिनबर्गन, एच० बी० चेजरी* तथा *के० एच० क्रेचमर* ने छायामूल्यों (Shadow prices) अथवा 'लेखांकन कीमतों' (Accounting prices) के प्रयोग का सुझाव दिया है।

3.7.1.2 तकनीक सम्बन्धी कठिनाई

दूसरी कठिनाई तकनीक की विभिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। प्रत्येक उत्पादन कार्य के लिये एक ही प्रकार की तकनीक का चुनाव नहीं किया जा सकता। यही नहीं, कभी–कभी एक ही परियोजना के विभिन्न स्तरों (Stages) के लिये अलग–अलग तकनीकों का प्रयोग करना पड़ता है, ऐसी हालत में उत्पादन की लागत का निर्धारण करना कठिन हो जाता है।

3.7.1.3 असामान्य अथवा विचित्र लागतें

वास्तविक लागत जैसे सड़क का निर्माण करते समय किया गया 'श्रमदान' आदि का ठीक–ठीक पता लगाना बहुत कठिन कार्य है।

3.7.1.4 अन्य कठिनाइयाँ

इसके अतिरिक्त लागत का निर्धारण करते समय कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं, जैसे–(i) मूल्यों में वद्धि; (ii) कच्चे माल का अल्पकालिक अभाव; (iii) विदेशी विनिमय की कठिनाइयाँ तथा (iv) उत्पादन के साधनों का अधिक्य अथवा अभाव।

3.7.2 लाभ निर्धारण में कठिनायाँ (Difficulties in Benefit Assessment)

प्रो० लुई का कहना है कि किसी परियोजना की लागत की अपेक्षा लाभों का गणना कार्य अधिक जटिल है क्योंकि प्रथम, अनिश्चितता का तत्व

अधिक होने के कारण और द्वितीय बाह्य मितव्ययिताओं के मूल्यांकन की जटिलता के कारण। लाभ निर्धारिण की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित है—

3.7.2.1 पर्याप्त एवं शुद्ध आँकड़ों का अभाव

लाभ की गणना करने के लिये वाँछित आँकड़े पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाते। जो कुछ थोड़े बहुत आँकड़े प्राप्त भीहोते हैं उनकी शुद्धता पर संदेह बना रहता है।

3.7.2.2 अनिश्चितता का तत्व

परियोजना के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं का भविष्य में मूल्य क्या होगा? उसकी माँग व पूर्ति की दशा क्या होगी? इन तत्वों के बारे में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है। काल्पनिक आधार पर निकाले गये मूल्य कभी–कभी वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं।

3.7.2.3. बाह्य बचतों सम्बन्धी कठिनाई

अगर बाह्य बचतों के उपलब्ध होने के कारण प्राप्त उपज को बाजार में, औसत लागत के विपरीत सीमान्त लागतर बेचा जा रहा है तो आवश्यक रूप से हानि होगी। अगर इसको पूरा करने के लिये सरकार जनता अथवा उपभोक्ताओं पर विशेषकर (Special Levy) लगा दे तो ऐसी हालत में लाभ की गणना का कार्य और भी अधिक भ्रामात्मक एवं कठिन हो जायेगा।

3.7.2.4 प्राप्त लाभों का विचित्र स्वरूप

परियोजना से प्राप्त होने वाले कुछ लाभ विचित्र प्रकति के होते हैं जिन्हें प्राप्त तो किया जा सकता है परन्तु उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये सार्वजनिक उद्यान या पार्क से लाभ, शहरों में जलपूर्ति का लाभ आदि की गणना सम्भव नहीं है।

3.7.2.5 दोहरी गणना की कठिनाई

कभी–कभी प्राप्त होने वाले लाभों की दोहरी गणना कर ली जाती है। जिससे मूल्यांकन का कार्य और भी असंदिग्ध होने लगता है। इतना ही नहीं, प्रोजेक्ट के लाभ सम्बन्धी आँकड़े सरकार के पास जान–बूझकर बढ़ा–चढ़ा कर भेजे जाते हैं ताकि संचालकों की स्थिति दोषरहित बनी रहे।

3.7.3 मनमानी कटौती दर (Arbitrary Discount Rate)

किसी भी परियोजना के लिये पूर्वकल्पित सामाजिक कटौती दर मनमानी हो सकती है। यदि लाभों के शुद्ध वर्तमान मूल्य को आगणित करने के लिये मनमानी ऊँची दर लागू की जाती है तो परियोजना के दीर्घकालिक प्रभावों को सही तौर से आगणित नहीं किया जा सकता। यह तर्क परियोजना के प्रतिफल की आन्तरिक दर पर भी लागू होता है।

3.7.4 संयुक्त लाभों एवं लागतों की उपेक्षा (Neglects Joint Benefits and Costs)

लागत–लाभ का विश्लेषण परियोजना में उत्पन्न होने वाले संयुक्त लाभों एवं संयुक्त लागतों की समस्याओं की उपेक्षा करता है। जैसे कि हमने पहले देखा कि एक नदी घाटी परियोजना के अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं जिनका अलग–अलग आगणन और मूल्यांकन करना कठिन होता है। इसी प्रकार ऐसी परियोजना में संयुक्त लागतें पाई जाती हैं जिसको अलग–अलग नहीं किया जा सकता और न ही उनकी गणना की जा सकती है।

3.7.5 विकल्प लागत की उपेक्षा (Ignores Opportunity Cost)

लागत–लाभ विश्लेषण विकल्प लागत की समस्या की उपेक्षा करता है। ग्रिफिन और एनोस ने इस समस्या का हल सुझाया है कि यदि सभी कीमतें विकल्प लागतों को व्यक्त करें तो सभी परियोजनायें जिसमें $B/C > 1$ हो, चुनी जाएँगी।

3.7.6 बाह्यताएँ (Externalties)

इसी प्रकार बड़ी परियोजनाओं के बाह्य प्रभाव होते हैं जिनकी गणना करना एक कठिन काम होता है। एक नदी घाटी परियोजना की तकनीकी और धन सम्बन्धी बाह्यताएँ हो सकती हैं। जैसे आस–पास के अन्य स्थानों की भूमि की उत्पादकता पर बाढ़ नियंत्रण उपायों अथवा बाँध के प्रभाव। एक परियोजना के ऐसे बाह्य प्रभावों का आगणन करना कठिन है।

संक्षेप में, परियोजना के सन्दर्भ में सम्भावित लाभों की गणना का कार्य अत्यन्त कठिन व तकनीकी योग्यता से भरा हुआ है।

3.8 लागत-लाभ विश्लेषण विधि का महत्व (Importance of Cost-Benefit Analysis)

सिंचाई तथा परिवहन परियोजनाओं में निवेश के मूल्यांकन के लिये लागत–लाभ विश्लेषण तकनीक का विकास अमरीका में किया गया। अल्पविकसित देशों में परियोजनायें अक्सर तदर्थ (Adhoc) आधार पर चुनी जानी है तथा लागतों और लाभों के रूप में उनके मूल्यांकन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। क्योंकि सभी परियोजनायें विकास के उद्देश्य से सम्बद्ध होती है, इसलिये उनका उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना है।

लागत–लाभ विश्लेषण के निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—

1. यह विश्लेषण कषि उत्पादन बढ़ाने हेतु सिंचाई और अन्य साधनों के बीच, जैसे उद्देश्यों को पूरा करने के लिये, वैकल्पिक उपायों की सीमान्त प्रभावशीलता में भेदों को कम करने में सहायता करना है;
2. यह एक उद्देश्य को पूरा करने की लागतों को त्याग किये गये लाभों के साथ दूसरे लाभों के रूप में मूल्यांकन करने में सहायता करता है।
3. इसका राजनैतिक लाभ भी है कि किसी एक विशेष समूह के लिये अपने स्वार्थो हेतु परियोजना योजनाओं को विकत करना कठिन होगा, यदि विशिष्ट परियोजनाओं का आयोजन करने से पूर्व मापदण्ड निशिचित करते समय इसकी समाज के अन्य समूहों (Groups) के साथ स्वीकति प्राप्त कर ली गयी थी।
4. लागत – लाभ विश्लेषण के प्रयोग का एक अन्य लाभ यह हैकि यह विकेन्द्रीकत निर्णय करने का अवसर देता है। यदि सार्वजनिक क्षेत्र छोटा भी हो तो भी कोई एकल प्राधिकरण अनेक विशिष्ट परियोजनाओं के बारे में निर्णय लेने के लिये तकनीकी सूचना के विशाल समूह के संचालन की आशा नहीं रख सकता है। प्रत्येक परियोजना की लागतों और लाभों की गणना करने के लिये, हर एक के लिये अलग प्राधिकरण की आवश्यकता होती है। इसलिये विकेन्द्रीकत निर्णय करने की जरूरत है।
5. लागत लाभ विश्लेषण परियोजनाओं की वांछनीयता का मूल्यांकन करने का एक व्यवहारिक ढंग है जहाँ भविष्य में तथा निकटतम भविष्य में अप्रत्यक्ष प्रभावों की ओर देखने के अर्थ में दीर्घ दष्टिकोण

लेना, और जहाँ कई प्रकार के पार्श्व प्रभावों को बहुत व्यक्तियों, उद्योगों, क्षेत्रों आदि के लिये स्वीकार्य करने के अर्थ में एक व्यापक दृष्टिकोण लेना महत्वपूर्ण होता है। अतः विकासशील देशों में परियोजना मूल्यांकन के लिये लागत – लाभ विश्लेषण एक बहुत लाभदायक औजार है।

3.9 लागत - लाभ विश्लेषण का भारत में प्रयोग (Use of Cost Benefit Analysis in India)

भारत में परियोजना मूल्यांकन का कार्य अधिकांशतः बहुउद्देश्यीय नदी–घाटी योजनाओं के क्षेत्र में ही किया गया है। निर्माणकारी उद्योग, कषि व यातायात सम्बन्धी क्षेत्रों में मूल्यांकन का कार्य काफी कम किया गया है। लागत–लाभ विश्लेषण का भारत में प्रथम नियमित प्रयास *प्रो० डी० आर० गाडगिल* द्वारा महाराष्ट्र में गोदावरी और प्रवरा नहर व्यवस्थाओं के लिये किया गया। 1958 में *प्रो० गाडगिल* के अधीन योजना आयोग की रिसर्च प्रोग्राम कमेटी ने छः सिंचाई परियोजनाओं के लाभ लागत अनुपातों का अध्ययन किया। वे हैं : (i) पश्चिम बंगाल में दामोदर नहर; (ii) बिहार में त्रिवानी नहर; (iii) पश्चिम बंगाल में दामोदर नहर; (iv) राजस्थान में गँग नहर; (v) तमिलनाडु में कावेरी मैठुर परियोजना; (vi) आन्ध्र प्रदेश में निजाम सागर परियोजना। दूसरा प्रयास गोखले अनुसंधान केन्द्र के प्रतिनिधि डा० सोवानी तथा डा० रथ द्वारा हीराकुंड बाँध के आर्थिक पक्षों का मूल्यांकन करना था। इसके अलावा डा० बलजीत सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश में शारदा नहर परियोजना, डा०ए० एस० चरण द्वारा राजस्थान में पश्चिमी बानस परियोजना तथा डा० राम नारायण द्वारा हरियाणा में जुई लिफ्ट सिंचाई परियोजना का लागत – लाभ विश्लेषण किया जा चुका है।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय यह है कि अब तक किये गये सभी अध्ययनों में लागत–लाभ तकनीक के प्रयोग के बारे में कोई समानता नही पाई जाती। इनमें से कुछ अध्ययन 'पूर्व और पश्चात' (Before and After) तकनीक या 'साथ और बिना' (with or without) तकनीक के आधार पर किये गये हैं। 'पूर्व और पश्चात तकनीक' में परियोजना के शुरू होने से पहलेके लाभों तथा लागतों की तुलना, उसके शुरू होने के बाद के लाभों तथा लागतों से की जाती है। 'साथ और बिना तकीनक' के अन्तर्गत उसी क्षेत्र को सिंचाई सुविधाओं से होने वाले लाभों और लागतों की तुलना, ऐसी सुविधाओं के

बिना होने वाले लाभों तथा लागतों से की जाती है।

सच तो यह है कि भारत जैसे विशाल देश की तमाम विशाल परियोजनाओं बिना परियोजना मूल्यांकन किये हुये चलाई जा रही है। नियोजन की सफलता के लिये परियोजना मूल्यांकन जैसी प्रक्रिया का अपनाया जाना आवश्यक है। मूल्यांकन के अभाव में नियोजन का कार्य राष्ट्रीय साधनों का अपव्यय माना जाता है।

भारत जैसे अल्प विकसित देशों में परियोजना मूल्यांकन की कठिनाइयाँ

लागत – लाभ विश्लेषण का कार्य भारत में अत्यन्त सीमित रहा है जिसके लिये उत्तरदायी कारण निम्नलिखित है—

1. शुद्ध व पर्याप्त मात्रा में समंकों के प्राप्त करने की कठिनाई का बना रहना।
2. भारत की आर्थिक दशाओं में अनिश्चितता का तत्व अधिक है।
3. मूल्यस्तर में निरन्तर वद्धि, विदेशी विनिमय की कठिनाई तथा कच्ची सामग्री के अभाव सम्बन्धी कठिनाइयाँ प्रारम्भ से ही देश में बनी रही हैं जिसके कारण प्रोजेक्ट मूल्यांकन के कार्य पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका।
4. प्रोजेक्ट मूल्यांकन के लिये उच्चस्तरीय तकनीकी ज्ञान व कार्यकुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है जिसका भारत में सर्वथा अभाव देखने में आता है।

3.10 सारांश

सामाजिक दष्टिकोण से परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिये लागत – लाभ विश्लेषण सबसे उपयुक्त व सर्वमान्य तरीका है। इसका अभिप्राय है कि परियोजना में शामिल होने वाली लागतों के मुकाबले लाभों (प्रतिफलों) का मूल्यांकन करना। इसका उद्देश्य फलन शुद्ध सामाजिक लाभों को स्थापित करना है।

$$\text{Net Social Benefit} = \text{Benefits} - \text{Costs}$$

$$(NSB = B - C)$$

जहाँ लाभों और लागतों को किसी सामान्य मुद्रा इकाई में वास्तविक

बाजार कीमतों की बजाय आगतों और निर्गतों की छाया (Shadow) अथवा लेखांकन कीमतों में मापा जाता है।

लाभ – लागत अनुपात (B/C) जितना अधिक होगा अथवा लागत लाभ अनुपात (C/B) जितना कम होगा परियोजना को उतनी ही अधिक प्राथमिकता दी जायेगी।

परियोजना का मूल्यांकन उससे प्राप्त होने वाले लाभों के आधार पर किया जाता है। यह उस सीमा तक लाभदायक होता है जिस सीमा तक कि लोगों की आय में वद्धि करता है, तथा आय में वद्धि उत्पादन तथा उपभोग में वास्तविक वद्धि द्वारा मापी जाती है। लाभ वास्तविक एवं नाममात्र, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तथा भौतिक एवं अभौतिक (मौद्रिक एवं अमौद्रिक) हो सकते हैं।

परियोजना मूल्यांकन में लागतों को भी आधार माना जाता है। जैसे लाभों के विविध रूप है, ठीक वैसे ही लागत भी विविध प्रकार की है— परियोजना लागतें, सम्बद्ध लागतें, वास्तविक और अवास्तविक (नकद) लागते, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागतें आदि।

परियोजना से प्राप्त होने वाले वर्तमान तथा भावी लाभों और इन लाभों को प्राप्त करने में उठाई जाने वाली लागतों को मापने से लागत लाभ विश्लेषण की सीमाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो इस प्रकार है : लागत निर्धारण में कठिनाइयाँ, लाभ निर्धारण में कठिनाइयाँ, मनमाना बट्टा दर, संयुक्त लाभों तथा लागतों की उपेक्षा, विकल्प लागत की उपेक्षा आदि।

लागत लाभ विश्लेषण (परियोजना मूल्यांकन) का भारत में प्रयोग अत्यन्त सीमित रहा है। सच तो यह है कि भारत जैसे विशाल देश की तमाम विशाल परियोजनायें बिना परियोजना मूल्यांकन किये हुये चलाई जा रही है।

3.11 उपयोगी पुस्तकें

1. आर्थिक विकास एवं नियोजन–एस० पी० सिंह, एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली।
2. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन–एम० एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, दिल्ली।
3. आर्थिक नियोजन–टी० आर० शर्मा एवं जे० सी० वार्ष्णेय, साहित्य भवन, आगरा।

4. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन–मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, कोणार्क पब्लिर्शस प्रा० लि०, दिल्ली।

5. The Economics of Development and Planning—M. L. Jhingan, Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.

6. Advanced Economic Theory—H. L. Ahooja, S. Chand and Co. Pvt. Ltd., Delhi.

3.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्ष उत्तरीय प्रश्न

1. लागत लाभ विश्लेषण क्या है? नियोजन में इसका क्या महत्व है?
2. परियोजना मूल्यांकन की एक विधि के रूप में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के महत्व एवं परिसीमाओं का विश्लेषण कीजिये।
3. लागत लाभ विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? इसकी गणना में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन कीजिये।
4. अल्पविकसित देशों के संदर्भ में परियोजना मूल्यांकन की एक विधि के रूप में लागत लाभ विश्लेषण का मूल्यांकन कीजिये। उसकी सीमायें क्या हैं?
5. लागत लाभ विश्लेषण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शुद्ध सामाजिक लाभ बराबर होगा :
   (अ) लाभ + लागत
   (ब) लाभ — लागत
   (स) लाभ ´ लागत
2. यदि किसी परियोजना केलाभों को 'B' से एवं लागतों को से प्रदर्शित किया जाता है, यदि $B/C > 1$ है तो :
   (अ) लागतें लाभ से अधिक हैं
   (ब) लाभ लागतों से अधिक है
   (स) लाभ एवं लागतें दोनों बराबर हैं।

3. किसी भी देश केलिये कौन सी परियोजना सबसे अच्छी होगी :

(अ) $B/C > 1$

(ब) $B/C < 1$

(स) $B/C = 1$

3.13 प्रश्नोत्तर —

1. ब 2. ब 3. अ

इकाई-4 व्यापार चक्र—अवस्थायें (Business Cycles—Phases)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 व्यापार चक्र का आशय

4.3 परिभाषायें

4.4 व्यापार चक्रों की विशेषतायें

4.4.1 प्रमुख विशेषतायें

4.4.2 सहायक विशेषतायें

4.5 व्यापार चक्रों का वर्गीकरण

4.5.1 मुख्य एवं लघु चक्र

4.5.2 निर्माण कार्य चक्र

4.5.3 दीर्घ लहरे

4.6 व्यापार चक्र की अवस्थायें

4.6.1 मन्दी की अवस्था

4.6.2 पुनरुद्धार की अवस्था

4.6.3 पूर्ण रोज़गार की अवस्था

4.6.4 तेजी की अवस्था

4.6.5 अवरोध की अवस्था

4.7 सारांश

4.8 सम्बन्धित पुस्तकें

4.9 सम्बन्धित प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

1 व्यापार चक्रों को परिभाषित कर सकें;

- व्यापार चक्र की विशेषताओं की विवेचना कर सकें;
- व्यापार चक्र के वर्गीकरण की पहचान कर सकें;
- व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण कर सकें;
- सम्बन्धित अवस्था की शर्तों की पहचान कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

पिछले 150 वर्षों में वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं ने उल्लेखनीय प्रगति की है। लेकिन यह कहना सही नहीं होगा कि यह आर्थिक प्रगति सतत, स्थिर एवं समान दर से होती रही है अर्थात यह आर्थिक प्रगति विभिन्न आर्थिक उतार-चढ़ाव के साथ सम्पन्न हुई है। व्यवसाय में समय-समय पर तेजी (सम्पन्नता अथवा समद्धि) एवं मन्दी (अवनति) का चक्र आता रहता है। इन्हीं आर्थिक उतार-चढ़ाव को व्यापार चक्र (Business Cycle) कहते हैं।

4.2 व्यापार चक्र का आशय (Meaning)

व्यापार चक्र एक बहुत ही जटिल समस्या है। व्यापार चक्र से हमारा आशय उत्पादन, आय, रोजगार एवम् कीमतों में अल्पकालीन उतार-चढ़ावों या उच्चावचनों (Fluctuations) से हैं। ऊँची आय, अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार के काल को सम्पन्नता अथवा तेजी का काल (Period of Prosperity or Boom) और कम आय, कम उत्पादन तथा कम रोजगार के काल को मन्दी का काल (Period of Depression or Slump) कहा जाता है। इन उच्चावचनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये विशेष क्रम के साथ तथा नियमित रूप से होते रहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक उतार-चढ़ाव को व्यापार चक्र नहीं कहा जा सकता। यदि किसी विशेष कारण से किसी अर्थव्यवस्था में कभी कोई उतार-चढ़ाव हो जाय तो इसे व्यापार चक्र नहीं कहेंगे। व्यापार चक्र कहलाने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसे उतार-चढ़ाव नियमित रूप से एवं नियमित समयान्तराल में हुआ करें।

4.3 परिभाषायें

आखिर व्यापार-चक्र होता क्या है? व्यापार चक्र की कोई उचित परिभाषा देना सरल कार्य नहीं है। प्रो० डब्लू०सी० मिचेल (W.C. Mitchell) के शब्दों में, "व्यापार चक्रों से आशय संगठित समुदायों की आर्थिक क्रियाओं में होने

वाले उच्चावचनों की श्रंखला से होता है।" (Busines cycles are a series of fluctuations in the economic activities of organised communities) चूँकि यह व्यचापार चक्र है, अतः इसका आशय इन क्रियाओं में होने वाले उतार चढ़ावों से है जो व्यापारिक आधार पर संचालित की जाती हैं किन्तु व्यापार चक्र के अन्तर्गत के उच्चावचन सम्मिलित नहीं किये जाते जिनकी पुनरावत्ति नियमित नहीं होती।

प्रो० जे० एम० कीन्स (J.M. Keynes) ने व्यापार चक्र की व्याख्या करते हुये लिखा है "व्यापार-चक्र उत्तम व्यापार अवधि, जिसमें कीमतों में वद्धि तथा बेरोजगारी के प्रतिशत में गिरावट होती है तथा खराब व्यापार अवधि, जिसमें कीमतों में गिरावट तथा बेरोजगारी के प्रतिशत में वद्धि होती है, का जोड़ होता है।" (A trade-cycle is composed of periods of good trade characterised by rising prices and low unemployment percentages, altering with periods of bad trade characterised by falling prices and high unemployment percentages.) अतः प्रो० कीन्स ने व्यापार चक्र के ऊर्ध्व-बिन्दु (Upswing) एवं अधो-बिन्दु (Downswing) को मापने हेतु दो घटकों पर जोर दिया है—कीमतें एवं बेरोजगारी। संक्षेप में व्यापार चक्र किसी देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं के विस्तार एवं संकुचन का परिचायक होता है (The business—Cycles, in short, is an alternate expansion and contraction in overall busines activities.)

4.4 व्यापार चक्रों की विशेषतायें (Characteristics)

अध्ययन की सुविधा के लिये व्यापार चक्र की विशेषताओं के दो भागों में रखा जा सकता है—प्रमुख विशेषतायें एवं सहायक विशेषतायें।

4.4.1 प्रमुख विशेषतायें (Main characteristics)

व्यापार चक्र की दो प्रमुख विशेषतायें हैं—

(i) सामयिकता (Periodicity)—व्यापार चक्र की एक प्रमुख विशेषता यह है कि व्यापार का उतार-चढ़ाव एक क्रम में चलता है अर्थात् विस्तार एवं संकुचन एक दूसरे के पश्चात् नियमित रूप से मध्यान्तर काल से आते रहते हैं। इसको सामयिक चक्र (Periodic cycle) कहते हैं। प्रो० एस०ई० थमस के अनुसार, " 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के प्रथम भाग में यह अच्छे एवं बुरे

व्यापार का परिवर्तन इस नियमितता से हुआ कि लोगों ने एक व्यापार का साख चक्र मान लिया जिसका काल 7-10 वर्ष तक होता है।"

(ii) समक्रमिकता (Synchronism)—व्यापार चक्र का वरूप समक्रमित होता है अर्थात उस समय देश की सभी फर्मों पर एक जैसा ही रंग चढ़ जाता है। यदि सम्पन्नता काल है तो सभी ुर्मों के लाभ ब़ जाते हैं, यदि मन्दी काल है तो सभी फर्मों पर मन्दी का असर छाया रहता है अर्थात् अच्छे या बुरे काल एक ही समय पर सब उद्योगों में होते हैं। यह फैलने वाली प्रवत्ति किसी एक ही राष्ट्र के निवासियों तक ही सीमित नहीं होती वरन् सम्पूर्ण व्यावसायिक संसार में फैल जाती है। संसार के राष्ट्र इतने अधिक एक दूसरे पर आश्रित है कि एक देश की अच्छी बुरी व्यापारिक दशाएं दूसरे देश के व्यापार में अच्छी या बुरी दशायें उत्पन्न कर देती है। स्पष्ट शब्दों में एक देश में तेजी या मन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा अन्य देशों में पहुँचने की प्रवत्ति होती है।

4.4.2 सहायक विशेषतायें (Secondary Characteristics)

अमेरिकन इकोनॉमिक एसोसिएशन की रिपोर्ट में व्यापार चक्र की निम्नलिखित अन्य विशेषतायें बतायी गयी हैं :—

(i) कृषि के अतिरिक्त शेष उत्पादन तथा कीमतें एक ही दिशा में गतिमान होते हैं।

(ii) उपभोग वस्तुओं तथा अन्यस्थायी वस्तुओं की अपेक्षा पूँजीगत वस्तुओं तथा टिकाऊ वस्तुओं पर किये गये कुल व्यय में उतार-चढ़ाव अधिक होता है।

(iii) कुल विक्रय की अपेक्षा तैयार माल पर किया गया व्यय अधिक घटता बढ़ता है।

(iv) कुल उत्पादन और कुल रोजगार में परिवर्तन में ही मुद्रा की मात्रा और उसकी प्रचलन गति में परिवर्तन होता है।

(v) कृषि पदार्थों की कीमतें लचीली होती हैं किन्तु निर्मित वस्तुओं की कीमतें दढ़ होती हैं।

(vi) लाभ से प्राप्त आय, अन्य स्त्रोतों से प्राप्त आय की अपेक्षा अधिक

घटती-बढ़ती है।

4.5 व्यापार चक्रों का वर्गीकरण (Classification of Business Cycles)

प्रो० जे० ए० ईस्टे (J.A. Estey) ने व्यापार चक्रों का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया है :—

— मुख्य एवं लघु चक्र

— निर्माण कार्य चक्र

— दीर्घ लहरें

4.5.1 मुख्य एवं लघु चक्र (Major and Minor Cycles)

मुख्य चक्रों से अभिप्राय व्यवसायिक क्रियाओं में होने वाले उन उच्चावचनों से है जो क्रमिक संकटों के बीच घटित होते रहते हैं (The fluctuations of business activities occurring between successive crises) अब प्रश्न यह है कि संकट क्या होता है? इस संकट से अभिप्राय व्यवसायिक क्रियाओं में होने वाली उस अवनति से है जो समय-समय पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में होती रहती है। इस प्रकार प्रमुख अवसादों (अथवा व्यापारिक मन्दियों) के बीच समयान्तराल को मुख्य चक्र कहते हैं। इस आधार पर प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो० हैन्सन (Hansen) ने अमरीका में सन् 1837 से 1937 तक की अवधि में 12 मुख्य चक्रों को खोज निकाला है। इस प्रकार प्रत्येक ऐसे चक्र की अवधि 8.33 वर्ष होती है। ऐसे चक्रों की खोज उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी अर्थशास्त्री क्लीमेण्ड जगलर (Clement Juglar) ने की थी। इसलिये इस प्रकार के चक्रों को कभी-कभी 'जगलर चक्र' भी कहा जाता है।

मुख्य चक्र की अवधि में होने वाले व्यवसायिक उत्थान (Business Upswings) में प्रायः छोटे-छोटे अवसाद (Minor downswings) भी घटित होते रहते है। इसी प्रकार मुख्य चक्र की अवधि में होने वाली व्यवसायिक उद्योगपति के दौरान छोट पैमाने पर व्यवसायिक उत्कर्ष (Business up-swing) भी घटित होते रहते हैं। मुख्य चक्रों के अन्तर्गत घटित होने वाले इन अल्पकालीन चक्रों को लघु चक्र कहते हैं। लघु चक्र की औसत अवधि 40 माह होती है। ग्रेट ब्रिटेन एवं अमरीका में ये लघु चक्र वास्तव में क्रियाशील रहे हैं। चूँकि मुख्य चक्र एवं लघु चक्रों के बीच अन्तर प्रथम बार प्रो० जोसेफ

किचिन (oseph Kitchen) ने किया था, अतः लघु चक्रों को कभी-कभी किचिन चक्र भी कहा जाता है।

4.5.2 निर्माण कार्य चक्र (Construction Activities cycles)

इस चक्र से अभिप्राय उस चक्र से है जो निर्माण-कार्य उद्योग से सम्बन्धित होता है। निर्माणकार्य चक्र की अवधि मुख्य चक्र की अवधि की तुलना में अधिक लम्बी होती है। अब यह पता चला है कि निर्माण कार्य उद्योग में भी उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। यही नहीं, इनकी अवधि में भी बहुत कुछ नियमितता पायी जाती है। निर्माण कार्य में भी उत्कर्ष (Upswings) एवं अवनति (Doronswings) घटित होते रहते हैं। निर्माण कार्य चक्र की अवधि 15 से 20 वर्ष तक की होती है। लेकिन इसकी औसत अवधि 18 वर्ष होती है। अमरीका में सन् 1830 से सन् 1934 तक 6 जटिल निर्माण कार्य चक्र घटित हुये थे।

4.5.3 दीर्घ लहरें (Long Waves)

व्यवसायिक क्रियाओं में घटित होने वाले दीर्घ लहरों की खोज, सर्वप्रथम एक रूसी अर्थशास्त्री कोन्द्रातीफ (Kondratieff) ने की भी। यही कारण है कि इन लहरों को कोन्द्रातीफ चक्र कहते हैं। इनकी अवधि 50 से 60 वर्ष तक की होती है। सन् 1780 से सन् 1920 तक की अवधि की साख्यिकीय सामग्री के आधार पर कोन्द्रातीफ ने ब्रिटेन एवं फ्रांस में ऐसे 2½ दीर्घकालीन चक्रों की खोज की थी। इस प्रकार के प्रत्येक पूर्ण चक्र की अवधि 50 वर्ष थी।

4.6 व्यापार चक्र की अवस्थायें (Phases of a Trade cycle)

तेजी और मन्दी का चक्र बराबर चलता ही रहता है—मूल्य चढ़ते रहते हैं या गिरते रहते हैं, इसी प्रकार रोजगार बढ़ता रहता है या घटता रहता है। अतः कोई बिन्दु ऐसा निश्चित नहीं किया जा सकता जहाँ से व्यापार चक्र आरम्भ होता है। किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिये व्यापार चक्र के विभिन्न अवस्थाओं का प्रारंभिक बिन्दु निश्चित करना आवश्यक है। सबसे अच्छा बिन्दु वह माना गया है जहाँ के मूल्यों का उतार अधिकतम होता है। जब मूल्य निम्नतम बिन्दु तक पहुँच जाते हैं और बेरोजगारी उच्चतम बिन्दु तक पहुँच जाती है, तो इसे मन्दी (Depression) की अवस्था कहते हैं। तत्पश्चात व्यापार चक्र की चार अवस्थायें और पायी जाती हैं। ये अवस्थायें हैं—

पुनरुद्धार (Recovery), पूर्ण रोजगार (Full Employment), तेजी (Boom) और अवरोध (Recession) व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है।

4.6.1 मन्दी की अवस्था (Depression)

यह व्यापार चक्र की पहली अवस्था है। इसमें देश की व्यवसायिक क्रियाओं का स्तर सामान्य से नीचे गिर जाता है। इस अवस्था में अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं रोजगार स्तर में भारी गिरावट होती है। विनियोजन में कमी के कारण उत्पादक गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव पड़ने से श्रमिक तथा अन्य साधन बेकार हो जाते हैं तथा मजदूरी की दरों में अत्यधिक कमी हो जाती है। तेजी के समय की तुलना में कीमतों का स्तर बहुत गिर जाता है। किन्तु इससे भी दुर्भाग्यपूर्ण विशेषता यह है कि वस्तुओं की संरचना बड़ी अस्त व्यस्त हो जाती है। तैयार माल की कीमतें श्रम के पुरस्कारों से कम होती है। अतः रोजगार में लगे हुये व्यक्तियों की वास्तविक आय बहुत अधिक रहती है यद्यपि उनकी मौद्रिक आय कुछ घट भी जाती है। राष्ट्रीय लाभांश के वितरण में विषमता पैदा हो जाती है। साहसियों को उत्पादन कार्य जारी रखने की प्रेरणा देने वाला लाभा बहुत कम हो जाता है। राष्ट्रीय लाभांश में ब्याज का अनुपात बढ़ जाता है। बढ़ती हुई बेरोजगारी के बावजूद श्रमिकों को मजदूरी के रूप में राष्ट्रीय लाभांश का अधिक भाग मिलने लगता है।

कच्चेमाल एवं कृषि उपजों की कीमतें तो तैयार माल की कीमतों से भी अधिक गिर जाती है। इस प्रकार किसानों और कच्चे माल के उत्पादकों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ती है। निर्माताओं एवं किसानों के मध्य व्यापार शर्तें निर्माताओं के लिये अधिक अनुकूल पड़ती है, यद्यपि वे कम उत्पादन और कम रोजगार की स्थिति के कारण इस अनुकूलता का अधिक लाभ नहीं उठा पाते। इस प्रकार मौद्रिक आय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सामान्यतः कम होती है। हाँ, विभिन्न क्षेत्रों में मौद्रिक आयों के कम रहने के कारण अलग-अलग होते हैं।

मन्दी के काल में जिन औद्योगिक क्षेत्रों को सबसे अधिक हानि उठानी पड़ती है, वे हैं—भवन निर्माण, विद्युत उपकरण एवं मशीन निर्माण आदि। जिन उद्योगों पर मन्दी की सबसे कम प्रभाव पड़ता है वा हैं उपभोक्ता

वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योग।

संक्षेप में मन्दी के काल की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :—

1. विनियोग एवं उत्पादन को निम्न स्तर
2. बड़े पैमाने पर बेरोजगारी
3. न्यून मजदूरी, न्यून आय, न्यून कीमतें एवं न्यून लाभ
4. न्यून अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
5. न्यून ब्याज दर
6. निराशाजनक आर्थिक परिवेश

4.6.2 पुनरुद्धार (Recovery) की अवस्था

मन्दी से निम्नतम बिंदु के बाद जब व्यवसायिक क्रियाओं में वद्धि होने लगती हैं तो उस अवस्था को पुनरुद्धार की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में अथव्यवस्था की आर्थिक स्थिति मन्दी की स्थिति की तुलना में अधिक सन्तोषजनक होती है। प्रारंभ में व्यवसायिक क्रियाओं में थोड़ा सा सुधार होता है। उद्यमी यह महसूस करने लगते हैं कि देश की आर्थिक स्थिति में मन्दी के काल की तुलना में कुछ सुधार होने लगा है। धीरे-धीरे औद्योगिक उत्पादन बढ़ने गता है। रोजगार के स्तर में भी वद्धि होने लगती हैं कीमतों में धीमी किन्तु निश्चित वद्धि होती है। लाभ की मात्रा में भी थोड़ी वद्धि होने लगती है। मजदूरियाँ भी बढ़ने लगती है, यद्यपि वे उस अनुपात में नहीं बढ़ती जितनी कीमतें बढ़ती हैं। बढ़ते हुये लाभ को देखकर निदेशक पूँजीगत वस्तु उद्योगों में नये-नये निवेश करते हैं। बैंक साख का विस्तार करते हैं। कुल मिलाकर मन्दी के काल की निराशावादिता के स्थान पर अर्थव्यवस्था में आशावादिता की स्थिति आ जाती है।

पुनरुद्धार की यह प्रक्रिया लगातार तेज होती जाती है। किन्तु इस प्रक्रिया की भी एक सीमा होती है और यह सीमा पूर्ण रोजगार द्वारा निर्धारित होती है। सामान्तयः पुनरुद्धार की अवस्था की काल उन शक्तियों की प्रकृति पर निर्भर करता है जो कि पुनरुद्धार करती हैं। पुनरुद्धार करने वाली शक्तियाँ निम्न हो सकती हैं—(i) नवीन विधियों की खोज, (ii) नये बाजार उपलब्ध होना, (iii) विनियोग के नये नये रूप का पता लगाना, (iv) नवीन उत्पादों का चलन इत्यादि।

4.6.3 पूर्ण रोजगार की अवस्था

यह व्यापार चक्र की तीसरी अवस्था है। इसे सम्पन्नता (Prosperity) भी कहा जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना प्रायः सभी देशों की राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों की लक्ष्य होता है। इस अवस्था में उत्पत्ति के सम्पूर्ण साधन कार्य में लगे होते हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की स्वामी जो प्रचलित दर पर अपने साधन को उत्पादन कार्य में लगाना चाहता है, लगा सकता है। पूर्ण रोजगार का अर्थ यह नहीं है कि बेकारी बिल्कुल नहीं रह जाती क्योंकि श्रम की गतिशीलता के कारण श्रमिक एक काम को छोड़कर दूसरे काम पर पहुँच जाने के बीच में रहता है।

संक्षेप में पूर्ण रोजगार की अवस्था में (i) आर्थिक क्रिया अनुकूलतम स्तर (Optimum Level) पर पहुँच जाती है, (ii) रोजगार पूर्णता तक पहुँच जाता है अर्थात काम करने की शक्ति और इच्छा रखने वाला कोई भी व्यक्ति बेकार नहीं रहता, (iii) उत्पादन, मजदूरियों, कीमतों और आय सभी में स्थामित्व आ जाता है।

4.6.4 तेजी की अवस्था (Boom)

पुनरुद्धार की लहर पूर्ण रोजगार पर पहुँच कर रुक जाय ऐसा नहीं होता, वरन् अर्थव्यवस्था तेजी की दिशा में बढ़ती रहती है। एक बार पूर्ण रोजगार की अवस्था तक पहुँचने पर यदि व्यय इसके बाद भी बढ़ता रहे, तो निम्नलिखित लक्षण प्रकट होने लगते हैं :—

(i) पूर्ण रोजगार की अवस्था के बाद भी विनियोग होते रहने के कारण वास्तविक उत्पादन में तो वद्धि नहीं होती (क्योंकि संसाधनों की पूर्ण उपभोग हो चुका होता है) बल्कि कीमतों में वद्धि हो जाती है।

(ii) साहसीगण प्रत्येक बात को अधिक आशावादी दष्टि से देखने लगते हैं जिससे सभी उद्योगों में अत्यधिक विनियोग होने लगता है। इससे पहले से ही रोजगार पर लगे हुये उत्पत्ति के साधनों पर चारों ओर से दबाव बढ़ जाता है।

(iii) इस अवधि में अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ता है— नई-नई इमारतों का निर्माण होता है, नये-नये कारखाने स्थापित हो जाते हैं और नये व्यापार चल निकलते हैं।

(iv) इस तरह एक अवस्था ऐसी भी आ जाती है जो 'अत्यधिक रोजगार' (Hyper Employment) प्रदान करती है अर्थात काम की कमी नहीं होती वरन् काम करने वालों की कभी अनुभव की जाने लगती है।

(v) यद्यपि इस अवस्था में नकद मजदूरी बढ़ जाती है परनतु मूल्य इससे भी तेजी से बढ़ जाते हैं अत वास्तविक मजदूरी घट जाती है।

(vi) लाभों में प्रतिदिन वद्धि होती है और यह असामान्य तरीक से ऊँचे हो जाते हैं। कुल मिलाकर 'लाभ प्रसार' (Profit Inflation) अग्नि में घी डालने का कार्य करता है तथा तेजी और भी बढ़ जाती है।

4.6.5 अवरोध की अवस्था (Recession)

तेजी एवं पूर्ण रोजगार की अवस्थाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले अत्यधिक रोजगार, अत्यधिक लाभ, बढ़े हुये पूँजीगत निवेश एवं बढ़ती हुयी कीमतें जैसे तत्व अर्थव्यवस्था में अनावश्यक आशावादिता फैला देते हैं। इसी अनावश्यक आशावादिता में स्व-विनाश (Self-destruction) के बीज विद्यमान रहते हैं। अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों में कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। उत्पादन साधन दुर्लभ हो जाते हैं और उनकी कीमतों में और अधिक वद्धि होने लगती है। व्यवसायियों एवं उद्योगपतियों की लागत सम्बन्धी गणनाओं में गड़बड़ी हो जाती है। जल्दीबाजी में स्थापित नयी-नयी फर्में असफल हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यवसायी एवं उद्योगपति आवश्यकता से अधिक सावधान हो जाते हैं। नयी-नयी व्यवसायिक परियोजनाओं से वे मुँह फेर लेते हैं; यहाँ तक कि वे वर्तमान इकाइयों का विस्तार करने से भी हिचकिचाते हैं। इससे अवरोध की अवस्था का आधार तैयार हो जाता है अर्थात तेजी के बाद मन्दी का पुनरागमन होता है।

पहले की अवस्था में व्यवसायियों में उत्पन्न आशावादिता के स्थान पर अब उनमें निराशावादिता फैल जाी है। उनमें डर की भावना व्याप्त हो जाती है और वे असमंजस में पड़ जाते हैं। कुछ व्यवसायों के फेल हो जाने से उनमें आतंक छा जाता है, बैंक भी आतंकित होने लगते हैं और घबराकर व्यवसायियों से अपने ऋण वापस मांगने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अधिक व्यवसाय फेल होने लगते हैं। कीमतें गिरने लगती है और व्यवसायियों के विश्वास को बहुत बड़ा आघात पहुँचता है। निर्माण क्रिया मन्द पड़ जाती है और निर्माणी उद्योगों में बेरोजगारी के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। यह प्रारंभिक बेरोजगारी धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों में भी फैल जाती है। इस बेरोजगारी

से आय, व्यय, कीमतों एवं लाभ की दरों में कमी हो जाती है। महत्वपूर्ण है कि अवरोध या प्रतिसार (Recession) का संचयी प्रभाव (Cumulative effect) पड़ता है, जब एक बार अवरोध प्रारम्भ हो जाता है तो धीरे-धीरे उसका प्रभाव बढ़ता चला जाता है। अतः यह मन्दी का रूप धारण कर लेता है अर्थात मन्दी से ही व्यापार चक्र की शुरूआत होती है और मन्दी के पुनरागमन से ही इसकी पूर्णता होता है।

व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं को रेखाचित्र 4.1 द्वारा दर्शाया गया है—

रेखाचित्र 4.1 : व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थायें
Various phase of Business-cycles

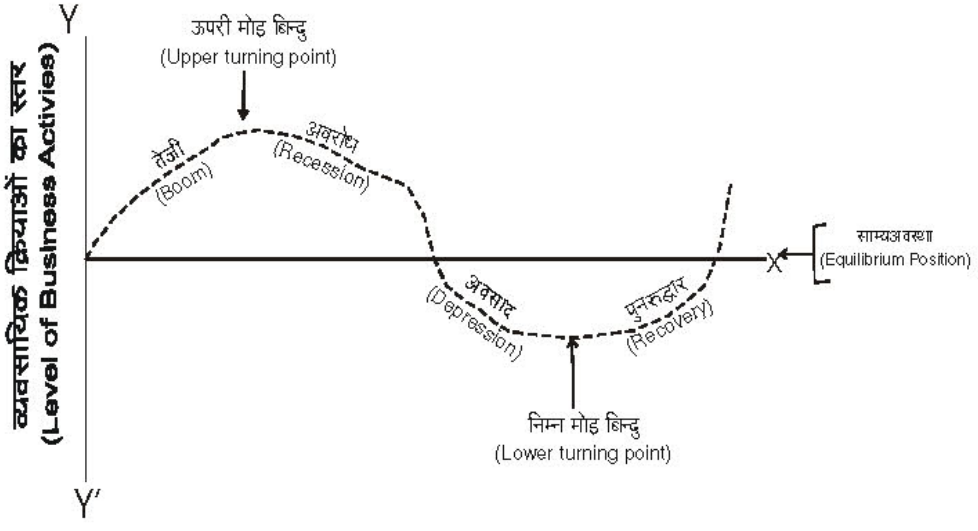

व्यापार चक्र की उपरोक्त पाँच अवस्थायें होती हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हर व्यापार चक्र इन पाँचों अवस्थाओं से इसी क्रम से होकर गुजरता है। इसी प्रकार व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं को समयावधि के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

4.7 सारांश

व्यापार चक्र से हमारा आशय उत्पादन, आय, रोजगार एवं कीमतों में होने वाले अल्पकालीन उतार-चढ़ावों से है। इन उच्चावचनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक विशेष क्रम के साथ तथा नियमित रूप से होते रहते हैं। दूसरे शब्दों में व्यापार चक्र के अन्तर्गत वे उच्चावचन सम्मिलित नहीं किये जाते जिनकी पुनरावत्ति नियमित नहीं होती। व्यापार चक्र की दो प्रमुख विशेषतायें हैं—सामयिकता (Periodicity) एवं समक्रमिकता (Synchronism)। एक सार्वलाक्षणिक व्यापार चक्र की पाँच अवस्थायें (Phases) होती हैं—मन्दी Depression, पुनरुद्धार (Recovery), पूर्ण रोजगार, तेजी (Boom) तथा अवरोध

ा (Recession) अथवा मन्दी का पुनरागमन। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रत्येक व्यापार चक्र इन पाँचों अवस्थाओं में इसी क्रम से हो कर गुजरता है। इसी प्रकार व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं के काल के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

4.8 सम्बन्धित पुस्तकें

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एस०पी० दुबे एवं वी०सी० सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एस०पी० सिंह,एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
3. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एम०एल० सेठ, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा।
4. उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र—एच०एल० आहूजा, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली।
5. Moden Economic Theory—K.K. Dewett, Adarsh Chand, Shyam Lal Charitable Trust, New Delhi.
6. समष्टि अर्थशास्त्र—एम०एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, दिल्ली।

4.9 सम्बन्धित प्रश्न

1. व्यापार चक्र क्या है? इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की विवेचना कीजिये। बचत एवं विनियोग में परिवर्तन (Variations) किस प्रकार व्यापार चक्र को प्रभावित करता है?
3. नव प्रवर्तन दीर्घ लहरों का कारण कैसे बनते हैं? इसकी व्याख्या कीजिये।

इकाई-5 व्यापार चक्र के सिद्धान्त एवं नियन्त्रण (Theories and Control of Business Cycles)

इकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 व्यापार चक्र के सिद्धान्त

5.1.1.1 जलवायु सिद्धान्त

5.1.1.2 मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

5.1.1.3 अधिक उत्पादन का सिद्धान्त

5.1.1.4 अधिक बचत का सिद्धान्त

5.1.2 व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त

5.1.2.1 हाट्रे का शुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त

5.1.2.2 हेयक का अधि–विनियोग सिद्धान्त

5.1.2.4 हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त

5.2 व्यापार चक्र का नियन्त्रण

5.2.1 मौद्रिक नीति

5.2.2 प्रशुल्क अथवा राजकोषीय नीति

5.2.3 स्वचालित स्थायीकारक

5.3 सारांश

5.4 सम्बन्धित पुस्तकें

5.5 सम्बन्धित प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यापार चक्र के मौद्रिक एवं अमौद्रिक सिद्धान्तों में भेद कर सकें;
- व्यापार चक्र के विभिन्न अमौद्रिक सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकें;
- व्यापार चक्र के विभिन्न मौद्रिक सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकें;

और

- व्यापार चक्र को नियन्त्रित करने के लिये उपलब्ध प्रमुख उपायों की विवेचना कर सकें।

5.1 व्यापार चक्र के सिद्धान्त (Theories of Business Cycles)

व्यापार चक्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अत्यन्त जटिल समस्या है। व्यापार चक्र क्यों आते हैं ? और बार बार लगभग नियत समय पर ही क्यों होते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर के लिये विभिन्न अर्थ शास्त्रियों ने समय–समय पर विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। मोटे रूप में इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है¾(I) वह वर्ग जो मौद्रिक घटकों को आर्थिक उतार चढ़ाव का कारण मानता है। इस वर्ग के समर्थक हैं लूडविग, हेयक, हाट्रे, हिक्स आदि, और (II) वह वर्ग है जो अमौद्रिक घटकों को आार्थिक उतार चढ़ाव अर्थात व्यापार चक्रों का कारण मानता है। इस वर्ग में स्टैनले, जेवन्स, विक्सेल, पीगू आदि अर्थशास्त्री आते हैं।

5.1.1 व्यापार चक्र के अमौद्रिक सिद्धान्त(Non-monetary theories of Business Cycles)

5.1.1.1 जलवायु सिद्धान्त (Climatic Theory)

जलवायु सिद्धान्त व्यापर चक्र का प्राचीनतम सिद्धान्त हैं इसके प्रतिपादक डब्लू स्टेनले जेवन्स (W. Stanley Javans) ने अपने प्रसिद्ध 'सूर्य चिन्ह सिद्धान्त' (Sunspot Theory) में व्यापार चक्र को सूर्य में उन चिन्हों से जोड़ा जो प्रत्येक 10 वर्ष की अवधि के उपरान्त सूर्य में उत्पन्न होते हैं अर्थात उनके अनुसार समय समय पर सूर्य में होने वाले परिवर्तन व्यवसाय के लयबद्ध उतार चढ़ावों को निर्धारित करते हैं। जेवन्स ने यह बताया कि सूर्य में कुछ वर्षों के पश्चात नियमानुसार कुछ धब्बे दिखायी पड़ते हैं। इन धब्बों के कारण सूर्य पथ्वी को पर्याप्त गर्मी नहीं पहुचा पाता, जिससे मानसून अच्छा नहीं रहता परिणामस्वरूप फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, और मानव जाति के लिए मन्दी अथवा अवसाद की दशायें उत्पन्न कर देती हैं । उसके विपरीत, यदि सूर्य तल पर काले धब्बे नहीं दिखयी पड़ते तो वर्षा/फसल अच्छी होगी। इससे कषि के साथ–साथ उद्योगों में भी सम्पन्नता आती है। अच्छी फसलों के कारण यातायात उद्योत तथा बहुत से अन्य उद्योगों की सेवाओं की मांगी भी बढ़

जाती है जिसके परिणामस्वरूप सम्पन्नता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो राष्ट्रीय अर्थव्यवथा के सभी क्षेत्रों कें फैल जाती है। जलवायु में यह परिवर्तन ठीक समय से नियमित रूप से होते हैं जिसके कारण देशों में मन्दी व तेजी की दशायें समय से और नियमित रूप से फैलती रहती है।

5.1.1.2 मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological Theory)

कुछ अर्थाधास्त्रियों द्वारा व्यापार चक्रों की व्याख्या नियोजकों की मनोवत्ति के आधार पर करने का प्रयास किया गया है। इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थक प्रो० पीगू (Pigou) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यवसायियों एवं उद्योगपतियों में क्रियाशील होने वाली आशवादिता एवं निराशावादिता के मनोभावों के कारण ही व्यावसायिक उच्चावचन होते रहते हैं। मनुष्य में बहुत कुछ भेड़–चाल पाई जाती है, अर्थात एक मनुष्य के हृदय में वैसा करने की इच्छा उत्पन्न होने लगती जैसा कि अन्य व्यक्ति कर रहा हो या कर चुका हो। कभी–कभी भेड़–चाल की प्रवत्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि लोगों की निर्णय शक्ति जवाब दे जाती है और प्रत्येक व्यक्ति वैसा ही करने लगता है जैसा कि दूसरे कर रहे हों और इस बात पर ध्यान नहीं देता कि वे ऐसा क्यों कर रहे थे। इस प्रवत्ति को मनोवैज्ञानिक भाषा में भीड़–मनोवत्ति (Crowd Psychology) कहते हैं, जो किसी आदेश के समय उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार व्यापारिक क्षेत्र में जब कोई महत्वपूण्र घटना घटित हो जाती है तो दूसरों पर इसका प्रभाव शीघ्रता से पड़ने लगता है और उनके कार्य भी उसी प्रकार होने लगते हैं अर्थात व्यापारिक क्षेत्र में देखा देखी की प्रवत्ति पायी जाती है।

समय–समय पर व्यवसायी एवं उद्योगपति आशावादिता से प्रभावित होते रहते हैं। कुछ बड़े–बड़े व्यवसायी एवं उद्योगपति यह महसूस करने लगते हैं व्यवसायिक समय अच्छा चल रहा है और यह अच्छा समय भविष्य में भी चलता रहेगा। इस आशावादिता से अन्य छोटे–छोटे व्यापारी एवं उद्योगपति भी आशावादी दष्टिकोण अपनाते हैं। इस प्रकार शीघ्र ही समूचा व्यवसायी वर्ग आशावाद से प्रभावित हो उठता है। इस प्रकार आशावाद की मनोवत्ति से प्रभवित होकर व्यवसायी एवं उद्योगपति अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में नये–नये निवेश करने लगते हैं। इससे तेजी की अवस्था का सूत्रपात होने लगता है। इस प्रकार कभी कमी व्यवसायी एवं उद्योगपति व्यापार के ीाविष्य के प्रति निराशावाद हो जाते है। बड़े–बड़े व्यवसायी एवं उद्योगपति

अपने इस निराशावाद को छोटे–छोटे व्यवसायियों एवं उद्योगपतियों की ओर प्रसारित करते हैं। अन्त में समूचा व्यवसायी वर्ग में निराशा की लहर फैल जाती है। इस सामान्य निराशावाद से प्रभावित होकर व्यवसायी एवं उद्योगपति नये–नये निवेश करना बन्द कर देते हैं। निराशावाद इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यवसायी एवं उद्योगपति वर्तमान उत्पादन क्षमता में भी कटौती कर देते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में मन्दी कमी शुरुआत होने लगती है। अतः मन्दी एंव तेजी निवेशकर्ताओं में उठने वाले निराशावाद एवं आशावाद के मनोभावों के अन्तरण से होती हैं।

5.1.1.3 अधिक उत्पादन का सिद्धान्त (Over-production Theory)

इस सिद्धान्त को व्यापार चक्र का प्रतियोगिता सिद्धान्त भी कहते हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादक समाजवादी प्रवत्ति के अर्थशस्त्रियों द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यपार चक्र अति–उत्पादन (Over production) के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुआ करते हैं और अति–उत्पादन एक स्वतन्त्र एवं प्रतियोगी अर्थवयवस्था में अनेक प्रतियोगी फर्मे होती हैं, समरूप वस्तु (Homogeneous Commodity) का उत्पादन करती है और उसे एक ही बाजार में बेचती हैं। परिणामतः उनके बीच प्रतियोगिता अनिवार्य हो जाती है। प्रत्येक फर्म बाजार के अधिकाधिक भाग पर कब्जा करने का प्रयास करती है। इसी प्रयास में वह वस्तु का इतना अधिक उत्पादन कर लेती है कि उसके लिये उसे बाजार में बेचना कठिन हो जाता है। उस प्रकार वस्तु का अति उत्पादन हो जाता है ओर बाजार में माल की बाढ़ आ जाती है। अति उत्पादन की इस परिस्थिति में वस्तु की कीमत में कमी होना अनिवार्य हो जाता है। यही बात अन्य वस्तुओं के साथ होती है।

जबकि वस्तुओं की कीमतें गिरने लगती हैं उनकी उत्पादन लागत बढ़ने लगती है क्योंकि उत्पादकों की पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण कच्चे माल एवं उत्पाद साधनों की व्यापक दुर्लभता हो जाती है परिणामस्वरूप उत्पादकों को उनके लिये अधिक कीमते चुकानी पड़ती हैं। इस प्रकार दो बाते एक साथ घटित होती हैं। एक तो कीमते नीचे गिरती हैं और दूसरी ओर लागतें ऊपर उठती हैं। इस प्रकार लाभ की मात्रा बहुत कम हो जाती है, जिससे उत्पादकगण उत्पादन को घटाने के लिये बाध्य होते हैं। कुछ सीमान्त फर्मे धराशायी हो जाती हैं। इससे अन्य फर्मो के भाग्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वयवसायिक फर्मे अधिकाधिक फेल होने लगती हैं। अन्ततः समूची

अर्थव्यवस्था मन्दी की चपेट में आ जाती है।

5.1.1.4 अधिक बचत का सिद्धान्त (Over saving Theory)

अधिक बचत सिद्धान्त को व्यापार चक्र का अल्प उपयोग सिद्धान्त (Under consumption Theory) भी कहते हैं। आधुनिक रूप में इसे हॉबसन (Hobson) ने प्रस्तुत किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रचलित आय सम्बन्धी असमानतायें ही व्यापार चक्र के मूलभूत कारण हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज में गरीबों एवं अमीरों के मध्य जो व्यापक आय असमानतायें पाई जाती हैं उनके कारण उत्पन्न हुई 'अधिक बचत' और 'न्यून उपयोग' की विलक्षण घटनायें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को व्यापार चक्र के उबलते हुये कड़ाहे में सरका देती है।

आार्थिक असमानताओं के अन्तर्गत धनी लोगों की आय इतनी अधिक हो जाती है कि वे इसका उपभेग नहीं कर पाते और आय की काफी भाग बचाते रहते हैं। यह बचत उत्पादक कार्यों में लगाई जाती है जिससे अधिक उत्पादन किया जाता है और इसकी मात्रा इससे अधिक हो जाती है जो कि निर्धन वर्ग खरीद सकता है (अर्थात पूर्ति मांग से अधिक हो जाती है)। यदि राष्ट्रीय लाभांश में निर्धनों की मांग कुछ अधिक होता तो वे संभवतः इस बढ़ी हुई आय का प्रयोग कुछ सीमा तक अपने उपभोग में करते। इस प्रकार 'अधिक बचत' के कारण या यों कहिये कि 'न्यून उपभेग' के कारण माल की पूर्ति उसकी खपत से अधिक हो जाती है। अतः मन्दी का काल या मूल्यों में उतार प्रारंभ हो जाता है। मूल्यों के काफी गिरने पर उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा खरीद ली जाती है। धनवानों की बचत तो बराबर रहती है और उनका विनियोग भी जारी रहता है जिससे उत्पादन फिर बढ़ने लगता है और फिर तेजी की स्थिति प्रकट हो जाती है। इसका कारण भी अधिक बचत है। अतः स्पष्ट है कि बार–बार के इन संकटों से तभी छुटकारा मिल सकता है जबकि उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति उत्पादन की समस्त लागत के बराबर हो अर्थात माल के उत्पादन में जितना व्यय किया जाय वह समाज को (उपभोक्ता को सम्मिलित करते हुये) लौटा दिया जाय लेकिन ऐसा नहीं हो पाता, क्योंकि राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग धनी वर्गो के पास चला जाता है जो कि गिनती में थोड़े होते हैं जबकि श्रमिकों के पास, जिनकी संख्या अधिक होती है, बहुत थोड़ा भाग पहुंचता है। परिणाम यह होता है कि

कुल पर उपभोक्ताओं के पास इतनी क्रय शक्ति नहीं होती कि वह उत्पादन लागत के बराबर हो।

5.1.1.5 नवप्रवर्तन सिद्धान्त (Innovations Theory)

अमेरिकन अर्थशास्त्री, जोसेफ शुम्पीटर (Joseph Schumpeter) ने नव प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। प्रो० शुम्पीटर के अनुसार पूंजीवादी देश की आर्थिक प्रणाली में समय–समय पर जो नव प्रवर्तन होते रहते हैं, उन्हीं के कारण व्यापार चक्र की शुरुआत होती है। अब प्रश्न उठता है कि नवप्रवर्तन से क्या आशय है। प्रो० शुम्पीटर के अनुसार "नव प्रवर्तन की आशय ऐसी किसी नवीन प्रवर्तन से है जो उत्पादन की वर्तमान प्रविधियों में उद्यमियों द्वारा रूपान्तरण (transformation) कर दिया जाता है।" निम्नलिखित में से कोई भी 'नव प्रवर्तन' हो सकता है :

(i) कोई नया यान्त्रिक अविष्कार, (ii) किसी नवीन वस्तु की उत्पादन, (iii) उत्पादन की किसी नवीन प्रविधि का विकास, (iv) वर्तमान वस्तुओं के लिये नये बाजारों का विकास, (v) वर्तमान व्यवसायिक उपक्रमें के कच्चे माल के नये स्त्रोतों का विकल्प, (vi) नये प्रकार के कच्चे माल का विकास (vii) व्यवसायिक संगठन के नवीन रूपों का विकास, और (viii) व्यवसायिक प्रबन्धन में नवीन प्रविधियों को विकास। शुम्पीटर नवप्रवर्तन एवं आविष्कार (Invention) में मोलिक भेद करते हैं। 'आविष्कार' से अभिप्राय किसी नवीन वस्तु की खोज से होता है लेकिन नवप्रवर्तन की अर्थ किसी नयी चीज को व्यवहार में लागू करने से होता है। लाभ को बढ़ाने अथवा तीव्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत उसकी दर को बनाये रखने की आशंसा व्यवसायिक नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहित करती है। अतः प्रतियोगी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में नवप्रवर्तन अनिवार्य रूप से घति होते रहते हैं। नवप्रवर्तन भी दो प्रकार को होते हैं— (i) नवप्रवर्तनों की लघु लहरें (Smaller Waves of innovations)। प्रथम प्रकार के नव प्रवर्तनों से दीर्घकालीन व्यापार चक्र घटित होते हैं, जबकि दूसरी प्रकार के नवप्रवर्तनों से अल्पकालीन व्यापार चक्रों का सूत्रपात होता है।

प्रो० शुम्पीटर के अनुसार 'नवप्रवर्तनों की लघु लहरें' अलग अलग नहीं आती बल्कि समूहों में आती हैं। इसका कारण यह है कि व्यवसायियों को लब भी कोई नया विचार सूझता है तो वे तुरन्त ही उसे व्यवहार में नहीं ले

आते। इस प्रकार नेय–लनये विचारों का संचय होता रहता है और उपयुक्त समय पर व्यवसायी लोग उन्हें व्यवहारिक रूप प्रदान करते हैं जब एक बार किसी नये विचार को प्रमुख फर्मो द्वारा कार्यस्रूप मं परिणत कर दिया जाता है तो अन्य फर्मे भी तेजी से उनका अनुसरण करने लगती हैं।

तेजी-मन्दी चक्र का विश्लेषण

शुम्पीटर के अनुसार जब कभी कोई नवप्रवर्तन होता है तो उससे वर्तमान आर्थिक प्रणाली में असन्तुलन उत्पन्न होता है। आर्थिक प्रणाली का यह असन्तुलन तब तक जारी रहता है जब तक किसी नयी सन्तुलन स्थिति में आार्थिक शक्तियों का पुनः समायोजन नहीं हो जाता।

व्यापार चक्र की तेजी को स्पष्ट करने हेतु प्रो० शुम्पीटर यह मान लेते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में होती है। सभी उत्पादन साधन पहले पूर्णतया कार्य–संलग्न होते हैं, कोई भी साधन ऐसा नहीं होत जो बेरोजगार हो। यदि मान लीजिये कि ऐसे समाज में कोई नवप्रवर्तन घटित होता है जिसके माध्यम से व्यवसायीगण किसी नयी वस्तु का उत्पादन करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि देश की अर्थव्यवस्था में पूर्णतया एक नया उद्योग स्थापित हो गया है। अब उत्पादन के सभी साधन तो पहले ही पूर्णतया कार्य संलग्न हैं। प्रश्न अब यह पैदा हाता है कि नया उद्योग आवश्यक साधनों को कहां से प्राप्त करेगा। स्पष्ट है कि नया उद्योग ऊँचे पारिश्रमिकों का प्रलोभन देकर उत्पाद साधनों को वर्तमान उद्याोगों से ही प्राप्त करेगा। इस प्रकार समग्र रूप में सभी साधों के पारिश्रमिक बढ़ जायेंगे। इससे वर्तमान उद्योगों की उत्पादन लागतें बढ़ जायेंगी। वर्तमान उद्योगों की लागतों में ही वद्धि नहीं होगी बल्कि उनके उत्पादन में भी कमी हो जायेगी। इसका कारण यह है कि वर्तमान उद्यागों को अब पहले से कम मात्राा में उत्पादन साधन उपलब्ध होते हैं। इसी दौरान बैंक साख का विस्तार करके नये उद्योग का वित्त प्रबन्ध किया जायेगा। नये उद्यागों में लगाये गये उत्पादन साधनों को वर्तमान उद्यागों की अपेक्षा अधिक ऊँचे पारिश्रमिक दिये जायेंगे। इस प्रकार नये उद्योगा में लगे श्रमिकों के पास पहले की अपेक्षा अधिक क्रय शक्ति होगी। इस क्रय शक्ति को वे वर्तमान उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर व्यय करेंगे। परिणामतः वर्तमान उद्योगों के माल की मांग बढ़ जायेगी। यद्यपि इन उद्योागों के माल की मांग बढ़ जायेगी, उत्पादन साधनों की दुर्लभता के कारण इनके माल की पूर्ति नहीं

बढ़ सकेगी, बल्कि पहले की अपेक्षा गिर जायेगी। परिणामतः वर्तमान उद्योगों की कीमतों एवं लाभ–दरों में तेजी से वद्धि होने लगेगी। ऊँची लाभ दरों से प्रभावित होकर वर्तमान उद्योगों के उद्यमी अपनी–अपनी उत्पादन क्षमताओं का विस्तार करने लगेंगें वर्तमान उद्योगों के विस्तर का वित्त प्रबन्ध (Finance) बैंक साख का प्रसार करके किया जायेगा। उस प्रक्रिया की पुनरावत्ति जारी रहेगी। एक समय ऐसा आयेगा जब देश की अर्थव्यवस्था में स्फीतिक दशाएं उत्पन्न होने लगेंगी।

इसमें सन्देह नहीं कि नये उद्योग को स्थापित होने में कुछ समय लग जाता है। इस अन्तरिम अवधि में नया उद्योग स्फीतिक शक्तियों को बल प्रदान करता है। इसका कारण स्पष्ट है। नये उद्यग की स्थापना के परिणामस्वरूप मजदूरों के हाथ में अतिरिक्त क्रय–शक्ति आ जाती है। लेकिन इस क्रय–शक्ति को खपाने के लिये अन्तरिम काल में वह उद्योग सममूल्य उत्पादन प्रदान करने में असमर्थ रहता है। जब नये उद्योग का माल बाजार में आता हैं, तब भी उसका स्फीतिक प्रभाव समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि जारी रहता है। अग्रणी फर्मो द्वारा कमाये गये ऊँचे लाभ से आकर्षित होकर नयी नयी फर्मे प्रविष्ट होने लगती हैं। इन फर्मो का वित्त प्रबन्ध बैंक साख के अतिरिक्त प्रसार से किया जाता है। इससे स्फीतिक आग (Inflationary fire) और भड़क उठती है। इस प्रकार प्रक्रिया की पुनरावत्ति होती रहती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था में तेजी आ जाती है।

अर्थव्यवस्था का समद्धिकाल से मन्दीकल में प्रवेश

जब नये उद्योग की वस्तु बाजार में आती है, तो हय पुराने उद्याअगों की वस्तुओं से प्रतियेागिता करती है। उपभोक्तागण पुनारी वस्तुओं की मांग को स्थगित करके नयी वस्तु को खरीदने लगते हैं। उस सीमा तक पुराने उद्यागों की वस्तुओं की मांग गिर जाती है। परिणामतः इन वस्तुओं की कीमतें गिर जाती हैं। इसी दौरान नये उद्याग में लगी फर्मे अपने अर्जित लाभ में से उन ऋणों को चुकाना प्रारंभ कर देती हैं जो उन्होंने बैंक से ले रखे थे। इससे बैंक साख की पूर्ति में कमी हो जायेगी और देश की अर्थव्यवस्था पर इसका अवस्फीतिक प्रभाव (Deflationary effect) पड़ने लगेगा। मांग में हुई कमी को ध्यान में रखते हुये पुराने उद्योगों में संलग्न फर्मे श्रमिकों एवं अन्य उत्पाद साधनों को काम से हटाकर अपने उत्पादन में कमी करना प्रारंभ कर देगी।

बेरोजगार हुये श्रमिकों के पास क्रय शक्ति का अभाव हो जायेगा। अतः वे न केवल पुराने उद्यागों, बल्कि नये उद्योग के माल को खरीदना भी कर कर देंगे। इस प्रकार वस्तुओं की मांग लगातार गिरती चली जायेगी। अन्ततः अर्थ व्यवस्था व्यापार चक्र के मन्दी काल में प्रविष्ट हो जायेगी।

5.1.2 व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त (Monetary theories of business Cycles)

5.1.2.1 हाट्रे का शुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त (Hawtrey's Pure Monetary Theory)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हाट्रे के अनुसार, व्यापार चक्र विशुद्धतया एक मौद्रिक समस्या है। उनके अनुसार, "अमौद्रिक घटक (जैसे युद्ध भूकम्प, हड़ताल, फसलों की बरबादी इत्यादि) अर्थ व्यवस्था के विभिन्न भागों में आंशिक और अस्थायी मन्दी तो उत्पन्न कर सकते हैं, लेकिन वे व्यापार चक्र के रूप में एक ऐसी स्थायी और पूर्ण मन्दी उत्पन्न नहीं कर सकते, जिसमें कि उत्पत्ति साधनों की बेरोजगारी सामान्यतः बढ़ जाय। इस सिद्धान्त के अनुसार लोचदार मुद्रा–पूर्ति लोचदार होती है, अतः इसका विस्तार एंव सुकुचन वैकल्पिक रूप में होता रहता है। संक्षेप में, मुद्रास्फीति (inflation) एवं मुद्रा अवस्फीति (deflation) के कारण ही व्यवसायिक क्रियाओं में उतार–चढ़ाव होते रहते हैं। हाट्रे के अनुसार, "मुद्रा के प्रवाह में परिवर्तन होना आर्थिक क्रिया के परिवर्तनों का, तेजी ओर मन्दी की वैकल्पिक अवधि ायों का, और अच्छी एवं बुरी व्यापारिक दशाओं का, एकमात्र एवं पर्याप्त कारण है।"

जब बैंक साख के विस्तार के माध्यम से मुद्रा–आपूर्ति में वद्धि की जाती है तथा उसके साथ ही मुद्रा के संचलन वेग (Velocity of circulation of money) में भी वद्धि हो जाती है तब देश में समद्धिकाल का सूत्रपात होता है। बढ़ी हुई मुद्रा आपूर्ति के परिणाम स्वरूप उपभोक्ताओं के परिव्ययों में वद्धि हो जाती है, साथ ही विनियोग में भी वद्धि होती है। इसी प्रकार जब बैंक साख के संकुचन के माध्यम से मुद्रा आपूर्ति में कमी की जाती है और और उसके साथ ही मुद्रा का संचालन वेग भी कम हो जाता है तब देश में मन्दीकाल का प्रारम्भ होता है। मुद्रा आपूर्ति में की गयी कमी के परिणामस्वरूप उपभेक्ता परिणामों में भी कमी हो जाती है, निवेश घट जाता है। इस प्रकार

घटे हुये उपभोक्ता परिव्ययों से चक्रीय मन्दी का प्रारंभ होता है। चूंकि मुद्रा का विस्तार एंव संकुचन बैंक साख के विस्तार एवं संकुचन के कारण होता है, अतः देश की बैकिंग प्रणाली ही, वास्तव में व्यापार चक्र की क्रियाशीलता के लिये उत्तरदायी होती है।

बैंक साख और चक्रीय तेजी

बैंक साख के विस्तार के परिणाम स्वरूप ब्याज की दरों में कमी हो जाती है। घटी हुई ब्याज दर से आकर्षित होकर व्यवसायी लोग अपने स्टॉक में वद्धि करने हेतु बैंकों से अधिक ऋण लेने लगते हैं। वे अत्यधिक मात्रा में उत्पादकों का वस्तुओं का आर्डर भेजने लगते हैं। उत्पादक इन आर्डरों की पूर्ति के लिये उत्पत्ति साधनों में वद्धि करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि देश में उत्पत्ति के साधानों की मांग में वद्धि हो जाती है। उत्पत्ति साधनों की मांग बढ़ने से उनकी प्ररस्कार देरे बढ़ जाती हैं और रोजगार में भी वद्धि हो जाती है। इस प्रकार जनता के हाथों में क्रय शक्ति बढ़ऋने से प्रभावपूर्ण मांग में भी वद्धि हो जाती है। इन सब घटनाओं के कारण चक्रीय तेजी को बल मिलेगा और भविष्य में उसका वेग बढता चला जायेगा।

लेकिन तेजी की यह प्रवत्ति असीमित नहीं होती। समद्धि का काल उस समय समाप्त हो जायेगा जब बैंक साख विस्तार नीति का परित्याग कर देंगे। प्रश्न उठता है कि बैंक विस्तार की नीति को अचानक रोक क्यों देते हैं? व्यवसायिक सौदों, मौद्रिक आय एवं उपभोक्ता व्ययों में हुई वद्धि के कारण बैंको की नकदी निकलकर परिचलन में आ जाती है। उपभोक्ताओं, व्यवसायियों एवं उद्योगपतियों द्वारा अधिक नकदी की मांग के कारण बैंकों से नकदी का तेजी से निकास होने लगता है, साथ ही बैंकों को अपने दायित्वों के अनुपात में एक न्यूनतम नकद कोष रखना पड़ता है। इससे बैंकों की तरलता (Liquidity) खतरे में पड़ जाती है। अतः इस खतरे से बचने हेतु बैंक साख का फैलाव बन्द कर देते हैं अर्थात बैंक ऋणों पर रोक लगा देते हैं। इसका यह आशय नहीं है कि वे ऋण देना बिल्कुल रोक देते हैं। वे ब्याज दरों में वद्धि करके नये ऋणों को हतोत्साहित करने लगते हैं यही नहीं, बैंक अपने उधार दी रकम (अल्पकालीन ऋणों एवं याचना राशियों) को ग्राहकों से वापस लेना प्रारंभ कर देते हैं। यह परिवर्तन साहसियों के लिये विपत्तियों का तूफान लाता है। व्यवसायियों ने अकस्मात डर बैठ जाता है और अपने

RIL-082

बकाया ऋणों को चुकाने हेतु उन्हें अपने स्टाक किसी भी कीमत पर बेचने पड़ते हैं। इससे बाजार में मन्दी छा जाती है। कीमतें नीचे गिरना शुरू हो जाती हैं। यहां तक कि कमजोर एवं सीमान्त फमो। के साथ ही कुछ सुदढ़ फर्मे भी अपने वित्तीय दायित्वों को निभाने में असमर्थ हो जाती हैं ओर अंत में साख की असाधारण संरचना (Credit super structure) ताश के बने हुये महल के समान तेजी से ढह जाती हैं। कुछ फमो। के फेल हो जाने से शेष फर्मो में भय यहां तक कि आतंक फैल जाता है। वे उत्पादन में कटौती करना प्रारंभ कर देती हैं। उपभोक्ताओं द्वारा खरीददारी घटा दी जाती है। परिणामस्वरूप चक्रीय मन्दी की शुरुआत हो जाती है। जब एक बार मन्दी प्रारंभ हो जाती है तो कालान्तर में इसकी तीव्रता वढ़ता जाती हे। समूची अर्थव्यवस्था में निराशा एवं अवसाद का वातावरण छा जाता है। इस प्रकार तेजी एवं मन्दी की वैकल्पिक अवधियां आती जाती रहती हैं।

5.1.2.2 हेयक का अधि-विनियोग सिद्धान्त (Hayek's Over-investment Theory)

व्यापार चक्र का अधि–विनियोग सिद्धान्त आस्ट्रियन अर्थशास्त्री एफ० ए० वान हेयक (F.A. Von Hayek) के नाम से सम्बद्ध है। हेयक के अनुसरार, "कत्रिम रूप से निम्न ब्याज दरों पर (ब्याज की बाजार दर प्राकतिक दर से कम होती है) किया गया बैंक साख का अति निर्गमन ही व्यापार चक्रों की क्रियाशीलता के लिये पूर्णतः उत्तरदायी होता है।"

हेयक के अुनसार जब तक ब्याज की बाजार दर ब्याज की प्राकतिक दर के समान रहती है तब तक कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती और देश की अर्थव्यवस्था सन्तुलन की अवथा में रहती है। लेकिन समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब ब्याज की बाजार दर एवं प्राकतिक दर में अन्तर उत्पन्न होता है। मान लीजिये कि ब्याज की बाजार दर ब्याज की प्राकतिक दर से कम है। विनियोग कोषों की मांग बचतों की उपलब्ध पूर्ति से बढ़ जायेगी। इस प्रकार बचतों की मांग एवं पूर्ति के बीच अन्तराल उत्पन्न हो जायेगा। बैंक साख का विस्तार करके इस अन्तराल को दूर करेन का प्रयास किया जायेगा। बैंक साख के विस्तार के परिणामस्वरूप मुद्रा की पूर्ति बढ़ जायेगी और कीमत स्तर में वद्धि हो जायेगी इससे स्फीति अथवा तेजी का सूत्रपात होगा। यदि हम यह मान लें कि ब्याज की बाजार दर प्राकतिक दर से अधिक है। इस स्थिति में विनियोग कोषों की मांग बचतों की उपलब्ध पूर्ति

से कम होगी। बैंक साख का संकुचन किया जायेगा। परिचलन में मुद्रा की पूर्ति में कमी आ जायेगी उससे कीमत स्तर भी कम हो जायेगा और अर्थव्यवस्था में अवस्फीति अथवा मन्दी का दौर शुरू हो जायेगा।

अतः जब ब्याज की बाजार दर उसकी प्राकतिक दर से कम होती है तो विनियोग कोषों की मांग उपलब्ध बचतों की पूर्ति से अधिक बचतों की मांग एवं पूर्ति के इस अन्तर को ब्याज की सस्ती दरों पर बैंक साख का विस्तार करके दूर किया जाता है सस्ती ब्याज दरों से प्रोत्साहित होकर व्यवसायिक फर्मे बैंकों से अधिकाधिक ऋण लेंगी तथा अतिरिक्त राशियां उत्पादन के साधनों में वद्धि के लिये प्रयुक्त करेंगी। परिणामतः उत्पादन वस्तुओं (अर्थात पूंजीगत वस्तुओं) की मांग तथा कीमतें बढ़ जायेंगी और संसाधन उपभोग वस्तुओं के उत्पादन से पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन की ओर अन्तरित होना प्रारंभ कर दंगे। इससे उपभोग वस्तुओं का उत्पादन घट जायेगा तथा उनकी कीमतें बढ़ जायेंगी। कीमतों के बढ़ जाने से लोग अपनी आय द्वारा उनकी कम मात्रा (Forced Saving) कहते हैं। इससे उपभोग वस्तुओं की मांग कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोग वस्तु के निर्माण करने वाले उद्योगों में संकुचन आता है तथा उस क्षेत्र से अधिकाधिक संसाधन पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में अन्तरित होने लगते हैं। इस प्रकार उपयोग वस्तुओं के उत्पादन में कमी दोनों तरफ से आती है- एक तो बैंक द्वारा साख प्रसारण के कारण उपभोग वस्तु उद्योगों से उत्पादन साधन पूंजी वस्तु उद्योगों की ओर आकर्षित होने लगते हैं,; और दूसरे, मांग की कमी के कारण भी वस्तुओं के उत्पादन में कमी होती है तथा साधन स्वंय पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में लोग उद्योगों की ओर खिंच जाते हैं, इस प्रकार व्यापार चक्र के उत्कर्ष (Upswing) की दशा में संसाधन निम्न चरणों से उच्चतर चरणों पर आ जाते हैं। तेजी की इस दशा में कई बाते होती हैं¾ ब्याज की बाजार दर प्राकृतिक दर से नीचे रहती है दोनों के बीच अन्तर बढ़ता जाता है; अधिकाधिक पूंजीगत वस्तुओं का निर्माण किया जाता है तथा अधिकाधिक ऋण लिये जाते हैं।

तेजी के बाद अवनति अथवा मन्दी (Downswing or depression) आती हैं। उपक्रमी जो अतिरिक्त मुद्रा बैंक से लेकर पूंजीगत वस्तुओं में निर्माण में लगाते हैं, उससे अतिरिक्त आय पैदा होती है। चूंकि लोगों की उपभोग के बारे में भावना अपरिवर्तित रहती है इसलिये अतिरिक्त आय अधिकतर

उपभोग पर खर्च होती है। अतः उपभोग वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ जाती हैं और उपभोग वस्तुओं का उत्पादन अधिक लाभप्रद हो जाता है। अतः उत्पादन के साधन उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की ओर प्रवत्त होने लगते हैं। इस बीच बैंक यह महसूस करने लगते हैं कि साख का विस्तार बहुत आगे आ चुका है। इसलिये वे साख का संकुचन करने लगते हैं जिसे उत्पादन चरण और भी वे साख लाभदायक होने लगते हैं। इन सब कारणों से संसाधन उत्पादना के उच्चतम चरणों से निम्नतम चरणों की ओर प्रवत्त होते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश संसाधन जितनी जल्दी उच्चतर चरणों से निकल जाते हैं, उतनी शीघ्रता से उनकी खपत निम्न चरणों में नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप बेरोजगारी फैल जाती है। बैंक भी अपना ऋण वापस मांगने लगते हैं। बैंक साख में उत्तरोत्तर कमी, निराशावाद तथा लोगों की मुद्रा संचय की प्रवत्ति बेरोजगारी को और अधिन गहन कर देती है। अवनति उस समय तक जोर पकड़ती रहती है जब तक बैंक अपनी नीति नहीं बदलते।

जब अवसाद की अवस्था एक लम्बे समय तक चलती रहती है व व्यपारियों में यह भावना उत्पन्न हो जाती है अब यह बुरा समय समाप्त हो गया और कालान्तर में दशा इससे बुरी नहीं होगी। इस भावना का कोई आर्थिक कारण नहीं है। धीरे धीरे बैंक के नकद कोष भी बढ़ जाते हैं क्यों कि एक तो व्यापारियों द्वारा पुराने ऋणों का भुगतान किया जाता है तथा दूसरे बैंक में लोग अपनी बचतों को भी जमा कर देते हैं। अब बैंक उत्पादकों को ऋण देने के लिये तत्पर हो जाते हैं। अतः बैंकों द्वारा ब्याज दरों से कमी की जाती है बैंक की ब्याज दर नीची होने से व्यपारियों की आशा फिर जाग्रत हो उठती है, ऋण फिर लिये जाने प्रारंभ हो जाते हैं और धीरे–धीरे अवसाद की दशायें समाप्त हो कर उत्कर्ष (upswing) की दशायें आरमभ हो जाती हैं।

5.1.2.3 कीन्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त (Keynes' theory of Business Cycle)

कीन्स ने अपनी पुस्तक सामान्य सिद्धान्त (General Theory) में आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर की व्याख्या की है अर्थात यह बताया है कि किसी देश में आय, उत्पादन तथा रोजगार में कैसे उतार व चढ़ाव होते हैं। हालांकि कीन्स ने व्यापार चक्र का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं बताया, किन्तु अपनी पुस्तक में उन्होंने जो आय तथा रोजगार के घटने बढ़ने की व्याख्या

की है उससे व्यापार चक्र अथवा आर्थिक उतार चढाव का पता चल जाता है, क्योंकि आर्थिक उतार–चढ़ाव भी एक प्रकार से आय तथा रोजगार में उतार चढ़ाव ही है।

कुल रोजगार प्रभावपूर्ण मांग (कुल व्यय) पर निर्भर करता है। प्रभावपूर्ण मांग दो बातों उपभोग पर व्यय एवं विनियोग पर व्यय का योग होता है। चूंकि उपभोग पर व्यय लगभग स्थिर रहता है इसलिये विनियोग की मात्रा में होने वाले उतार–चढ़ाव ही आर्थिक उच्चावचन के मुख्य कारण हैं। विनियोग की मात्रा दो तत्वों पर आधारित रहती है (i) ब्याज की दर और (ii) पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal efficiency of Capital) विनियोग उस बिंदु तक किया जाता है, जहां पर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर के बारबर हो जाती है। ब्याज की दर, जो मुद्रा की मात्रा एवं तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) पर निर्भर करती है, कम से कम अल्पकाल में तो स्थायी ही रहती है, इसलिये व्यापारिक क्रियाओं के उतार–चढ़ाव में उसका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहता। अतः पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के उतार–चढ़ाव ही विनियोग की मात्रा में उतार–चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। अतः कीन्स के अनुसार व्यापार चक्र की क्रियाशीलता का मुख्य कारण पूंजी की सीमान्त उत्पादकता में होने वाले उतार–चढ़ाव हुआ करते हैं। पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अथवा प्रत्याशित लाभ–दर दो बातों पर निर्भर है : (i) पूंजीगत वस्तुओं से भावी प्राप्तियां अथवा आय (Prospective Yilds from capital goods) तथा (ii) पूंजीगत वस्तुओं की लागत अथवा पूर्ति कीमत (Cost or suppl;y price of capital goods)। इन दोनों में लागत का इतना महत्व नहीं है, इसलिये 'भावी आय' में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा ही पूंजील की सीमान्त उत्पादकता निश्चित होती है। चूंकि भविष्य में लाभ व आय की संभावना बदलती रहती है, अतः पूंजी की सीमान्त उत्पादकता भी बदती रहती है जिससे विनियोग में घट–बढ़ होती रहती है। परिणामस्वरूप आार्थिक उतार–चढ़ाव होता रहता है।

अब प्रश्न यह है कि कीन्स के सिद्धान्त के अनुसार व्यपार चक्र की व्याख्या किस प्रकार की जाती है अर्थात व्यापार जब इतने ऊँचे शिखर पर पहुँच जाता है तो फिर नीचे कैसे आता है ? कैसे ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। जब व्यापार में तेजी आते–आते यह शिखर पर पहुंच जाता है तो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता घटने लग जाती है क्योंकि पूंजी पदार्थों की बहुलता

हो जाती है। पूंजी की सीमान्त उत्पदकता के घटने का अर्थ यह होता है कि विनियोग से प्रत्याशित लाभ की दर गिर जाती है। पूंजी की सीमान्त उत्पादकता गिरने से व्यापारियों पर जो निराशाजनक प्रभाव पड़ता है, उसके कारण व्यापार चक्र तेजी से नीचे की ओर चल पड़ता है। अतः कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था का तेजी से मन्दी की ओर मुड़ जाने का कारण, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता की सहसा अत्यन्त नीचे गिर जाना है।

कुछ समय के लिये व्यापारिक चक्र नीचे की ओर चलता जाता है। जब पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के गिर जाने से विनियोग घट जाता है तो आय भी घट जाती है तथा गुणक विपरीत दिशा में चलने लग पड़ता है (The multiplier works in the reverse directions) अर्थात विनियोग के आई कमी की अपेक्षा आय कई गुना अधिक घट जाती है और जब गुणक के प्रभाव के कारण आय और उत्पादन तेजी से घट रहे होते हैं तो रोजगार भी घट जाता है और अर्थव्यवस्था में मन्दी छा जाती है। जैसे पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का घटना तेजी से मन्दी की ओर मुोड़ का कारण था, इसी प्रकार पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का कुछ बढ़ जाना व्यापार के पुनरुद्धार (Recovery) का कारण बन जाता है।

5.1.2.4 हिक्स का व्यापार चक्र का सिव्द्धान्त (Hicks Theory of business Cycle)

हिक्स के मतानुसार "चक्रीय उतार चढ़ावों का कारण गुणत प्रक्रिया (Multiplier action) और त्वरक सिद्धान्त (Principle of acceleration) का सम्मिलित प्रभापव है।"

हिक्स के अनुसार विनियोग दो प्रकार के होते हैं¾ (i) स्वाभाविक विनियोग (Autonomous investment), तथा (ii) प्रेरित विनियोग Induced investment) ।स्वाभाविक विनियोग वह होता है जो राष्ट्रीय आय अथवा उपभोग स्तर जैसे वर्तमा आर्थिक तत्वों से स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होता है अर्थात स्वाभाविक विनियोग उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन से प्रभावित नहीं होते और वे एक नियमित दर से बढ़ते रहते हैं। यह एक बहिर्जात तत्व (excogeneous factor) है जो प्राविधिक परिवर्तनों जनसंख्या वद्धि अथवा सरकारी विनियोग वद्धि के परिणामस्वरूप घटित होता है। वास्तव में, यह स्वाभाविक विनियोग ही है जिसके कारण उत्पादन एवं रोजगार का विस्तार होता है। इसकी शक्ति गुणक (Multiplier) द्वारा व्यक्त

होती है। इसके विपरीत प्रेरित विनियोग वे हैं जो आय स्तर तथा उपभोग स्तर में हुये अतीतकालीन परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं। अतः प्रेरित विनियोग अर्थव्यवस्था के विकास दर का फलन होता है। हिक्स के मॉडल में त्वरक (Accelerator) प्रेरित विनियोग पर आधारित है जो कि गुणक के साथ मिलकर ऊपरीमोड़ (upturn) लाता है। हिक्स ने त्वरक का परिभाषित करते हुये कहा है कि यह प्रेरित विनियोग का आय में वद्धि से अनुपात है। गुणक एवं त्वरक की समकालिक कार्यशीलता (Simultaneopus working) से अर्थव्यवस्था में उग्र व्यवसायिक उतार–चढ़ाव होते हैं। गुणक एवं त्वरक के संयुक्त प्रभाव को लीवरेज (Leverage) कहते हैं।

आइये अब हम देखें कि किस प्रकार इस लीवरेज क्रिया से अर्थव्यवस्था में तेजी का सूत्रपात होता है। गुणक की क्रियाशीलता के कारण अथव्यवथा में मूल विनियोग से कई कुना अधिक आय का विस्तार होगा। इस आय वद्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बढ़ जायेगी। महत्वपूर्ण है, इसी दौरान उपभोग प्रवत्ति (Propernsity to consume) भी बढ़ जाती है। जब उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है तो त्वरक की क्रियाशीलता के कारण विनियोग में भी कई गुना अधिक वद्धि हो जाती है। प्रेरित विनियोग में हुई वद्धि से लोगों की आय बढ़ जाती है। इस आय वद्धि से उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में और अधिक वद्धि होती है। उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में हुई इस अतिरिक्त वद्धि से प्रेरित विनियोग को त्वरक की क्रियाशीलता के कारण और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। उस प्रकार गुणक एवं त्वरक की पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में चक्रीय तेजी का सूत्रपात होता है।

व्यवसाय में आयी तेजी की भी परिसीमाएं होती हैं। दूसरे शब्दों में व्यवसायिक तेजी अनिश्चित काल तक जारी नहीं रह सकती। इस सिद्धान्त के अनुसार लोगों की आय वद्धि के साथ–साथ उनकी सीमान्त उपभोग प्रवत्ति (Marginal propersity to consume) घटती चली जाती है। इसे व्यवसायिक तेजी की समाप्ति हो जाती है। इसका कारण स्पष्ट है। त्वरक की विपरीत कार्यशीलता के कारण उपभोग व्यय में हुई कमी से विनियोग अनुपात से अधिक मात्रा में घट जाता है। इसी प्रकार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप विनियोग में हुई कमी से आय अनुपात से भी अधिक मात्रा में घट जाती है। इससे उपभोग व्यय में और अधिक कमी हो

जाती है। इसके कारण विनियोग में और भी अधिक गिरावट हो जाती है। त्वरक एवं गुणक की विपरीत क्रियाशीलता से अर्थव्यवस्था में अब स्फीति (Deflation) का सूत्रपात होता है जो आगे चलकर देश को मन्दी के गर्त में डाल देती है।

मन्दीकाल में जब आय घटती है तब लोगों की उपभोग प्रवत्ति उसी अनुपात में नहीं घटती। जब उपभोग में हुई कमी की दर धीमी होती चली जाती है तो अर्थव्यवस्था में पूंजीगत अथवा विनियोग वस्तुओं की मांग में स्पष्ट वद्धि होने लगती है। इस प्रकार विनियोग में धीरे धीरे वद्धि होने लगती है। गुणक एवं त्वरक की संयुक्त क्रियाशीलता के कारण बढ़ा हुआ विनियोग मन्दी पर काबू पा लेता है, और इस प्रकार अथव्यवस्था में चक्रीय तेजी को पूनः प्रोत्साहित करता है।

5.2 व्यापार-चक्र का नियन्त्रण (Control of the Busienss Cycle)

व्यापार चक्र जिससे आर्थिक क्रियाओं में भारी चक्रीय उतार–चढ़ाव होते रहते हैं, किसी भी समाज के लिये लाभप्रद नहीं है क्योंकि इससे समाज की क्रमबद्ध एवं निर्विघ्न प्रगति को बहुत ठेस लगती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि अर्थ व्यवस्था में व्यापार चक्र की क्रियाशीलता को रोकने के प्रयास किये जायें। व्यापार चक्र को नियन्त्रित करने के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं :–

1. मैद्रिक नीति Monetary Policy
2. प्रशुल्क अथवा राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)
3. स्वचालित स्थायीकारक (Automatic Stabilizers)

5.2.1 मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

मौद्रिक नीति से आशय आर्थिक स्थिति में वांछित परिवर्तन लाने के लिये मुद्रा तथा साख की मात्रा में परिवर्तन है। दूसरे शब्दों में मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी उपाय आ जाते हैं जिनके द्वारा केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण के उपकरणों को अधिक प्रभावशाली बाता है। व्यापार चक्र का कारण चाहे कुछ भी हो, मौद्रिक तत्व सदैव उसको बिगाड़ देते हैं। मौद्रिक तत्व संभवतः व्यापार चक्र का सजन तो नहीं करते लेकिन जब एक बार व्यापार–चक्र चकार्यशील हो जाता है, तो वे इसकी शक्ति को बढ़ा देते हैं।

मौद्रिक स्फीति के परिणामस्वरूप कीमतें एवं लाभ की दरे बढ़ने लगती हैं। व्यवसयियों में आशावाद की जहर दौड़ जाती है। इससे चक्रीय तेजी को बल मिलता है। इसके विपरीत, मौद्रिक अवस्फीति से कीमतें एवं ाल की दरें गिरने लगती हैं। अथ व्यवस्था में निराशावाद की भावना फैल जाती है। इससे चक्रीय मन्दी तेज होती है। चूँकि व्यापार चक्र से उत्पन्न व्यवसायिक उच्चावचनों को मौद्रिक तत्व और अधिक उग्र बना देते हैं, अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐसे मौद्रिक तत्वों को नियन्त्रित करने हेतु कुछ कदम उठाये जाने चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार को चाहियें कि वह स्थिति से निपटने के लिये एक समुचित मौद्रिक नीति का निर्माण करे। मुद्रा पूति के अनुचित विस्तार को रोका जाय। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि सरकार मुद्रा अधिकरण से आग्रह करे कि वह नोट निर्गमन के पीछे समुचित एवं पर्याप्त प्रतिभूति की व्यवस्था करे। इसी प्रकार देश के केन्द्रीय बैंक से कहा जाय कि वह साख विस्तार का नियन्त्रण करने हेतु अपने विभिन्न उपकरणों का दढ़तापूर्वक प्रयोग करे। ये विभिन्न उपकरण निम्न प्रकार हैं : –

(i) बैक दर में परिवर्तन करना (Changes in bank-rate)

(ii) खुले बाजार की क्रियायें (Open market operations)

(iii) नकद कोष अनुपात को परिवर्तित करना (Changes in cash reserve ratio)

(iv) नैतिक प्रभव (Moral suasion) इत्यादि।

लेकिन जब अर्थव्यवस्था में अति–प्रसार (Over expansion) की प्रवत्ति दिखाई पड़ने लगे तो केन्दीय बैंक को चाहिये कि वह अपने अस्त्रों का प्रयोग करके साख–विस्तार को नियन्त्रण में रखे। इसके विपरीत, जब अर्थव्यवस्था में मन्दी की प्रवत्ति दष्टिगोचर होने लगे तो केन्द्रीय बैंक को इन्हीं अस्त्रों का प्रयोग करके साख–विस्तार को प्रोत्साहित करना चाहिये। अतः चक्रीय व्यावसायिक उच्चावचनों की रोकथाम करने एंव आर्थिक स्थितरता को प्रोत्साहित करने में मौद्रिक नीति एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकती है।

5.2.2 प्रशुल्क अथवा रोजकोषीय (Fiscal policy)

यदि मौद्रिक नीति को अकेले ही क्रियान्वित किया जाय तो यह संभवतः चक्रीय व्यावसायिक उच्चावचनों की प्रभावपूर्ण रोकथाम नहीं कर सकेगी। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि यदि हमें वांछित परिणाम प्राप्त करने हैं

तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि मौद्रिक नीति को समुचित राजकोषीय नीति के साथ समान्वित किया जाय। राजकोषीय नीति के तीन प्रमुख उपकरण हैं– करारोपण (Taxation), सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण।

यदि व्यवसायिक क्रियाओं में शिथिलता आने लगती है अथवा अर्थव्यवस्था में मन्दी के चिन्ह दिखाई पड़ने लगते हैं तो सरकार को चाहिये कि वह तुरन्त ही उपर्युक्त तीनों राजकोषीण उपकरणों का एक साथ प्रयोग करके मन्दी को रोकथाम करे और देश में आर्थिक स्थिरता बनाये रखे। ऐसे समय पर सरकार का लोगों पर कोई नया कर नहीं लगाना चाहिये; यहां तक कि वर्तमान करों में पर्याप्त कटौती कर देनी चाहिये। इससे लोगों के पास अधिक क्रय शक्ति बची रह सकेगी। मांग में हुई कमी को पूरा करने के लिये लोगों को ज्यादा से ज्यादा मात्रा में वस्तुये एवं सेवायें खरीदने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इसका साथ ही साथ शिथिल हुये व्यवसाय को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार को एक महत्वाकांक्षी व्यय कार्यक्रम (Ambitious spending programme) क्रियान्वित करना चाहिये। मन्दी के समय सरकार को विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक निर्माण कार्य परियोजनाओं को प्रारंभ करना चाहिये। इससे बेरोजगार लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकेंगे और उन्हें क्रयशक्ति प्राप्त होगी जिसे वे उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने में लगायेंगे। इससे प्रभावपूर्ण मांग एवं व्यापवसायिक क्रियाओं में हुई कमी रुक जायेगी। साथ ही इसमें वद्धि होनी शुरू हो जायेगी। सार्वजनिक निर्माण कार्यों का वित्त प्रबन्धन करने हेतु धन कागजी मुद्रा छापकर अथवा बैकों से ऋण लेकर करना चाहिये। इससे निजी व्यवसायों द्वारा व्यय में की गयी कटौती से अर्थव्यवस्था में अवस्फीति उत्पन्न हो गयी थी, उसमें सुधार होने लगेगा। ऐसे समय पर सरकार हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit financing) की नीति अपनानी चाहिये। इसी से अर्थव्यवस्था में आय–प्रवाह को प्रोत्साहन मिलेगा। हीनार्थ प्रबन्धन की नीति के परिणामस्वरूप सरकारी व्ययों में वद्धि हो जाती है, अर्थव्यवस्था में नवीन क्रय शक्ति का संचार होता है। इससे मन्दी एवं बेरोजगारी से लड़ने में सहायता मिलती है। मन्दी एंव बेरोजगारी से लड़ने में सार्वजनिक ऋण के अस्त्र का प्रयोग भी सरकार द्वारा किया जा सकता है। सरकार को यथा सम्भव लोगों के उन वर्गो से ऋण लेने चाहिये जिनके पास धन बेकार पड़ा है। सार्वजनिक निर्माण कार्यों को क्रियान्वित करने से सरकार के बजट में जो घाटा उत्पन्न होगा, उसे यदि पूर्णतया नहीं तो अंशतः ही सार्वजनिक ऋण लेकर पूरा

RIL-09

करना चाहिये।

जब देश का आार्थिक पुनरुद्धार (Economic recovery) होने लगता है और अर्थव्यवस्था में समद्धिकाल का शुभारम्भ होता है और धीरे–धीरे तेजी का असर बढ़ने लगता हे तब ऐसे समय पर सरकार को चाहिये कि वह एक विपरीत नीति का अनुसरण करे। सरकार को निजी व्यय पर नियन्त्राण रखने हेतु वर्तमान करों में वद्धि कर देनी चाहिये। यहां तक कि लोगों पर नये कर भी लगाने चाहिये। ऐसे समय में सरकार की सार्वजनिक निर्माण कायों पर अपने व्यय में कटौती कर देनी चाहिये। कागजी मद्रा का संकुचन करना चाहिये। लोगों एवं बैंकों से लिये गये ऋण को लौटा देना चाहिये। इन नीतियों की अनुसरण करने से परिचलन में मुद्रा की मात्रा घट जायेगी। संक्षेप में तेजी के समय में सरकार को अधिक्य का बजट (Surplus budget) की नीति का पालन करना चाहिये।

अतः स्पष्ट है कि सरकार द्वारा अपनायी गयी क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के परिणामस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था में स्थायित्व स्थापित होगा और आार्थिक क्रियाओं में उतार चढ़ाव में कमी आयेगी।

5.2.3 स्वचालित स्थायीकारक (Automatic Stablizers)

व्यापार चक्र की रोकथाम के लिये आवश्यक मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियॉं अधिकांशतः सरकार के विवेक पर निर्भर करती हैं। ये नीतियां तभी लाभदायक सिद्ध होती हैं जब इन्हें सही समय पर क्रियान्वित किया जाय साथ ही इन्हें क्रियान्वित करने में पर्याप्त सतर्कता बरती जाय। इसके अतिरिक्त व्यापार चक्र के साथ निपटने के लिये आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने कई प्रकार के स्वचालित स्थायीकारकों अथवा संरचित स्थायीकारकों (Built-in-stabilizers) का सुझाव दिया है। स्वचालित स्थयीकारक से अभिप्राय उन आार्थिक उपायों से है जो किसी प्रकार की सरकारी आयेाजित कार्यवाही के बिना चक्रीय व्यवसायिक उतार–चढ़ावों को स्वतः ही सन्तुलित बना देता है। स्वचालित स्थायीकारक तीन प्रकार के होते हैं– (i) मौद्रित स्थायीकारक (Monetary stablizers), (ii) राजकोषीय स्थायीकारक (Fiscal stabilizers), औार (iii) प्रावैगिक स्थयीकारक (Dynamic stabilizers)।

सर्वप्रथम हम यह देखेंगे कि मौद्रिक स्थायीकारक मन्दीकाल में किस प्रकार क्रियाशील होते हैं? मन्दी काल में लाभ कम हो जाने के कारण

विनियोग घट जाता है, बैंकों से लिये जाने वाले ऋण कम हो जाते हैं और बैंकों के पास अत्यधिक नकदी जमा हो जाती है।

ऐसी स्थिति में बैंक ब्याज दर में कमी कर देते हैं और ऋण आसान बना देते हैं। परिणमस्वरूप ऋण लेना आसान और सस्ता हो जाने से विनियोक्ता अधिक ऋण की मांग करने लगते हैं। इस प्रकार विस्तार की संचयी प्रवत्ति पुनः नये सिरे से प्रारम्भ हो जाती है।

राजकोषीय स्थायीकारक के अन्तर्गत करों एवं व्ययों का प्रयोग इस प्रकार से होता है कि वे आास्थिरीकरण के दूर करने के लिये स्वतः ही ठीक दशा में कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, तेजी स्वंय ऐसी प्रवत्तियां उत्पन्न करती है जो इसकी रोकथाम करती हैं और अन्ततः इसे समाप्त कर देती हैं। यही बात मन्दी के बारे में भी लागू होती हैं। आयकर तथा व्ययकर और बेकारी, बीमा, वद्धावस्था बीमा योजनाएं पेन्शन तथा सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपाय आदि ऐसे कदम हैं जो आय और व्यय को लोच प्रदान करते हैं।

सीमान्त उपयोग प्रवत्ति में परिवर्तन, लाभ के पक्ष या विपक्ष में आय का स्थानान्तरण तथा पूंजी उत्पाद में परिवर्तन आदि प्रावैगिक स्थायीकारक हैं। इन तीन प्रकार के परिवर्तनों की जननी स्वंय तेजी या मन्दी है। तेजी ऐसी शक्तियें को जन्म देती है जो इसे समाप्त कर देती है और यही बात मन्दी के बारे में भी सही है।

व्यापार चक्रों के सम्बन्ध में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यापार चक्र एक जटिल समस्या है। कोई भी एक नीति अकेले उन पर प्रभावपूर्ण रोक या नियन्त्रण नहीं लगा सकती है। वास्तव में, मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति एवं स्वचालित स्थायीकारकों के उचित विवेकपूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता है।

5.3 सारांश

व्यापार चक्र क्यों आते हैं और बार बार तथा लगभगत नियत समय पर ही क्यों होते हैं, इस बात को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न अर्थशास्त्रियें ने विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं मोटे रूप में इन्हें दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है¾(I) वह वर्ग जो मौद्रिक घटकों (Monetary factors) को आार्थिक उतारव–चढ़ाव का कारण मानता है। इस वर्ग के समर्थक हैं– हाट्रे, हेयक, कीन्स और हिक्स आदि तथा (II) वह वर्ग जो अमौद्रिक घटकों को

आर्थिक उतार–चढ़ाव अर्थात व्यापार चक्र का कारण मानता है। इस वर्ग में स्टैनले, जेवन्स, विक्सेल, पीगू आदि अर्थशास्त्री आते हैं। इन सब सिद्धान्तों में केवल एक ही पहलू पर जोर दिया गया है और दूसरे पहलुओं को भुला सा दिया गया है। अतः प्रत्येक सिद्धान्त में कुछ कमी पाई जाती है।

व्यापार चक्र, जिसका अभिप्राय व्यापारिक कार्य–कलापों में समय–समय पर होने वाले उतार–चढ़ाव से है, किसी भी समाज के किये लाभप्रद नहीं है और समाज के सभी वर्गों का हित उनकी रोकथाम में निहित है। अर्थशास्त्रिों का मत है, "आधुनिक अर्थव्यवस्था में रहते हुये व्यापार चक्रों और तत्सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के संकटों से छुटकारा नहीं मिल सकता।" फिर भी हमको यह नहीं चाहिये कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और व्यापार चक्रों के प्रभावों को चुपचाप सहते रहें। वस्तुतः यथासम्भव इसका प्रतिकार करना चाहिये। व्यापार चक्र का नियन्त्रित करने के प्रमुख उपाय हैं– मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति एवं स्वचालित स्थायीकारक। निष्कर्षतः व्यापार चक्र एक जटिल समस्या है। कोई भी एक नीति अकेले उन पर प्रभावपूर्ण रोक या नियन्त्रण नहीं लगा सकती हैं। वास्तव में, मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति एवं स्वचालित स्थायीकारकों के उचित विवेकपूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता है।

5.4 सम्बन्धित पूस्तकें

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त¾एस० पी० दुबे एवं वी० सी० सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।
2. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त–एस० पी० सिहं, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
3. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एम० एल०सेठ, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा।
4. उच्चतर समाविट अर्थशास्त्र—एच० एल० आहूजा, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली।
5. समाष्टि अर्थशास्त्र—एम० एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशन्स प्रार्थना–पत्र० लि०, दिल्ली।
6. Modern 'Economic Theory—K.K. Dwell Adarsh Chand, Shyam

Lal Charitable Trust, New Delhi।

5.5 सम्बन्धित प्रश्न

1. "व्यापार चक्र पूर्णतः एक मौद्रिक विषय है।" (हाट्रे) समालोचना कीजिए।

2. "यदि गुणक तथा त्वरक एक दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं तो अथव्यवस्था में एक चक्रीय प्रवत्ति उत्पन्न रहती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

अथवा

हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

3. व्यापार चक्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये। इस सन्दर्भ में कीन्स के योगदान की व्याख्या कीजिये।

4. शुम्पीटर कम व्यापार चक्र के नव प्रवर्तन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

5. व्यापार चक्र के मौद्रिक तथा अमौद्रिक कारणों की विवेचना कीजिये। इसके नियन्त्रण के लिये कौन कौन से उपाय अपनाये जा सकते हैं ?

6. आर्थिक समद्धि व मन्दी को प्रदर्शित करने वाले विभिन्न अमौद्रिक सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

7. हाल के वर्षो में व्यापार चक्रों पर नियन्त्रण करने के लिये प्रस्तुत किये गये उपायों पर प्रकाश डालिये।

इकाई-6 राष्ट्रीय आय की अवधारणा एवं मापन (Concept and Measurement of National Income)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 राष्ट्रीय आय का अर्थ

6.2 परिभाषायें

6.3 राष्ट्रीय आय के तत्व

6.4 राष्ट्रीय आय के निर्देशक सिद्धान्त

6.4.1 दोहरी गणना से बचाव

6.4.2 हस्तान्तरण भुगतानों से बचाव

6.5 राष्ट्रीय आय की अवधारणायें

6.5.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)

6.5.2 शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)

6.5.3 राष्ट्रीय आय अथवा साधन लागत पर राष्ट्रीय आय (NI)

6.5.4 वैयक्तिक आय (PI)

6.5.5 खर्च योग्य वैयक्तिक आय (DPI)

6.5.6 सकल घरेलू उत्पाद (GDP)

6.5.7 शुद्ध घरेलू उत्पाद (NNP)

6.6 राष्ट्रीय आय का मापन

6.6.1 उत्पाद संगणना विधि

6.6.2 आय संगणना विधि

6.6.3 व्यय विधि या निर्गत विधि

6.6.4 उत्पाद आय सम्मिश्रण विधि

6.7 राष्ट्रीय आय को मापने की कठिनाइयाँ

6.8 राष्ट्रीय आय की गणना का महत्व

6.9 राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण

6.9.1 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का वास्तविक सूचकांक है।

6.9.2 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का वास्तविक सूचकांक नहीं है।

6.9.3 आर्थिक कल्याण में वद्धि कब मानी जायेगी ?

6.10 सारांश

6.11 सम्बन्धित पुस्तकें

6.12 सम्बन्धित प्रश्न

6.13 प्रश्नोत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- राष्ट्रीय आय को परिभाषित कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय आय के तत्व एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों की पहचान कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं में अन्तर कर सकेंगे एवं उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय आय का मापन कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय आय के मापन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का वर्णन कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

6.1 राष्ट्रीय आय का अर्थ

राष्ट्रीय आय की अवधारणा का अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान हैं। साधारयण शब्दों में किसी देश में एक वर्ष में जितना उत्पादन होता है चाहे वो भौतिक पदार्थो का हो और चाहे सेवाओं का, वही उस देश की आय है। यथार्थतः किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं एंव

सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य को राष्ट्रीय आय कहते हैं। दोहरी गण्राना से बचने के लिऐ इसमें कच्चे माल तथा मध्यवर्ती पदार्थे के उत्पादन को सम्मिलित नहीं किया जाता है। राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय लाभांष, राष्ट्रीय व्यय, राष्ट्रीय उत्पादन आदि शबद एक दूसरे के स्थान पर एवं पयार्यवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाते समय वस्तुओं एवे सेवाओं के उत्पादन में प्रयुक्त मशीनों एवं संयत्रों के मूल्य ह्रास अथवा टूट फूअ को घटा दिया जाता है राष्ट्रीय आय को लगान, ब्याज, मजदूरी एवं लाभ के रूप में विभन्न उत्पत्तिस साधनों (भूमि पूंजी श्रम एवं साहसी इत्यादि) में वितरित कर दिया जाता है। अन्य बातों के समान रहते हुये राष्ट्रीय आय जितनी अधिक होगी, उतना ही प्रत्येक साधन का अंश अथवा भाग (SharE) अधिक होगा।

राष्ट्रीय आय को तीन भिन्न दष्टिकोणों से देखा जा सकता है – कुल उत्पादन मूल्य के रूप में, कुल प्राप्तियों (receipts) के रूप में तथा कुल व्यय (expenditure) के रूप में, तीनों दष्टिकोणों से हम एक ही परिणाम पर पहुचते हैं। ऐसा क्यों ? अर्थव्यवस्था में जो कुछ भी व्यय किया जाता है वह तत्काल किसी न किसी की आय होती है, अतः सभी आयों का जोड़ बराबर होगा सभी व्ययों के जोड़ के। चूंकि उत्पादित पदार्थे और प्रस्तुत सेवाओं के विक्रेता उनको उन कीमतों पर बेचते हैं जिन पर कि क्रेता उनसे खरीदते हैं, इसलिये विक्रेताओं की कुल आय (total receipts) बराबर होगी क्रेतराओं के कुल व्यय के और कुल आय या कुय व्यय बराबर होगा उन समस्त पदार्थो एवं सेवयाओं के मूल्य के जो खरीदी या बेची गयी है।

6.2 परिभाषायें (Definition)

राष्ट्रीय आय की तीन प्रमुख परिभाषायें मार्शल, पीगू तथा फिशर द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं।

प्रो० मार्शल के अनुसार, "किसी देश का श्रम व पूंजी उस देश के प्राकतिक साधनों पर कार्य करते हुये जो प्रतिवर्ष भौतिक तथा अभौतिक वतुओं एवं सभी प्रकार की सेवाओं का जो शुद्ध योग (net aggregate) उत्पन्न करते हैं उसे ही उस देश की शुद्ध वार्षिक आय अथवा राष्ट्रीय लाभांश करते हैं।"

इस प्रकार मार्शल के अनुसार देश की सम्पूर्ण उत्पादन क्रियाओं द्वारा

उत्पन्न शुद्ध निर्गतों (Net Outputs) का योग करने पर हमें देश की कुल शुद्ध उत्पत्ति का पता चल सकता है। शुद्ध उत्पत्ति को निकालने के लिये कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मशीनों की घिसावट अर्थात मूल्य ह्रास को घटा दिया जाता है और विदेशों में विनियोग की गयी पूंजी पर मिलने वाली ब्याज आय को जोड़ दिया जाता है। स्मरण रहे, बिना किसी आार्थिक लाभ के की गयी व्यक्तिगत सेवायें या उत्पादन क्रियाओं का उत्पादन मूल्य उसमें नहीं जोड़ा जाता है जैसे बढ़ई द्वारा स्वंय के लिये फर्नीचर बनाना आदि।

अलोचना (Cricisms)

मार्शल की परिभाषा की निम्न आधारों पर आलोचना की गयी है, (i) देश में उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि राष्ट्रीय उत्पादन की गणना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। (ii) इस परिभाषा का दूसरा दाष दोहरी गणना (double counting) की आशंका का बना रहना है। उदाहरण के लिये 'कपास' के उत्पादन को कषि उत्पादन में सम्मिलित करने के साथ साथ सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन में भी सम्मिलित कर लेने पर एक वस्तु की दो बार गणना हो जाती हे। (iii) बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन की मूल्य गणना करने से रह जाना है क्योंकि उनका काफी बड़ा भाग उत्पादकों द्वारा स्वंय उपभोग कर लिया जाता है जैसे किसान द्वारा अपनी फसल का कुछ भाग अपने निजी उपभोग में लाना। स्वाभाविक है कि जब बाजार में बिक्री के लिये उत्पादित माल कम आयेगा तो राष्ट्रीय उत्पादन भी कम आंका जायेगा।

प्रो० पीगू (Pigou) के मतानुसार, "राष्ट्रीय लाभांश किसी समाज की भौतिक आय का वह भाग है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित होती है और जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।"

पीगू की परिभाषा मार्शल की परिभाषा की तुलना में दो बातों में श्रेष्ठ है। प्रथम पीगू के अनुसार राष्ट्रीय आय में विदेशों से प्राप्त आय को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये जबकि मार्शल ने इसका कोई स्पष्ट उल्लेश नहीं किया। दूसरा, वस्तुओं सेवाओं के उत्पादन का केवल वहीं भाग राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जा सकता है जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सके। अतः उत्पादन का वह भाग जिसका मौद्रिक मूल्य नहीं होता, राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ एक गहिणी द्वारा घर में

किये गये घरेलू सेवा कार्य का मूल्य, राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

आलोचनायें

प्रो० पीगू की परिभाषा मार्शल के विपरीत व्यवहारिकता का गुण रखती है और इस परिभाषा ने राष्ट्रीय आय की धारणा को काफी हद तक स्पष्टता तथा निश्चितता भी प्रदान की है। किन्तु उसके बावजूद इस परिभाषा के कुछ दोष बताये जाते हैं जो इस प्रकार हैं : (i) पीगू के विचार बहुत ही संकीर्ण तथा विरोधाभास से भरपूर हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरानी को उसकी सेवाओं के बदले में 1000 प्रतिमाह चुकाता है तो उस नौकारनी की सेवायें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित की जायेंगी क्योंकि उसकी सेवाओं की कीमत मुद्रा के रूप में व्यय की गयी है। अब यदि वह व्यक्ति अपनी नौकरानी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवायें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं की जायेंगी, क्योंकि अब उनका कोई मौद्रिक मूल्य नहीं रह जाता। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि नौकरानी की सेवाएं वही हैं लेकिन कभी वे राष्ट्रीय आय में सम्मिलित होती है और कभी नहीं। (ii) यह परिभाषा केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही लागू हो सकती है और जिन देशों में अधिकांश वस्तुओं एवं सेवाओं का मुद्रा द्वारा विनिमय नहीं किया जाता वरन् प्रत्यक्ष रूप से अदल–बदल हो जाता है, वहां इस परिभाषा का कोई महत्व नहीं है।

प्रो० फिशर, के शब्दों में, "राष्ट्रीय लाभांष अथवा आय में केवल अंतिम उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त की जाने वाली सेवाओं का (चाहे ये सेवाएं भौतिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुई हों, चाहे मानवीय कारणो सें) समावेश होता है" प्रो० फिशर ने उपभोग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "इस प्रकार एक पियानो अथवा ओवरकोट जो मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, वह इस वर्ष की आय का हिस्सा नहीं है।, बल्कि व तो पूंजी में वद्धि मात्र है। हां वे सेवायें जो इसी वर्ष के दौरान मुझे प्राप्त हुई हैं, केवल वही राष्ट्रीय आय है।

स्पष्ट है कि फिशर के अनुसार राष्ट्रीय लाभांश में कुल उत्पत्ति का मूल्य सम्मिलित नहीं किया जाता बल्कि उत्पत्ति में केवल उस भाग का मूल्य ही राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है जिसका उस वर्ष विशेष में उपभोग किया गया है। उदाहरण के तौर पर यदि इस वर्ष के मशीन तैयार की गयी

RJ-082

है जिसका मूल्य 50,000 रु० है और उस मशीन का जीवनकाल 10 वर्ष है तो मशीन का इस वर्ष का उपभोग मूल्य 5000 रु० हुआ जो उस वर्ष की राष्ट्रीय आय में जुड़ जायेगा, जबकि उसके विपरीत मार्शल व पीगू के अनुसार मशीन की सम्पूर्ण कीमत यानी 50,000 रु० इस वर्ष की आय में सम्मिलित की जायेगी।

निःसन्देह फिशर का दष्टिकोण मार्शल एवं पीगू के दष्टिकोण से अधिक श्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक है क्योंकि उसने एक वर्ष विशेष में वास्तविक उपभोग के मौद्रिक मूल्य को ही राष्ट्रीय आय का अंग माना है। इतना ही नहीं, फिशर का दष्टिकोण आर्थिक कल्याण की विचारधारा के अधिक निकट है क्योंकि समाज का आर्थिक कल्याण वस्तुओं एवं सेवाओं के कल उत्पादन पर नहीं ब ल्कि उनकी उस मात्रा पर निर्भर करता है जो एक समाज को उस वर्ष विशेष में उपभोग के लिये उपलब्ध होती है।

6.3 राष्ट्रीय आय के तत्व (Elements of National Income)

राष्ट्रीय आय की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण से राष्ट्रीय आय के तीन तत्व स्पष्ट होते हैं। पहला, राष्ट्रीय आय का आशय किसी देश की शुद्ध आय से होता है। दूसरा, राष्ट्रीय आय का मापन एक निश्चित समयावधि के लिये, जो कि समान्यतया एक वर्ष होता है, के लिये किया जाता है। तीसरा राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत उन सभी वस्तुओं एक सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका विनियम मूल्य होता है किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्यकेक वस्तु एवे सेवा के मूल्य की गणना केवल एक बार ही किया जाय।

6.4 राष्ट्रीय आय के निर्देशक (Guiding Principles)

राष्ट्रीय आय का मूल्यांकन करते समय दो निर्देशक सिद्धान्तों को सदैव ध्यान में रखना चाहिये। ये दो निर्देश सिद्धान्त हैं¾(i) दोहरी गणना से बचावए एवं (ii) हस्तान्तरण भुगतानों से बचाव।

6.4.1 दोहरी गणना से बचाव (Escape from Double Counting)

राष्ट्रीय आय के मूल्यांकन में किसी भी वस्तु अथवा सेवा की दोहरी गणना नहीं होनी चाहिये; अन्यथा राष्ट्रीय आय के अनुमान गलत सिद्ध होंगे। उदाहरणार्थ कषि उत्पादन में यदि तम्बाकू का मूल्यांकन कर लिया

गया है तो सिगरेटों के कुल उत्पादन मूल्य का अनुमान लगाते समय तम्बाकू के मूल्य को उसमें से घटा देना चाहिये। यदि ऐसा न किया गया तो तम्बाकू के उत्पादन मूल्य को राष्ट्रीय आय के अनुमान में दो बार सम्मिलित कर लिया जायेगा।

दोहरी गणना से बचने के लिये प्रार्थना–पत्रयः दो सांख्यकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है¾(i) अन्तिम उत्पाद विधि (final product method), (ii) मूल्य योग विधि (Value added method)। अन्तिम उत्पाद विधि के अनुसार देश में उत्पादित किये जाने वाले उपभोक्ता एवं पूंजीगत वस्तुओं के अन्तिम उत्पादों के मूल्यों को जोड़कर और उसमें सेवाओं के मूल्य को सम्मिलित करके राष्ट्रीय आय का कुल मूल्य निकाल लिया जाता है। मूल्न्य योग विधि के अन्तर्गत अन्तिम उत्पादों के मूल्यांकन के स्थान पर सभी वस्तुओं के उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में सजित होने वाले मूल्यों का योग करके राष्ट्रीय आय ज्ञात कर ली जाती है।

6.4.2 हस्तान्तरण भुगतानों से बचाव (Escape from Transfer payments)]

राष्ट्रीय आय की गणना का दूसरा निर्देशक सिद्धान्त 'हस्तान्तरण भुगतानों' का राष्ट्रीय आय में सम्मिलित न करना है। हम जानते है कि राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध उत्पादन अथवा आर्थिक क्रियाओं से होता है। एक व्यक्ति के लिये एक निश्चित समयावधि में जहां उसकी समस्त मौद्रिक प्राप्तियां आय हैं, वहां व्यापक दष्टिकोण से उन सभी प्राप्तियों को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता; बशर्ते कि व्यक्ति ने इसे अर्जित न किया हो। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी भी ऐसी आय को राष्ट्रीय आय में तभी सम्मिलित किया जायेगा जबकि, उस आय को पाने के लिय व्यक्ति द्वारा किसी उत्पादक क्रिया में भाग लिया गया है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति, 'उपहार'; अथवा हतान्तरण प्राप्ति' के रूप में अन्य लोगों से अथवा सरकार से आय प्राप्त करता है तो यह उसकी वैयक्तिक आय आ अंग तो होगी किन्तु उसे राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जायेगा क्योंकि इस प्राप्ति के बदले कोई उत्पादन क्रिया सम्पन्न नहीं की गयी है अर्थात 'हस्तान्तरण भुगतानों' को छोड़कर विभिन्न व्यक्तियों की आयों का योग ही राष्ट्रीय आय कहलाता है।

6.5 राष्ट्रीय आय की अवधारणायें (Concepts of National Income)

राष्ट्रीय आय की सही जानकारी तब तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक कि राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं क समुचित अध ययन न कर लिया जाय। राष्ट्रीय आय के विशेषज्ञों ने अर्थव्यवस्था की समस्त आय के विषय में छः मुख्य अवधारणायें (Concepts) प्रस्तुत की हैं ये हैं

(1) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product *i.e.* GNP)

(2) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product, *i.e.,* NNP)

(3) राष्ट्रीय आय अथवा साधन लागत पर राष्ट्रीय आय (National Income, i.e., NI)

(4) वैयक्तिक आय (Personal Income i.e., PI)

(5) खर्च योग्य वैयक्तिक आय (Disposable Persoanl Income, i.e., DPI)

(6) सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product, i.e., GDP)

(7) शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product NNP)

6.5.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product)

यह राष्ट्रीय लेखे की एक बुनियादी अवधारणा है। किसी अर्थव्यवस्था में जो भी अन्तिम वस्तुएं (Final products) एवं सेवाएं एक वर्ष की अवधि में उत्पादित की जाती हैं उन सभी के बाजार मूल्य के जोड़ को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की गणना करते समय निम्न तीन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये :–

प्रथम GNP में अन्तिम वस्तुओं (final goods) एवे सेवाओं मौद्रिक मूल्य को ही जोड़ा जाता है। मवर्ती वस्तुओं (Intermediate goods) एवं सेवाओं को नहीं। अन्तिम वस्तुओं वे होती है जो उपभोक्ताओं द्वारा अन्तिम रूप से उपभोग कर ली जाती है और इनका प्रयोग अन्य वस्तुओं के उत्पादन में नहीं किया जाता। उसके विपरीत मध्यवर्ती वस्तुये उन्हें कहते हैं जो अन्य वस्तुओं

के निर्माण में सहायक होती हैं अथवा निका प्रयोग अन्य वस्तुओं के उत्पादन में किया जता है। उदाहराणार्थ, कपड़ा अन्तिम उत्पाद है जबकि कपास, मध्यवर्ती, इसी प्रकार डबल रोटी अन्तिम वस्तु है जबकि आटा मध्यवर्ती।

दूसरा, सकल राष्ट्रीय उत्पाद का अनुमान लगाते समय यह भी जरूरी है कि उसमें केवल चालू वर्ष की उपज के मूल्यों को ही जोड़ा जाये अर्थात जो वस्तु जिस वर्ष पैदा की जाये, उसी वर्ष के GNP में सम्मिलित की जाये। इसका कारण यह है कि एकल राष्ट्रीय उत्पाद किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादकता का संसूचक होता है। उदाहरणार्थ यदि कोई वस्तु 2009 में उत्पादित की गयी है और वह 2010 तक नहीं बिक पाती, तो वह वस्तु 2009 के GNP में ही सम्मिलित की जायेगी, 2010 के GNP में नहीं।

तीसरे, कुल राष्ट्रीय उत्पाद में से पूंजीगत वस्तुओं की घिसावट मूल्य ह्रास तथा प्रतिस्थापन लागत आदि को घटाया नहीं जाता है। वास्तव में यही कारण है कि इसे कुल या सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।

6.5.2 शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product)

यद्यपि सकल राष्ट्रीय आय की धारणा उत्पादन एवं रोजगार सम्बन्धी दशाओं की अधिक विश्वसनीय सूचकांक है लेकिन इसके बावजूद समष्टि विश्लेषण (Macro Analysis) की यह धारणा दोषपूर्ण है। जिस प्रकार एक फर्म का कुल लाभ (Gross profit) उसकी वास्तविक स्थिति का चित्र प्रस्तुत नहीं करता बल्कि फर्म की सही सही स्थिति जानने के लिये शुद्ध लाभ (Net profit) की जानकारी करना आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार GNP किसी देश की आर्थिक उपलब्धियों का धुधला चित्र ही प्रस्तुत करता है ओर देश की सही अर्थो में आार्थिक प्रगति का मूल्यांकन करने के लिये उसके विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) की जानकारी करना आवश्यक माना जाता है।

यदि कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में से मूल्य ह्रास आदि को घटा दिया जाय तो जो शेष बचता है उसे विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। इसको बाजार कीमतों पर राष्ट्रीय (National Income at Market Prices) भी कहा जाता है।

NNP = GN — Depreciation

निःसन्देह, NNP की अवधारणा देश में हुई उत्पादन वद्धि का एक सपाट प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है जिस कारण इसका 'विकास के अर्थशास्त्र' (growth

RU-982

economics) में एक विशेष महत्व है। किन्तु इस धारणा में एक गम्भीर दोष यह पाया जाता है कि पूंजीगत घिसावट अर्थात मूल्य ह्रास का सही सही अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है जिस कारण NNP अनुमान कभी कभी भ्रमात्यक सिद्ध होते हैं।

6.5.3 राष्ट्रीय आय अथवा साधन लागत पर राष्ट्रीय आय (National Income or National Income at Factor cost)

उत्पति के सभी साधनों जैसे भमि श्रम, पूंजी संगठन व साहसी को प्राप्त होने वाले आय सम्बन्धी भुगतानों के योग को राष्ट्रीय आय कहते हैं। दूसरे शब्दों में विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में से उत्पादको द्वारा चुकाये गये अप्रत्यक्ष कों को घटा देने और सरकार द्वारा फर्मो को प्रदत्त आार्थिक सहायता (Subsdies) को जोड़कर देने पर, राष्ट्रीय आय प्राप्त हो जाती है। सूत्र के रूप में

BNI = NNP — Indirect Taxes + Governemtn Subsidies

NI = GNP — Depreciation—Indirect Taxes + Subisidies

प्रश्न उठता है कि राष्ट्रीय आय की मात्रा, विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) के बराबर क्यों नहीं होती ? अर्थात NNP में से अप्रत्यक्ष कर क्यों घटा दिये जाते हैं तथा इसमें आार्थिक सहायता क्यों जोड़ दी जाती है ? इसका उत्तर अत्यन्त सरल है। चूंकि NNP की कुल मात्रा उत्पत्ति के साधकों मके बीच वितरण के लिये उपलब्ध नहीं होती क्योंकि व्यवसायिक फर्मो को अपने उत्पादन पर सरकार को अप्रत्यक्ष कर (जैसे excise duty) भी चुकाने पड़ते हैं, इसलिये इन करों की मात्रा को NNP से घटा दिया जाता है। इसी प्रकार फर्मो को सरकार द्वारा कभी कभी आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जिसे NNP में जोड़ दिया जाता है। ध्यान में रखने वाली बात यह है कि राष्ट्रीय अउभव की धारणा का सीधा सम्बन्ध आार्थिक न्याय की धारणा से होता है।

6.5.4 वैयक्तिक आय (Personal Income)

एक वर्ष की अवधि में एक देश के सभी व्यक्ति या परिवार जितनी आय वास्तव में प्राप्त करते हैं, उन सभी आयों के जोड़ों को वैयक्तिक आय (Personal Income) कहा जाता है। स्मरण रहे, एक देश में, किसी वर्ष विशेष के दौरान उत्पादन साधनों द्वारा अर्जित की गयी सम्पूर्ण राष्ट्रीय

आय उन्हें उपलब्ध नहीं होती अपितु उसमें से कुछ कटौतियां की जाती हैं। ये कटौतियां इस प्रकार हैं, नियमों द्वारा अपनी आय पर दिया गया कर भुगतान, कम्पनियों द्वारा न बांटा गया लाभांश वेतन भोगियों अथवा कर्मचारियों द्वारा प्रावीडेण्ट फण्ड इत्यादि की आंशदान। इसके विपरीत, कुछ ऐसी रकमें भी उत्पादन साधनों को प्राप्त होती हैं जिनके लिये उन्होंने कोई उत्पादन कार्य नहीं किया होता। ऐसी रकमों को हस्तांतरित भुगतान (Transfer payments) कहा जाता है। वद्धावस्था पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता, आदि हस्तांतरित भुगतान के कुछ उदाहरण हैं।

संक्षेप में वैयक्तिक आय की गणना करते समय राष्ट्रीय आय में से निगम कर (Corporate Tax), कम्पनियें द्वारा अवितरित लाभांश तथा सामाजिक सुरक्षा के लिये किये गये अनिवयार्य भुगतानों को घटाना चाहिये क्योंकि ये लोगों की आय को कम कर देते हैं लेकिन इसके साथ साथ लोगों को सामाजिक सुरक्षा के रूप कमें मिलने वाले लाभ जोड़ देने चाहिये क्योंकि ये हस्तान्तरणीय भुगतान लोगों की आय में वद्धि कर देते हैं सूत्र के रूप में ¾

Personal Income = National Income — Social Security Contruibutions—Corporate Income Taxes—Indistributed Corporate Profits + Transfer Payments

6.5.5 व्यय योग्य वैयक्तिक आय (Diposable Persoanl Income)

व्यक्तियों अथवा परिवारों की जो वैयक्ति आय होती है, वह सारी की सारी उपभोग में नहीं लाई जा सकती। उसका कारण यह है कि लोगों को अपनी निजी आय पर सरकार को कुछ प्रत्यक्ष करों जैसे आयकर, सम्पत्ति कर आदि, भी देना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष करों के भुगतान करने के बाद जो शेष बचता है उसे उपभोग्य वैयक्तिक आय अथवा व्यय योग्य वैयक्तिक आय कहते हैं। सूत्र के रूप में,

Disposable Personal Income = Persoanl Income—Direct Taxes

यह कोई जरूरी नहीं कि सम्पूर्ण उपभोग्य वैयक्तिक आय को उपभोग दर व्यय कर दिया जाय। हाँ आम तौर पर उपभोक्ता द्वारा अपनी आय का अधिकांश भाग उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है और कुछ भाग बचा लिया जाता है। अतः

Disposable Personal Income = Consumption + Saving

6.5.6 सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product)

राष्ट्रीय आय की उपर्युक्त पांच धारणाओं के अतिरिक्त एक और धारणा की भी प्रायः प्रयोग किया जाता है। यह है सकल घरेलू उत्पाद (GDP)। यदि किसी देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना करने में विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय (Net factor income from abroad) को न सम्मिलित करे तो वह 'सकल घरेलू उत्पाद' (GDP) कहलाता है

GDP = GNP — Net factor Income from abroad

or GNP = GDP + Net factor Income from abroad

6.5.7 शुद्ध घरेलू उत्पाद

सकल घरेलू उत्पाद में से मशीनों पर संयत्रों के प्रयोग के कारण होने वाली टूट फूट या घिसावट से उत्पन्न मूल्य ह्रास (Depreciation) घटा देने पर शुद्ध घरेलू उत्पाद का अनुमान प्राप्त हो जाता है।

6.6 राष्ट्रीय आय का मापन (Measurement of National Income)

राष्ट्रीय आय की अवधारणाओं के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि राष्ट्रीय आय को निम्नलिखित तीन भिन्न विधियों से मपा जा सकता है और इन तीन विधियों से परिणाम एक ही निकलेगा।

(1) समय ही दी हुई अवधि में उत्पादन के सभी साधनों को जो पारिश्रमित या आय प्राप्त होती है, उन सभी की योग, चाहे वह आय उन्हें नकदी में मिले या वस्तुओं या सेवाओं के रूप में।

(2) देश के सभी उत्पादन क्षेत्रों में जितना शुद्ध उत्पादन हो, उसका योग।

(3) उपभेक्ताओं तथा सरकार द्वारा उपभोक्ताअ पदार्थों और सेवाओं पर किये गये अन्तिम व्ययों तथा पूंजीगत पदार्थ पर किये गये व्ययों का योग।

पहली विधि में तो सभी आयों को जोड़ लिया जाता है, दूसरी में सभी शुद्ध उत्पादनों को और तीसरी में सभी अन्तिम व्ययों को परन्तु इन विधियों से परिणाम एक ही मिलता है। इन तीनों विधियों में सें किस विधि को, किस

समय अपनाया जाए, इसका निर्णय इस बात से किया जाता है कि राष्ट्रीय आय का अनुमान किस अभिप्राय से किया जा रहा है और इस अर्थव्यवस्था के रूप को ध्यान में रखते हुये कौर सी विधि कम कठिन या सुविधाजनक होगी। अब हम राष्ट्रीय आय को मापने की इन विधियों की विस्तत व्याख्या करेंगे।

6.6.1 उत्पाद संगणना विधि अथवा शुद्ध मूल्य वद्धि विधि (Census of Production Method or Net value of Added Method)

इस विधि में हम राष्ट्रीय आय तक उत्पादन की ओर से पहुंचते हैं। इस रीति के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिये अर्थव्यवसाी के सभी क्षेत्रों जैसे कषि, खनन, निर्माणी उद्योग, लघु उद्यम, वाणिज्य व परिवहन आदि कि किसी वर्ष किसी वर्ष विशेष में की गई उत्पादन मूल्यों में शुद्ध वद्धियों 1(Net Values added) को जोड़ लिया जाता है। कुल उत्पादन के मूल्य में से आगतों (Inputs) के मूल्य को घटा देने पर मूल्य वद्धि (Value added) का अनुमान प्राप्त हो जाता है। यह विधि अपनाने पर उत्पादन के सभी क्षेत्रों के योगदान का अनुमान लगाया जा सकता है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि केवल अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को ही सम्मिलित किया जाय। कुल उत्पादन में से कच्चे पदार्थों तथा मध्यवर्ती पदार्थी के मूल्य को घटा दिया जाय। ह्रास को भी घटना होगा। जिससे शुद्ध मूल्य वद्धि की अनुमान प्राप्त हो सके। इस मूल्य में विदेशी व्यपार से प्राप्त शुद्ध आय, अवदेशों में सरकार या व्यक्तियों के बैंक खातों व प्राप्त प्रतिभूतियों में होने वाली वद्धि तथा मकानों के किराये मूल्य (चाहे मकान किराये पर हो या मालिक स्वयं उसमें रह रहा हो) को भी जोड़ दिया जाता है।

उत्पादन विधि से राष्ट्रीय आय की अनुमान लगाने में अनेक व्यवहारिक कठिनाइयां सामने आती हैं। कच्चे पदार्थ मध्यवर्ती पदार्थी तथा मूल्य ह्रास के मूल्य का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अनेक प्रकार का उत्पादन ऐसा है जिसका मूल्य लगाने का कोई निश्चित आधार नहीं है जैसे गहणियों द्वारा किये गये गहकार्य का मूल्य/अर्द्ध विकसित देशों में छोटे उत्पादकों द्वारा कषि के क्षेत्र में उत्पादन बाजार में बेचने के बजाय स्वंय ही उपभोग कर लिया जाता है। उत्पादन के सभी क्षेत्रों तथा उप क्षेत्रों में पर्याप्त आंकड़े

उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। उस रीति की सफलता मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि उत्पादन सम्बन्धी आंकड़े पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने चाहिये।

6.6.2 आय संगणना विधि (Census of Income Method)

राष्ट्रीय आय को मापने की दूसरी विधि आय विधि है। यह विधि राष्ट्रीय आय तक वितरण की ओर से पहुंचती है। दूसरे शब्दों में उस विधि में राष्ट्रीय आय का अनुमान देश के विभिन्न व्यक्तियों या वर्गों की आयों को जोड़ कर किया जाता है। यह भूमि पर लगाना, मजदूरी तथा वेतन, पूंजी पर ब्याज एवं लाभ (कम्पनियों आदि के अवितरित लाभ को सम्मिलित करके) के योग से प्राप्त होता है। इस प्रकार इस रीति में राष्ट्रीय आय इसके वितरण के पश्चात मापी जाती है अर्थात जब उत्पादन में योगदान के प्रतिफल के रूप में व्यक्तियों को प्राप्त हो चुकी होती है। साधनों की इस आय को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। (i) श्रमिकों का वेतन एवं मजदूरियां, (ii) गैर कम्पनी व्यवसायों (Non-Company businesses) की आय, 1\(iii) व्यक्तियों की किराये से आय (rental income of persons), (iv) निजी व्यवसायिक कम्पनियों के लाभ, तथा (v) विशुद्ध ब्याज से आय।

प्रथम श्रेणी में पूरक भत्तों सहित मजदूरों के वेतनों एवं मजदूरियों को सम्मिलित किया जाताहै। पूरक भत्तों से अभिप्राय उन विभिन्न अंशदानों से हैं जो सेवायोजाकें द्वारा मजदूरों के प्रवीडेण्ट फण्ड्स एवं पवेशंनकोषों में जमा किया जाता है। दूसरी श्रेणी में व्यक्तिगत स्वामियों 1(Individual proprietors) साझेदारों एवं स्व नियोजित लोगों (Self employed persons) की आय को सम्मिलित किया जाता है। तीसरी श्रेणी में कषि एवं गैर कषि सम्पत्ति से व्यक्तियों द्वारा कमायी गयी किराये की आमदनी को सम्मिलित किया जाता है। चौथी श्रेणी में अंशधारियों को लाभांश वितरित करने से पूर्व अथवा व्यवसायिक लाभ करों को चुकाने से पूर्व व्यावसायिक फर्मो द्वारा कमाये गये लाभ सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रकार कुल राष्ट्रीय उत्पाद का अनुमान लगाते समय जिस व्यवसायिक लाभ को सम्मिलित किया जाता है वह बराबर होता है = व्यवसायिक लाभ कर + अंशधारियों को चुकाया गया लाभांध + अवितरित व्यवसायिक लाभ। पांचवी श्रेणी में सरकारी

संस्थाओं को छोड़कर अन्य स्त्रोतों से कमाये गये व्कयक्तियों के विशुद्ध ब्याज (Net interest) को सम्मिलित किया जाता है। उपर्युक्त सब राशियों को अप्रत्यक्ष करों (जो सरकार द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाये जाते हैं) जोड़ से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) का पता चल जायेगा। यदि आय विधि से हमें कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) ज्ञात करना हो तो इस प्रकार शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में पूंजी की घिसावट अथवा मूल्य ह्रास (Depreciation) की मात्रा जोड़नी होगी।

इस रीति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय वितरण का पता लगता है ओर दोहरी गणना की संभावना बहुत कम रहती है। परंतु करोड़ों लोगों की आय की अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन हो जाता है, विशेषकर उस समय जब आय वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में प्राप्त होती है।

6.6.3 व्यय विधि या निर्गत विधि (Expenditure or Ouptoput Method)

राष्ट्रीय आय ज्ञात करने की तीसरी विधि व्यय विधि की है। इस विधि में राष्ट्रीय अय का अनुमान सभी प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं पर किये गये कुल व्ययों को जोड़कर किया जाता है। देश में जितना कुल उत्पादन होता है उसे बाजार मूल्यों पर खरीद लेने से जो कुल व्यय होगा, वह राष्ट्रीय आय होगी। उत्पादन का कुछ भाग तो व्यक्ति और परिवार उपभोग के लिये खरीदते हैं, कुछ भाग लोग निवेश (Investmenty) के लिये खरीदते हैं, कुछ भाग सरकार अपने कार्यो के लिये खरीद लेती है और कुछ भाग विदेशी लोग खरीद लेते हैं। अतः कुल राष्ट्रीय आय या उत्पादन को मालूम करने के लिये हमे निम्नलिखित राशियों को जोड़ना होगा।

(i) वैयक्तिक उपभोग व्यय (Personal consumption expenditure) अर्थात वह सारा व्यय जो देश के लोग या परिवार अपने निजी उपभोग के लिये वस्तुओं तथा सेवाओं पर करते हैं। उन उपभोग की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं को तीन वर्गो में बांटा जाता है–टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुयें, गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुयें तथा सेवायें। गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुये वे हैं जिसका उपभोग अल्पकाल में ही हो जाता है

जैसे खाद्यान्न, सब्जी, बेकरी उत्पाद आदि। टिकाऊ वस्तुयें वे हैं जिनका उपयोग दीर्घकाल तक होता रहता है जैसे कारें, टी०वी०, फ्रिज आदि।

(ii) सकल निजी निवेश (Gross Private Investment)—अर्थात जिनका व्यय गैर सरकारी उद्यमी या व्यवसायी नये निवेश पर और पुरनी पूजीं को कायम रख ने पर करते हैं। निजी निवेश का भी तीन वर्गो में बांटा जाता है¾ निजी स्थायी निवेश (Private Fixed Investment) जो व्यय उद्यमकर्ता नई मशीनों अन्य, पूजीगत साज सामान पर करते हैं, आवासीय निवेश (Residential Investment) जो व्यय मकानों के निर्माण पर किया जाता है, तथा वस्तुओं के स्टॉक भण्डारों में वद्धि (Income in stock of goods)।

(iii) सरकार द्वारा किये गये व्यय (Government Purchasers)—इसमें देश की सरकार जिसमें केन्द्रीय सराज्य तथा स्थानीय सरकारें शामिल हैं, द्वाा वस्तुओं एवं सेवाओं पर किया गया व्यय शामिल होता है। सरकार द्वारा किया गया प्रतिरक्षा (Defence), पुलिस *(Police) तथा विकास कार्यो (developmental works) जैसे सड़कों, नहरों, सरकारी उोगों की स्थापना तथा संचालन पर किया गया व्यय शामिल होता है। किन्तु इसमें सरकार द्वारा व्यक्तियों को किये गये हस्तान्तरित भुगतानों (ransfer Paymentsd) जैसे कि सामाजिक सुरक्षा तथा कल्याण (Social Security and Welfare) पर किये गये व्ययों को राष्ट्रीय आय में शमिल नहीं किया जाता क्योंकि ये हतान्तरित भुगतान वर्तमान आय का पुनर्वितरण मात्र है न कि वस्तुओं एवं सेवाओं के बदले में किया गया भुगतान।

(iv) शुद्धनिर्यात (Net Exports)—अर्थात देश का निर्यात आधिक्य (expert surplus) दूसरे शब्दों में जितना व्यय विदेशी किसी देश की वस्तुओं एंव सेवाओं को खरीदने पर करते हैं वह उस देश द्वारा विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं एंव सेवाओं के कुल मूल्य से कितना अधिक है। यदि निर्यात को × द्वारा तथा आयात को M द्वारा व्यक्त किया जाय तो X-M या Xn शुद्ध निर्यात का सूचक हैं।

यदि वैयक्तिक उपभोग व्यय को C द्वारा, कुल निजी निवेश कोप् द्वारा,

सरकार द्वारा किये गये व्यय कचे G द्वारा तथा शुद्ध निर्यात को Xn द्वारा व्यक्त किया जाय तक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GN) को निम्न जोड़ से प्राप्त किया जा सकता है।

$$GNP = C + I + G + Xn$$

राष्ट्रीय आय को मापने की आय विधि तथा व्यय विधि की तुलना तालिका 6.1 में की गई है।

तालिका 6.1 : सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आय तथा व्यय दष्टिकोण (Income of Expenditure Approaches to GNP)

व्यय दृष्टिकोण		आय दृष्किोण
परिवों द्वारा उपभोग पर किये गये व्यय + सरकार द्वारा खरीदी गई वस्तुए और सेवार्ये + व्यवसायों द्वारा निवेश किये गये व्यय + विदेशियों द्वारा कये गये शद्ध व्यय +	= GNP =	मजदूरी + किराया + ब्याज + लाभ + अप्रत्यक्ष कर + पूंजी की घिसावट अथवा मूल्य ह्रास

6.6.4 उत्पादन आय सम्मिश्रण विधि (Combination of Production Income Method)

इस विधि का विकास उत्पाद संगणना विधि और आय संगणना विधि की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये किया गया है। उत्पादन संगणना विध के अन्तर्गत वेतन भोगी व्यक्तियों की आय जुड़ने से रह जाती है और इसी प्रकार आय संगणना विधि के अन्तर्गत आय कर न देने वाले व्यक्तियों की आय राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं हो पाती। अतः दोनों विधियों के दोषों को दूर करने हेतु राष्ट्रीय आय की गणना करते समय इन दोनों विधियों का एक साथ प्रयोग किया जाता है ताकि राष्ट्रीय आय के अनुमान वास्तविकता के अधिक समीप हो सकें। इस विधि के अन्तर्गत अर्थ व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों का आय के आधार पर और शेष क्षेत्रों का उत्पादन के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

6.7 राष्ट्रीय आय को मापने की कठिनाइयाँ (Difficulties in the Measurement of National Income)

किसी देश की राष्ट्रीय आय की गणना करते समय अनेक कठिनाइयों एवं जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयां एवं जटिलतायें इसलिये उत्पन्न होती हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) के बारे में विश्वसनीय आंकड़ों का या तो पूर्ण आभाव रहता है और/या वे केवल आंशिक रूप में ही उपलब्ध होते हैं। ये समस्याएं इसलिये भी उत्पन्न होती हैं क्योंकि इस कार्य को सम्पन्न करने वाली संस्थाओं को (विशेषकर अल्पविकसित देशों में) राष्ट्रीय लेखा विधियों का स्पष्ट एवं सही ज्ञान नहीं होता।

पश्चिम के विकसित देशों में राष्ट्रीय आय सम्बन्धी गणनाओं के कार्य में इतनी कठिनाइयां एवं जटिलतायें उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि इन देशों ने अपनी सांख्यकीय प्रणालियों को पर्याप्त ऊचे स्तर तक विकसित कर लिया है। इसके अतिरिक्त वे देश अपनी अर्थव्यवस्थओं के विभिन्न खण्डों के बारे में विस्तत एवं विश्वसनीय आँकड़े भी एकत्र कर कसते हैं।

लेकिन एशिया एवं अफ्रीका के पिछड़े एवं अल्पविकसित देशों पर यह बात लागू नहीं होती। राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाते समय इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयां सांख्यकीय (Statistical) एवं अवधारणात्मक (Conceptual) दोनों प्रकार की हैं।

1. इन देशों में उपलब्ध आंकड़े उपर्याप्त ही नहीं बल्कि अविश्वसनीय भी हैं। उदाहरणार्थ भारत के कषि से सम्बन्धित आंकड़े पूर्ण नहीं हे। भारतीय कषि में उत्पादन लागतों से सम्बन्धित विश्वसनीय अनुमानों का अभाव है। लघु एवं मध्यम वर्गीय उद्योगों सवे सम्बन्धित आंकड़े भी अपर्याप्त हैं।

2. अल्प विकसित देशों में गैर–विमुद्रित खण्ड (non monetised sector) के कारण भी राष्ट्रीय आय की संगणना में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। जैसा कि विदित है, इन देशों में कषि उत्पादन का अधिकांश भाग का या तो कषक स्वंय उपभोग कर लेते हैं या गांवों में अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के साथ उसका विनिमय कर लेते हैं। इससे राष्ट्रीय आय की संगणना में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं।

3. अल्पविकसित देशों में अधिकांश छोटे उत्पादक अशिक्षित एवं अनपढ़

होते हैं। वे अपने उत्पादक कार्यों से सम्बन्धित सही सही लेखे रखने की स्थिति में नहीं होते। अतः वे अपने उत्पाद की मात्रा एवं उसके मूल्य के बारे में सही सही सूचना देने में असमर्थ रहते हैं। परिणामतः अर्थव्यवस्थाके विशालकाय खण्यण्डों में आय अथवा उत्पादन का मूल्यांकन करते समय हमें अनिवार्य रूप में अनुमानों (guesswork) का आश्रय लेना पड़ता है।

4. अल्पविकसित देशों में लोगों में पेशेवर विशेषज्ञता (Occupational specialisation) का आभाव होता है। अनेक व्यक्ति अपनी आजीविका कमाने हेतु एक से अधिक धन्धे करते हैं। अतः उनकी आय के बारे में सूचनाये एकत्रित करना कठिन हो जाता है।

6.8 राष्ट्रीय आय की गणना का महत्व

राष्ट्रीय आय की गणना का निम्नलिखित उपयोगितायें हैं :

1. लोगों के जीवन स्तर के बोर में ज्ञान राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़ों से लोगों के रहन सहन के स्तर की अनुमान लगाया जा सकता है, क्योंकि राष्ट्रीय आय की वद्धि से प्रति व्यक्ति औसत आय में वद्धि होने से देश के नागरिकों के जीवन स्तर में वद्धि होती है।

2. आार्थिक नीति के निर्धारण में सहायक–इससे सरकार को अपनी आार्थिक नीति ठीक दशा में निर्धारित करने में सहायता मिलती है। प्रत्येक सरकार राष्ट्रीय कार्य के आंकड़ों के अनुसार देश की अर्थव्यवस्था का सच्चा चित्र प्राप्त कर लेती है और तदनुसार ही अपनी साख, मुद्रा, निवेश, रोजगार एवं बजट सम्बन्धी नीति का निर्माण।

3. आार्थिक उन्नति का तुलनात्मक अध्ययन – इसकी सहायता से देश में हुई आार्थिक प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। अन्य देशों से भी तुलना सम्भव हो पाती है।

4. आार्थिक नियोजन के लिये विशेष महत्व – इसी के आधार पर आार्थक योजनाओं का निर्माण होता है; क्यो कि राष्ट्रीय आय कितनी है ? कितने समय में कितनी वद्धि हुई है ? क्या साधन है ? यह सब निश्चित करना पड़ता है।

5. देश के आार्थिक कल्याण का सूचकेंप्रो० मार्शल के अनुसार ''अन्य

बातों के थितर रहने पर किसी देश की राष्ट्रीय आय जितनी अधिक होती है, उस देश का आर्थिक कल्याण भी उतना ही अधिक समझा जाता है।"

6. समाज के विभिन वर्गों में आय के वितरण का अनुमान ¾ राष्ट्रीय आय के आंकड़ऋों से समाज के विभिन्न वर्गों में आय के वितरण का भी ज्ञान हो जाता है, और उस प्रकार आय की असमानताओं को दूर करने के लिये आवश्यक केवल उठाये जा सकते हैं।

7. आय, व्यय और बचत का अनुमान¾उसके द्वारा आय व्यय और बचत का अनुमान लगाया जा सकता है और उन्हें उचित अनुपात में रखने की दशा में प्रयत्न किये जा सकते हैं।

8. अर्थव्यवस्था के दोषों को दूर करने में सहायक- राष्ट्रीय आय के आंकड़े इस बात की जानकारी देते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था में कौन से दोष विद्यमान हैं जिनके कारण आार्थिक विकास नहीं हो या रहा है। इस ज्ञान के आधार पर इन दोषों को दूर करने के उपाय किये जा सकते हैं।

6.9 राष्ट्रीय आय एवं आार्थिक कल्याण (National Income and Economic Welfare)

कल्याण एक अत्यन्त ही विस्तत विचार है। साधारण अर्थां में कल्याण शब्द मनुष्य व समाज को प्राप्त होने वाली भौतिक सुख सुविधाओं का द्योतक हैं। कल्याण शब्द से आशय मनुष्य की उस मानसिक स्थिति से है जो उसे प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि प्रदान करने में सहायक होती हे। स्पष्ट है कि कल्याण का सम्बन्ध मनुष्य के रहन सहन के स्तर के साथ जोड़ा जा सकता है अर्थात अधिक आार्थिक कल्याण उच्चतर रहन–सहन के स्तर का प्रतीक है तो कम आार्थिक कलयाण निम्नतम रहने–सहन के स्तर को बताता है। इस प्रकार सक व्यक्ति के विपरीत यदि समाज के सभी लागों द्वारा अनुभव की गयी सन्तुष्टियों का योग कर लिया जाय तो उसे सामाजिक कल्याण (Social Welfare) अथवा कुल कल्याण कहते हैं। पीगू के अनुसार सामाजिक कल्याण के दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- आार्थिक कल्याण तथा गैर आार्थिक कल्याण। ये दोनों प्रकार के कल्याण एक दूसरे से इतने अधिक अन्तर्विलित (Interwined) हैं कि इन्हें एक दूसरे से पथक करना कठिन है। फिर भी प्रो० पीगू ने आार्थिक एवं गैर आार्थिक कल्याण में अन्तर

स्थापित किया है उनके अनुसार," आर्थिक सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ढंग से मुद्रा के रूप में माप की जा सकती है।"

6.9.1 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का वास्तविक सूचकांक हैं

अब हमें यह देखना है कि राष्ट्रीय आय आर्थक कल्याण से किस प्रकार सम्बन्धित हैं। कुछ समय पूर्व के अर्थ शास्त्रियों द्वारा (Positive Correlation) की कल्पना की गयी थी। पीगू जैसे अनेक विद्वानों ने उस सम्बन्ध को इतना अधिक निश्चित बताया कि राष्ट्रीय उत्पादन की प्रत्येक वद्धि के साथ आर्थिक कल्याण में वद्धि होना जरूरी है। इस सम्बन्ध में चर्चा करते हुये प्रो० पीगू ने लिखा है, "यदि निर्धनों की आय में कमी न हो तो कुल राष्ट्रीय लाभांश के आकार में वद्धि होने पर (तथा अन्य बातों के समान रहने पर) आर्थिक कल्याण में आवश्यक रूप से वद्धि होगी।" दूसरे शब्दों में, यदि किसी देश की राष्ट्रीय आय में वद्धि होती है तो आय वितरण के पूर्ववत बने रहने पर, उस देश के लोगों का आर्थिक कल्याण भी बढ़ जाता है अर्थात उनका रहन–सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है। इस आधार पर हम राष्ट्रीय आय को किसी देश के आर्थिक कल्याण का सूचकांक (Index) कह सकते हैं।

6.9.2 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का वास्तविक सूचकांक नहीं।

लेकिन यहां प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रीय आय वास्तव में आर्थिक कल्याण का एक विश्वसनीय सूचकांक माना जा सकता है ? क्या किसी देश की राष्ट्रीय आय में वद्धि होने से वहां के लोगों के आर्थिक कल्याण में तदनुरूपी वद्धि का होना जरूरी है। सच तो यह है कि इन प्रश्नों का उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि निम्नलिखित तत्वों को ध्यान में न रखा जाय–

1. आय का वितरण

राष्ट्रीय आय की वद्धि से आर्थिक कल्याण में वद्धि हुई है या हनीं इसको जानने के लिये हमे सबसे पहले आय के वितरण पर ध्यान देना होगा। यदि बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग निर्धनों के बजाय धनिकों को प्राप्त हुआ है तो राष्ट्रीय आय की वद्धि के बावजूद समाज का कुल आर्थिक कल्याण बढ़ने नहीं पायेगा। स्पष्ट है कि आर्थिक कल्याण में वद्धि करने के लिये राष्ट्रीय का समान वितरण होना जरूरी है।

2. राष्ट्रीय आय वद्धि का स्वरूप

समाज का भौतिक कल्याण राष्ट्रीय उत्पादन के उपभोग से प्राप्त 'सन्तोष और उसके सजन में किये गये 'त्याग' (असन्तोष) का अन्तर होता है। अतः इस दष्टि से के पहले यह देखना होगा कि राष्ट्रीय आय की वद्धि किन स्थितियों में संभव हुई है। यदि यह वद्धि बच्चों एवं स्त्रियों को काम पर लगा कर की गयी है अथवा मजदूरों से ज्यादा देर तक कम कराकर उत्पादन वद्धि की गयी है; अथवा श्रम कल्याण की बिना परवाह किये मजदूरों को जबरन काम पर लगाया गया है तो वास्तव में राष्ट्रीय आय की उस वद्धि से समाज के आार्थिक कल्याण में वद्धि नहीं हो पायेगी।

3. जनसंख्या वद्धि की दर

यदि किसी देश की राष्ट्रीय आय में वद्धि होती है लेकिन उसकी जनसंख्या उससे भी अधिक दर से बढ़ जाती है तो प्रति व्यक्ति आय के कम हो जाने के कारण लोगों का आर्थिक कल्याण बढ़ने के बजाय घट जाता है।

4. कीमत स्तर में परिवर्तन

जैसा कि हम जानते हैं कि राष्ट्रीय आय को सदैव प्रचलित मौद्रिक कीमतों में मापा जाता है। अतः जब कभी कीमत स्तर में वद्धि (या कमी) होती है तो राष्ट्रीय आय में वद्धि (या कमी) हो जाती है जबकि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के वास्तविक उत्पादन में कुछ भी वद्धि नहीं होती। ऐसा थिसति में राष्ट्रीय आय की वद्धि के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में वद्धि की कल्पना कर ली जाती है जो गलत है। सच तो यह है कि कीमत स्तर में होने वाली प्रत्येक वद्धि (उत्पादन में वद्धि किये बिकना) आार्थिक कल्याण को बढ़ाने के बजाय घटा देती है (क्यों कि इसमें लोगों के रहन सहन की लागत ऊँची हो जाती है।

5. राष्ट्रीय आय-वद्धि की संरचना

राष्ट्रीय आय में वद्धि के साथ -साथ यदि प्रति व्यक्ति आय में वद्धि हो जाती है तो भी यह आवश्यक नहीं कि लोगों का आर्थिक कल्याण बढ़ जाये। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आय में होने वाली वद्धि अगर उपभोग -वस्तुओं के उत्पादन में वद्धि के कारण न होकर पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वद्धि के कारण हुई है तो उससे आर्थिक कल्याण में वद्धि नहीं होगी। स्मरण रहे, पूँजीगत-वस्तुओं के त्वरित उत्पादन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति-व्यक्ति आय में वद्धि अवश्य होती है लेकिन आर्थिक कल्याण का प्रश्न मुख्य रूप से पूँजीगत-वस्तुओं की अपेक्षा उपभोग-वस्तुओं की उत्पादन वद्धि पर ही निर्भर करता है। इसी प्रकार युद्ध-वस्तुओं (War goods) के उत्पादन

में हुई वद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में वद्धि हुई है तो भी आर्थिक कल्याण में वद्धि नहीं हो सकेगी।

6. मानवीय अभिरुचियों एवं मूल्यों का ह्रास

यदि राष्ट्रीय आय में अत्यधिक वद्धि होने के साथ-साथ लोगों की अभिरुचियाँ (Prefernces) तथा उनके मानवीय मूल्यों (human values) में ह्रास होता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ने के बजाय घटने लगता है। अत्यधिक समद्धि आने के बाद समाज में मदिरापान, जुआ आदि बुराइयों के उत्पन्न होने से समाज के गैर आर्थिक कल्याण में कमी आती है और अन्ततः लोगों की आर्थिक कल्याण भी घट जाता है।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि न तो राष्ट्रीय आय और न ही प्रति-व्यक्ति आय, आर्थिक कल्याण का विश्वसनीय सूचकांक है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के मध्य किसी भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध की कल्पना करना तब तक उचित न होगा जब तक उपरोक्त तथ्यों पर पूरी तरह विचार न कर लिया जाय।

6.9.3 आर्थिक कल्याण में वद्धि कब मानी जायेगी?

राष्ट्रीय आय में वद्धि होने के परिणामस्वरूप आर्थिक कल्याण में वद्धि तभी हो सकती है अथवा राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का एक विश्वसनीय सूचकांक तभी माना जा सकता है जब राष्ट्रीय आय का वितरण निर्धन व्यक्तियों के प्रतिकूल न होकर, उनके हित में हुआ हो। दूसरे, आर्थिक कल्याण में वद्धि की वास्तविक कसौटी उपभोग-स्तर में होने वाली वद्धि है अर्थात लोगों के वास्तविक रहन-सहन के स्तर में वद्धि का होना है। अतः इस दष्टि से आर्थिक कल्याण को बढ़ाने के लिये वह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का पुनवितरण (redistribution) गरीबों के पक्ष में किया जाय जिससे कि उनका उपभोग-स्तर ऊँचा होकर समाज के कुल आर्थिक कल्याण को बढ़ावा दे सके। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण कैसे किया जाय? इसके लिये सरकार को अमीरों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर कर लगाना चाहिये और उस प्राप्त धनराशि को उन उत्पादकों के बीच आर्थिक सहायता (subsidies) के रूप में वितरित कर देना चाहिये जो गरीब लोगों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। सरकार राशनिंग जैसे उपायों द्वारा भी अमीर लोगों को इस बात के लिये विवश कर सकती है कि वे उन वस्तुओं की माँग न करें, जो गरीबों के लिये ज्यादा जरूरी है। इसके अतिरिक्त सरकार अपनी राजकोषीय नीति

(Fiscal Policy) के अन्तर्गत अमीरों पर अधिक करारोपण करके उससे होने वाली आय को गरीबों के हित में शिक्षा, चिकित्सा और आवास जैसी सामाजिक सेवाओं पर व्यय कर सकती है, लेकिन राष्ट्रीय आय के इस पुनर्विवरण की एक महत्वपूर्ण शर्त यह है कि इससे राष्ट्रीय आय के आकार में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आनी चाहिये अन्यथा गरीबों के साथ-साथ समूचे राष्ट्र का आर्थिक कल्याण कम हो जायेगा।

6.10 सारांश

राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय लाभांश राष्ट्रीय व्यय, राष्ट्रीय उत्पादन आदि शब्द एक दूसरे के स्थान पर एवं पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझने के लिये दो प्रमुख अवधारणा सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product, i.e. GNP) और शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Propduct, i.e. NNP) को समझना आवश्यक है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन होता है उसके कुल मौद्रिक कीमत (बाजार कीमतों पर) को कुल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। कुल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास या घिसाई-व्यय को घटाने से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त हो जायेगा।

राष्ट्रीय आय के मापन की तीन विधियाँ हैं : (1) उत्पाद गणना विधि (2) आय विधि, एवं (3) व्यय विधि। पहली विधि में सभी शुद्ध उत्पादों को जोड़द्य दिया जाता है, दूसरी विधि में उत्पत्ति साधनों को प्राप्त होने वाली सभी आयों को जोड़ दिया जाता है और तीसरी विधि में अन्तिम व्ययों को जोड़ा जाता है। इन विधियों से परिणाम एक ही मिलता है।

किसी देश की राष्ट्रीय आय की गणना करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जैसे पर्याप्त एवं विश्वसनीय आकों का अभाव, अमौद्रिक क्षेत्र का पाया जाना, हिसाब-किताब अथवा लेखांकन का आभाव, व्यवसायिक विशिष्टीकरण का आभाव, कीमत परिवर्तनों से उत्पन्न कठिनाई आदि है।

किसी देश की राष्ट्रीय आय उसकी आर्थिक स्थिति का दर्पण होता है। राष्ट्रीय आय के अध्ययन की उपयोगिता के महत्वपूर्ण बिन्दु है : आर्थिक नीति के निर्माण में सहायक, आर्थिक विकास की कसौटी, आर्थिक नियोजन में सहायक, विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों के तुलनात्मक अध्ययन में सहायक,

आर्थिक कल्याण की कसौटी, जीवन-स्तर की जानकारी में सहायक एवं धन व आय के समान वितरण में सहायक आदि।

6.11 सम्बन्धित पुस्तकें

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एस०पी० दुबे, वी०सी० सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एस०पी० सिंह, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
3. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त—एम०एल० सेठ, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा।
4. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र—एम०एल० शर्मा, बी०के० केजरीवाल, साहित्य भवन, आगरा।
5. Modern Economic Theory—K.K. Dewett, Adarsh Chand, Shyam Lal Charitable Trust, New Delhi.
6. उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र—एच०एल० आहूजा, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली।
7. समष्टि अर्थशास्त्र—एम०एल० झिंगन, वंदा पब्लिकेशन्स प्राव लि०, दिल्ली।

6.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिये और उसे मापने की विधिया बताइये।
2. एक देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के महत्व की विवेचना कीजिये। राष्ट्रीय आय मापने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?
3. आर्थिक कल्याण की धारणा की विवेचना कीजिये। देश की राष्ट्रीय आय के साथ इसका क्या सम्बन्ध होता है?
4. कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP), विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP), राष्ट्रीय आय (NI), वैयक्तिक आय (PI) तथा उपभोग्य वैयक्तिक आय (DPI) के अर्थों एवं उपयोगों की विवेचना कीजिये। उनके परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या कीजिये।
5. राष्ट्रीय आय के मापन में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना

पड़ता है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शुद्ध मूल्य वद्धि किसके समान है?
   (क) उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त होने वाले भुगतान।
   (ख) कर्मचारियों को दिया गया क्षतिपूर्ति भुगतान।
   (ग) मजदूरी, लगान तथा ब्याज का योग।
   (घ) उत्पादन के मूल्य में से मूल्य-ह्रास घटाकर प्राप्त धनराशि।
2. हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payments) से आशय किस प्रकार के भुगतान से है?
   (अ) वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय के बिना किये गय भुगतान।
   (ब) श्रमिकों के एक कार्य से दूसरे में तबादले पर भुगतान।
   (स) कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति का भुगतान।
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3. यदि किसी वर्ष में स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय में 7% की वद्धि होती है तथा कीमत भी 7% बढ़ती है और जनसंख्या में 2% की वद्धि होती है तो वास्तविक प्रति व्यक्ति आय :
   (अ) स्थिर रहेगी।
   (ब) 5% बढ़ेगी।
   (स) 5% घटेगी।
   (द) 3.5% बढ़ेगी।
4. बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद से राष्ट्रीय आय का अन्तर किसके बराबर होगा?
   (अ) विदेशों से प्राप्त चालू हस्तान्तरण।
   (ब) शुद्ध परोक्ष कर।
   (स) राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज।
   (द) कोई अन्तर नहीं।

6.13 प्रश्नोत्तर

1-अ 2-अ 3-ब 4-ब

RIL-082

RIL-082